Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SVITA 1957 G.K.V.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079857

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079837

वर्ष १० : अङ्क ८ ... तम्बर १९५७ : भाद्रपद, २०१४

स वि ता

[वेद-संस्थान का मासिक पत्र]

सम्पादक :
विश्वदेव शर्मा

प्रसन्नता

प्रसन्नता सर्वसुन्दर आभूषण है, सर्वमोहक शृंगार है। जो सदा प्रसन्न रहता है, उसे न किसी आभूषण की आवश्यकता है, न किसी प्रकार के शृंगार की।

प्रसन्नता का प्रतीक है यह चन्द्रमा, जो समान रूप से प्रसन्न रहता है, कलाओं से बढ़ते हुए भी और कलाओं से घटते हुए भी।

तू चन्द्र बन और समान रूप से प्रसन्न रह बढ़ने और घटने में, हानि और लाभ में, सम्पत्ति और विपत्ति में, क्षति और समृद्धि में।

प्रसन्नता का प्रतिरूप है यह पुष्प, जो प्रसन्नता के साथ स्वागत करता है बुरे और भले का, छोटे और बड़े का, सुन्दर और असुन्दर का।

तू पुष्प बन और सदैव प्रसन्नता के साथ मिल साधु और असाधु से, राजा और रंक से, योगी और भोगी से।

जो सदा प्रसन्न रहता है, वह चन्द्रमा है प्राणी मात्र के हृदय को प्रफुल्लित करनेवाला, वह पुष्प है प्राणी मात्र के हृदयकमल को खिलानेवाला। —विदेह

वेद संस्थान
अजमेर

मूल्य :
देश में— वार्षिक ३) रु०
एक प्रति २५ नये पैसे
विदेश में—वार्षिक ६ शि०
एक प्रति ६ पेंस

पत्रव्यवहार का पता :
व्यवस्थापक, वेद-संस्थान, अजमेर

वेद-संस्थान के लिये पं० विश्वदेव शर्मा द्वारा आदित्य मुद्रणालय, बाबू मोहल्ला, अजमेर में, मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सविता

लेख-क्रम

यम-याग	विदेह	११५
प्रसन्नता से उदीयमानता	"	११६
अन्त बुरे का बुरा	"	११७
निन्दारहित समालोचना	"	११८
निन्दाभिशाप	"	११९
गीता-योग [२९]	"	१२०
साधना [३४]	"	१२१
गृहस्थाश्रम [१८]	"	१२२
चरित्र-निर्माण [८]	"	१२३
अध्यापक [८]	"	१२४
विद्यार्थी [८]	"	१२४
शिक्षक के गुण	विनोबा	१२५
संसिद्धि	विदेह	१२६
देख	"	१२६
विद्वानों का स्वभाव	दयानन्द	१२६
विषरहित पितु	विदेह	१२६

मन्त्रानुक्रम

अलाय्यस्य मरशुर्ननाश (ऋ० ९-६७-३०)	११७
इदमापः प्रवहतावद्यं (य० ६-१७)	११९
त्वं नो अस्या (ऋ० ८-६६-१४)	१२५
न युष्मे वाजबन्धवो (ऋ० ८-६८-१९)	११८
यमाय सोमं (ऋ० १०-१४-१३)	११५
विश्वदानीं सुमनसः (ऋ० ६-५२-५)	११६

संस्थान-प्रकाशन

आचार्य विदेह-विरचित

वेदव्याख्याग्रन्थ—प्रथम पुष्प	२)
गायत्री—[द्वितीय संस्करण] ५२ गायत्रीछन्द मन्त्रों पर दिव्य प्रार्थनायें।	१.५०
सार्वभौम आर्य-साम्राज्य	०.५०
वैदिक-बालशिक्षा—प्रथम भाग [तृतीय संस्करण]	०.३७
वैदिक-बालशिक्षा—द्वितीय भाग [द्वितीय संस्करण] बालकों को सोम्य, सुशील, सदाचारी, मर्यादापालक बनानेवाली वैदिक शिक्षायें।	०.३७
वैदिक योग-पद्धति—[द्वितीय संस्करण]	०.३७
सन्ध्या-योग— योग के आठों अंगों से समन्वित मौलिक और वास्तविक व्याख्या।	०.२५
स्वस्तियाग— चारों वेदों के स्वस्ति, शान्ति, शं और ईशनमस्कार के मन्त्रों से युक्त आदर्श यज्ञपद्धति।	०.७५
यज्ञोपवीत-रहस्य—[चतुर्थ संस्करण]	०.६
संस्कृत-शिक्षा—प्रथम भाग वेद, संस्कृत व हिन्दी के शुद्धोच्चारण के नियम।	०.१९
संस्कृत-शिक्षा—द्वितीय भाग वेद, संस्कृत व हिन्दी के सन्धि-नियमों का अध्ययन।	०.३७
सत्यनारायण की कथा—[द्वितीय संस्करण]	०.३७
सत्संग-गीतावली	०.३७
दिव्य-भावना	०.६
सविता की वार्षिक जिल्दें वर्ष ४ से वर्ष ९ तक प्रति जिल्द	३.२५

—डाकखर्च पृथक्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

[वेद-संस्थान अजमेर का मासिक पत्र]

वर्ष १० ‖ अजमेर, सितम्बर १९५७, (नभस्य:) भाद्रपद, २०१४ ‖ अङ्क ८ पूर्णाङ्क ११६

यम-याग

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ (ऋ० १०-१४-१३)

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुत हविः ।
यमं ह यज्ञः गच्छति अग्नि-दूतः अरंकृतः ॥

(यमाय सोमं सुनुत) यम के लिये सोम सवन करो (यमाय हविः जुहुत) यम के लिये हवि होमो । (अग्नि-दूतः) अग्नि से द्योतित, प्रेमज्वाल से प्रज्वलित (अरंकृत) अलंकृत, शोभनीयताओं से शोभन (यज्ञः) जीवनयज्ञ (ह) निस्सन्देह (यमं गच्छति) यम को प्राप्त करता है ॥

सर्वयामक सर्वनियन्ता देव ही यम है । उसके प्रति समर्पित होजाना ही यम-याग है । यम की प्रीति ही यमयाग का सोम अथवा घृत है । यम की प्राप्ति की धारण ही यमयाग की हवि है ।

सवनिये यम के लिये सोम,
होमिये यम के लिये हवि ॥
प्रज्वलित शोभन जीवनयज्ञ,
प्राप्तता यम को निस्सन्देह ॥

तुझे पाते हैं वह जाँ से गुज़र जाते हैं जो अपनी ।
तेरा दीदार सौदा है अजल से जाँ–निसारी का ॥ (विदेह)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसन्नता से उदीयमानता

विश्वदानीं सुमनसः स्याम

पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ॥ (ऋ० ६-५२-५)

(१) हम (विश्वदानीं सुमनसः स्याम) सदा सुप्रसन्न रहें, (२) हम (पश्येम) देखें (नु) निश्चय ही, सदा (सूर्यं उत्-चरन्तं) सूर्य को उदय होते हुए। इस मन्त्रांश की ये दोनों सूक्तियां एक दिव्य सन्देश देरही हैं।

हम सदा सुप्रसन्न रहें, हम उदय होते हुए सूर्य को ही देखें—जिस क्रम में ये दो सूक्तियां पढ़ी गयी हैं, वह क्रम भी एक प्रेरणाप्रद रहस्य की ओर संकेत कररहा है।

विश्वदानीं का सामान्य अर्थ सदा सर्वदा कर दिया जाता है। किन्तु इस शब्द में सदा, सर्वदा, के साथ सब अवस्थाओं और सब परिस्थितियों का भाव भी अन्तर्निहित है।

सुमनस् का अर्थ है सु-मन-वाला, शोभन-मन-वाला, अच्छे-मन-वाला, मन को प्रसन्न रखनेवाला, प्रसन्न रहनेवाला।

हम (विश्वदानीं) सब अवस्थाओं और सब परिस्थितियों में सदा सर्वदा (सु-मनसः) सु-मन से युक्त, शोभन मन से युक्त, सु-प्रसन्न (स्याम) रहें।

जिनका मन सु-मन होजाता है, जिनका मन शुद्ध, पवित्र, शिवसंकल्पयुक्त और स्थिर होजाता है, वे ही विश्वदानीम् सुप्रसन्न रह सकते हैं, अन्य नहीं। जिनके मन में सु होता है, सुष्ठुता होती है, शोभनीयता होती है, वे ही सुमन [पुष्प] के समान विश्वदानीं खिले हुए [सुप्रसन्न] रहते हैं।

सुमन [पुष्प] के मन [अन्तःकरण] में सुगन्धि और मधु होता है, इसीसे वह विश्वदानीं खिला रहता है। संसार में कैसी भी घटना, सुघटना, दुर्घटना घटित होती रहे, सुमन [पुष्प] सदा ही खिला रहता है और प्रसन्नता का क्षरण करता रहता है। भला बुरा, शिष्ट अशिष्ट, निर्मल समल, पुण्यात्मा पापी, ऊंच नीच, कोई कैसा भी उसके समीप या सामने आये, सुमन सुमनस्कता [सुप्रसन्नता] के साथ उसका स्वागत करता है और अपनी सुगन्धि से महकाकर उसे माधुर्योपेत करता है।

सुमन के समान सदा खिले रहने की इच्छा रखनेवाले मनुष्य को चाहिये कि वह अपने मन में मधु और सुगन्धि का संचार करे। सुमन के समान सदा सुप्रसन्न रहने की कामना करनेवाले मनुष्य को चाहिये कि वह अपने मन में मधुरता और पावन सुरभित शिवता की स्थापना करे।

सुख दुख, हानि लाभ, सफलता विफलता, अनुकूलता प्रतिकूलता, किसी भी अवस्था और किसी भी परिस्थिति में समानरूपेण प्रसन्न रहना एक परम दिव्य साधना है और महानता का लक्षण है। सुख में प्रसन्न तथा दुख में दुखी होना तो लघुता का चिह्न है और पशु-स्वभाव का द्योतक है। दुखी होने से दुख बहुत भारी और भयानक होजाता है, जबकि प्रसन्नता दुख को अतिशय हल्का और सुतरणीय बना देती है। मानव, सच्चे मानव, महा मानव सुख में मुस्कराते हैं तो दुख में अट्टहास करते हैं। स्मरण रखिये—

[१] When you weep,
Your troubles heap.
रोने [दुखी होने] से तुम्हारी विपत्तियां बढ़ जाती हैं।

[२] When you smile,
Your troubles reconcile.
मुस्कराने से विपत्तियां शान्त होजाती हैं।

[३] When you laugh,
Your troubles are half.
हंसने से आपत्तियाँ आधी रहजाती हैं।

[४] One who is ever cheerful,
He is sure to be ever suceesful.
जो सदा प्रसन्न रहता है, वह निश्चय ही सदा सफल होता है।

दूसरी सूक्ति है—पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्—हम उदय होते हुए सूर्य को ही देखें। पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्—यह एक वैदिक ईडियम [मुहावरा] है, जिसका अर्थ अथवा तात्पर्य है, "हम सदा उदीयमान रहें, हम सदा उन्नत होते रहें, हम सदा ऊपर ही चढ़ते रहें, हम सदा ही उदयोन्मुख रहें, हम सदा ही उत्कर्ष को प्राप्त होते रहें"।

अब इस मन्त्रांश की दोनों सूक्तियों की परस्पर संगति पर विचार कीजिये। प्रथम कहा गया है—विश्वदानीं सुमनसः स्याम—हम सदा सर्वदा सुप्रसन्न रहें। तत्पश्चात् कहा गया है—पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्—हम उदय होते हुए सूर्य को ही देखें, हम उदीयमान अथवा उदयोन्मुख ही रहें।

प्रसन्नता और उदीयमानता का परस्पर सम्बन्ध है। जो सदा सुप्रसन्न रहते हैं, वे ही उदयोन्मुख रहते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रह सकते हैं। जो उदास, निढाल अथवा खिन्नमन रहते हैं, वे गिरते चले जाते हैं। प्रसन्नता से उमंग, उत्साह, सन्तुलन और कर्मकुशलता की रक्षा होती है। खिन्नता से इन चारों का ह्रास होता है। जहां ये चारों अक्षुण्ण रहते हैं, वहां निश्चय ही उत्कर्ष होता है। जहां इन चारों का ह्रास होता है, वहां निश्चय से अपकर्ष होता है।

विश्वदानीं सुमनसः स्याम ।।
रहें हम सदा सतत प्रसन्न ।
न हों हम कभी कदापि खिन्न ।।
पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।।
सदा देखें हम हो प्रसन्न ।
उदय होता हुआ ही सूर्य ।।

अन्त बुरे का बुरा

अलाय्यस्य परशुर्ननाश तमा पवस्व देव सोम ।
आखुं चिदेव देव सोम ।। (ऋ० ९-६७-३०)

अलाय्यस्य परशुः ननाश तं आ पवस्व देव सोम ।
आखुं चित् एव देव सोम ।।

१) (देव सोम) दिव्य रस ! (देव सोम) दिव्य आनन्द ! (आ) आ, (पवस्व) क्षरण कर, प्रवाहित हो।
२) (अलाय्यस्य) आततायी के (परशुः) परशु ने, फरसे ने (तं) उस (आखुं) खनक को, खड्डा खोदनेवाले को (चित् एव) भी (ननाश) नष्ट कर दिया।

यह संसार नेकी और बदी का एक अद्भुत नाटक है। यहां नेकी और बदी का एक अनवरत चक्र चल रहा है। इस संसार में निवास करनेवाले मानवों में से कोई नेकी का अभिनय कररहा है, कोई बदी का। अधिक संख्या उन पात्रों की है, जो बदी का अभिनय करते हैं। बहुत थोड़ी संख्या उनकी है, जो नेकी का पार्ट अदा करते हैं।

वह देखो ! इधर बदी की राह पर झुण्ड के झुण्ड चले जारहे हैं; हज़ारों, लाखों, करोड़ों, अरबों मानव चले जारहे हैं। बहुत थोड़े हैं, जो उधर नेकी की राह पर चल रहे हैं।

बदी की राह पर चलनेवाले सब आकुल, व्याकुल, व्यथित और चिन्तित हैं, आत्मना दुखी हैं, यद्यपि उनमें से अनेक सम्पन्न और सजे धजे से दिखाई पड़ते हैं।

नेकी की राह पर चलनेवाले यद्यपि असम्पन्न और वैभवरहित हैं, पर वे सुखी सुप्रसन्न और सुशान्त दिखाई पड़ते हैं। उनके चहरों पर तेज है, उनकी आंखों में दिव्यता है, उनके होटों पर मुस्कान है, उनकी चाल में दृढ़ता है, उनकी आत्मा में आनन्द है, उनके हृदयों में प्रकाश है। वे सन्तुष्ट और निश्चिन्त हैं, सरल और सात्विक हैं, सुमुख और हंसमुख हैं। वे फूलों के समान खिले हुए हैं। उनके अन्तः में मधुरता और सुगन्धि है।

बदी की राह पर मार खड्डे ही खड्डे खुदे पड़े हैं। उसपर चलनेवाले बार बार खड्डों में गिर जाते हैं। बदी की राह पर चलनेवाले परस्पर एक दूसरे के लिये खड्डे खोदते रहते हैं। बदी की राह खड्डों से भरपूर है। वे नहीं समझते कि एक दूसरे के लिये खड्डे खोदने से सब ही के लिये खड्डे तयार होजाते हैं और सब ही खड्डों में गिरते हैं।

नेकी की राह पर खड्डे नहीं हैं। वह सीधी और निर्बाध है। यदि कभी कहीं कोई खड्डा दिखाई पड़ता है, तो नेकी की राह के राही उसे फ़ौरन भर देते हैं। नेकी की राह पर सब सकुशल निर्बाधता के साथ आगे बढ़ते चले जारहे हैं।

बदी का विकट मार्ग नरक की ओर जा रहा है। बदी के मार्ग पर चलनेवालों का हर क़दम उन्हें नरक के निकट लेजारहा है।

नेकी का राजपथ स्वर्ग की ओर जारहा है। नेकी के पथ के पथिकों का प्रत्येक पग उन्हें स्वर्ग के निकट ले जा रहा है।

बदी के मार्ग पर गमन करनेवालों की यात्रा जब समाप्त होगी, तब वे अपने आपको अन्धकार से आच्छादित नरक में पायेंगे।

नेकी की राह के राहियों की यात्रा जब समाप्त होगी, तब वे अपने आपको ज्योति से आवृत स्वर्ग में पायेंगे।

बदी की राह के राही घोर नरक में तड़फड़ायेंगे। नेकी के पथ के पथिक स्वर्ग को पार करके कल्याण के सुगीत गाते हुए मोक्ष के सानु [उच्चतम शिखर] पर चढ़ जायेंगे।

नेकी की राह पर चलते हुए (देव सोम) दिव्य रस ! (देव सोम) दिव्य आनन्द ! (आ) आ, हमारे सब ओर, हमारे पग पग पर (पवस्व) क्षरण कर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदी की राह पर चलनेवालो! स्मरण रखो—(अलाय्यस्य परशुः) आततायी का परशु, बदी का फावड़ा (तं आखुं चित् एव) उस खोदनेवाले को भी (ननाश) नष्ट कर दिया करता है, खड्डे में गिरा दिया करता है।

बुराई करके मत हंस,
क्योंकि तेरा भी बुरा होगा।
भलाई करके तू हंस,
क्योंकि तेरा भी भला होगा॥
तू रख स्मरण सदा,
जैसा करेगा वैसा फल होगा।
बुराई कर बुराई पा,
भलाई कर भला होगा॥
बुराई कर नरक में जा,
जहां रोना ही रोना है।
भलाई करके वह पद पा,
जहां हंसना ही हंसना है।
बुराई करके खड में गिर,
जहां पर नाश निश्चित है।
भलाई करके ऊपर चढ़,
जहां अविनाश निश्चित है॥

निन्दारहित समालोचना

न युष्मे वाजबन्धवो निनित्सुश्चन मर्त्यः।
अवद्यमधि दीधरत्॥ (ऋ० ८-६८-१६)

न युष्मे वाज-बन्धवः निनित्सुः चन मर्त्यः। अवद्यं अधि दीधरत्॥

(वाज-बन्धवः) वाज-बन्धुओ! (युष्मे) तुममें (निनित्सुः मर्त्यः चन) समालोचक मनुष्य भी (अवद्यं) निन्दा को (न अधि दीधरत्) न धारण करे॥

वाज का अर्थ यहां ज्ञान है। बन्धु का अर्थ है बंधा हुआ। वाज-बन्धु का अर्थ है ज्ञान से बंधा हुआ, ज्ञानयुक्त, ज्ञानी।

वैदिक वाङ्मय में बन्धु का अर्थ भ्राता या भाई भी है। प्रेम की डोरी से जो बंधा हुआ हो, वही बन्धु-भ्राता-भाई है। जो प्रेम के बन्धन से बंधा हुआ नहीं है, वह सहोदर होने पर भी न बन्धु है, न भ्राता, न भाई।

बन्धु, बंधा जो प्रेमसगाई।
प्रेमविहीन न बन्धु न भाई॥

वद्य का अर्थ है कहने योग्य। अवद्य का अर्थ है न कहने योग्य, निन्दा।

निन्दा और समालोचना में बहुत अन्तर है। निन्दा व्यक्ति की की जाती है और व्यक्तिगत द्वेष के कारण की जाती है। समालोचना कृति, रचना, सिद्धान्त, मन्तव्य और मान्यता की की जाती है, ईर्ष्या द्वेष से रहित होकर लोकहित में की जाती है और सदाशयता के साथ की जाती है।

निन्दक और समालोचक में भी अन्तर है। जो ईर्ष्या द्वेष के वशीभूत होकर किसी की व्यक्तिगत निन्दा करता है, वह निन्दक है। जो निष्पक्ष होकर सदाशयता के साथ शालीनतापूर्वक किसी की कृति, रचना, सिद्धान्त, मन्तव्य या मान्यता की विवेचना करता है, उसे समालोचक कहते हैं।

जब समालोचक समालोचना करता हुआ पक्षपात या द्वेष के कारण निराधार और मिथ्या दोषारोपण करके सम्बन्धित व्यक्ति के व्यक्तित्व पर आक्रमण करता है, तब समालोचक समालोचक न रहकर निन्दक बन जाता है और उसकी समालोचना समालोचना न होकर निन्दा होजाती है।

समालोचना एक परमोत्कृष्ट कला ही नहीं है, एक परम पुनीत साधना भी है। आस्तिक, धर्मात्मा, निरभिमान, अनहंकार, अनासक्त, निस्पृह, निर्मल, साधनाशील, बहुज्ञ और बहुश्रुत जन ही समालोचना के पुनीत आसन को सुशोभित कर सकते हैं। सच्चा समालोचक बनना एक कठिन साधना है तो सच्ची समालोचना करना एक अलौकिक सिद्धि है।

प्रभु करें, आज के समालोचकों के जीवन ऊंचे उठें और वे निन्दारहित सत्य और शिव समालोचना की पावन कला से कलान्वित होजायें।

(वाज-बन्धवः) ज्ञान-बन्धुओ! ज्ञान से युक्त बन्धुओ! ज्ञानालंकृत बहिनो और भाइयो! न तो तुम कभी किसी की निन्दा करो, (न) न (युष्मे) तुममें से कोई (निनित्सुः मर्त्यः चन) समालोचक मानव भी (अवद्यं अधि दीधरत्) निन्दा को धारण करे।

वाज-बन्धुओ!
तुममें कोई समालोचक भी,
करे न निन्दा कभी किसी की॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निन्दाभिशाप

इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं च यत्।
यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम्।
आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु ॥
(य० ६-१७)

इदं आपः प्र-वहत अवद्यं च मलं च यत्।
यत् च अभि-दुद्रोह अनृतं यत् च शेपे अभिरुनम्।
आपः मा तस्मात् एनसः पवमानः च मुञ्चतु ॥

१) मुझमें (यत्) जो (अवद्यं) निन्दा (च च) और (मलं) मल-मलिनता है।

२) (च) और [मैंने] (यत्) जो [लोगों के साथ] (अभि-दुद्रोह) अभि-द्रोह किया है। [अभि=सबके प्रति। द्रोह=उपद्रव। अभि-द्रोह का अर्थ है सबके साथ उपद्रव-द्रोह करना]।

३) मुझमें जो (अनृतं) असत्य है।

४) (च) और (यत्) जो [मैं] (अभीरुनं) निरपराध को (शेपे) लाञ्छित करता हूं, सताता हूं।

५) (आपः) जलधाराओ! (इदं) इसे (प्र-वहत) बहा ले जाओ।

६) (आपः) जलधारायें (मा) मुझे (तस्मात् एनसः) उस पाप से [मुक्त करें] (च) और (पवमानः) पावन प्रभु (मुञ्चतु) मुक्त करे।

मन्त्र में निन्दा, मल, अभिद्रोह, अनृत तथा निरपराध को लाञ्छित करके सताना—इन पांच कुकृत्यों को पाप कहा गया है और इनसे छुटकारा पाने के उपाय भी बताये गये हैं।

निन्दा एक जघन्य पाप है और है एक भयंकर अभिशाप। निन्दा से जितनी हानि स्वयं निन्दक की होती है, उतनी हानि उन व्यक्तियों की नहीं होती, जिनकी निन्दा की जाती है। वे व्यक्ति यदि उदार और समझदार हों, तो निन्दक के द्वारा अपने दोषों की चर्चा सुनकर वे निरन्तर अपना सुधार करते रहते हैं और एक दिन नितान्त निर्दोष और निष्पाप बन जाते हैं। यदि वे व्यक्ति क्षुद्राशय होते हैं तो वे बदले में अपने निन्दक की निन्दा करने लगते हैं और स्वयं भी निन्दक बन जाते हैं। अपने अपने निन्दकों की निन्दा कर-कर के स्वयं निन्दक बन जाने से ही संसार में निन्दकों की संख्या इतनी अधिक होगयी है।

किसी के दोषों की दूसरों से चर्चा करना या समाज में किसी के दोषों का प्रकाशन करना निन्दा कहाता है। निन्दा कभी भी सदाशयता या सुधारभाव से नहीं की जाती, अपि तु क्षुद्राशयता तथा बदनाम करने की दृष्टि से की जाती है। निन्दक की दृष्टि किसी के गुणों पर नहीं, दोषों पर ही पड़ती है। निन्दक दोषों का ही दर्शन करता है, दोषों का ही वर्णन करता है, दोषों का ही श्रवण करता है और दोषों का ही चिन्तन करता है। जो जैसा देखता, बोलता, सुनता और सोचता है, वह वैसा ही बन जाता है। दूसरों के दोषों का दर्शन, वर्णन, श्रवण और चिन्तन करते-करते निन्दक स्वयं दोषों की खान बन जाता है, वह स्वयं दोषों से भरपूर भर जाता है।

दोषों की खान बनकर, दोषों से भरपूर भरकर, निन्दक मलोपेत होजाता है, मलिनता से मलिन होजाता है। उसका अन्तः-करण सर्वथा मलिन होजाता है, मल से आपूर पूरित होजाता है।

मल और विक्षोभ का सदा साथ रहता है। अन्तःकरण में मल के संचित होने से चित्त में सदा विक्षोभ होता रहता है। विक्षोभ ही अभिद्रोह का जनक है। मलिन होकर निन्दक अभिद्रोही बन जाता है और साधु असाधु, स्त्री पुरुष, सबके साथ राह चलते सकारण अकारण द्रोह, उपद्रव, कटाक्ष, झगड़ा, टण्टा, पार्टीबाज़ी, दलबन्दी, दुर्व्यवहार, वादविवाद करने लगता है।

अभिद्रोह के कारण निन्दक की मानसिक स्थिति अतिशय विषम होजाती है और उसके चरित्र की भित्ति न केवल हिल जाती है अपि तु धराशायी होजाती है। अभिद्रोह के जाल जंजाल में फंसकर उसे उचितानुचित का विवेक और सत्यासत्य का विचार नहीं रहता है। हर बात में अपने दुराग्रह को पूरा करने के लिये वह असत्य का आश्रय लेने लगता है और असत्य उसके जीवन में घर कर जाता है। वह असत्य भाषण और असत्य व्यवहार का अभ्यासी बन जाता है।

मल विक्षोभ से विक्षुब्ध रहता हुआ निन्दक न केवल अभिद्रोह, असत्य भाषण और असत्य व्यवहार करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता है, अपि च अपने दोषों को छिपाने के लिये वह निर्दोष और निरपराध व्यक्तियों के प्रति निराधार लाञ्छन लगा लगा कर, उन्हें लाञ्छित और बदनाम करके, उन्हें सताने में अपनी शान समझता है।

निन्दक स्वनिर्मित विपत्ति-जाल में जकड़ जाता है। निन्दा, मल, अभिद्रोह, असत्य और लाञ्छनारोपण के पंच-दंशों से अनवरत डसा जाता हुआ, वह नितराम उत्तेजित, उद्विग्न, चिन्तित, व्यथित, अस्थिर, अशान्त, दुखी और विषादयुक्त रहने लगता है। अपनी इस अवस्था के कारण वह अपने अन्दर ग्लानि अनुभव करता है और इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिये वह छटपटाने लगता है।

इस स्थिति से छुटकारा पाने के दो ही उपाय हैं— एक आपः और दूसरा पवमान।

आपः का प्रयोग सदा बहुवचन में होता है। आपः नाम जलधाराओं का है। क्या अपने शिर पर जल की धारायें छोड़कर निन्दक पंच-दंशों से मुक्त हो सकता है? नहीं, कदापि नहीं। ये जलधारायें तो केवल शरीर को ऊपर से शुद्ध करती हैं। आपः का प्रयोग यहां उन जल-धाराओं के लिये हुआ है, जो पश्चात्ताप के अश्रुओं के रूप में पश्चात्तापकर्ता के नेत्रों से प्रवाहित होती हैं।

पवमान नाम है परम पवित्र पतित-पावन प्रभु का। पवमान का अर्थ है क्षरण तथा शोधन करनेवाला।

जब पापी अपने पापों पर पछता-पछता कर अपने नेत्रों से अविरल अश्रुधारायें बहाता हुआ पवमान से प्रार्थना करता है, नित्य निरन्तर प्रार्थना करता है, तो प्रार्थी की अश्रुधाराओं का प्रबल प्रवाह उसके अन्तः के मलों को बहा लेजाता है और प्रार्थी की चीत्कार से द्रवित होकर करुणा-मय पवमान उसके अन्तःकरण को निर्मल करके उसे पापों से मुक्त कर देते हैं, उसे निर्दोष और निष्पाप बना देते हैं, पांचों दंशों से उसका छुटकारा कर देते हैं।

पंच-दंशों से मुक्ति पाने के लिये निन्दक को चाहिये वह सच्चे मन से गहन पश्चात्ताप करता हुआ अश्रुमुख होकर, बिलक-बिलक कर, विनय करे—

(आपः) अश्रुधाराओ! (इदं) इस सबको (प्र-वहत) बहा लेजाओ—मेरे अन्दर (अवद्यं च मलं च यत्) जो निन्दा और मल है, मैंने लोगों के साथ (यत् च अभि-दुद्रोह) जो अभिद्रोह किया है, मुझमें जो (अनृतं) असत्य घर कर गया है, और मैं (यत् च शेपे अभीरुणं) जो लाञ्छित करके सताता हूं निरपराध को।

(तस्मात् एनसः) उस [निन्दा, मल, अभिद्रोह, असत्य और लाञ्छनारोपण] पाप से (मा) मुझे (आपः) अश्रु-धारायें [मुक्त करें] (च) और (पवमानः) पवमान (मुञ्चतु) मुक्त करे।

जलधाराओ! बहा लेजाओ,
जो निन्दा जो मल है,
अभिद्रोह किया जो मैंने,
जो असत्य मेरे जीवन में,
और सताता निरपराध को,
जो मैं लाञ्छित करके।
मुक्त करें इस सब पातक से,
मुझको अविरल जलधारायें,
मुक्त करे इस सब पातक से,
मुझे पतित-पावन भगवान्॥

गीता—योग

—२९—

[तीसरा अध्याय]

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥९

(यज्ञ-अर्थात् कर्मणः अन्यत्र) यज्ञ के लिये कर्म से अतिरिक्त (अयं लोकः) यह संसार (कर्म-बन्धनः) कर्म-बन्धन है। (कौन्तेय) कुन्तीपुत्र! (मुक्त-संगः) मुक्तसंग/संगरहित/अनासक्त/होकर (तत्-अर्थं) उस [यज्ञ] के लिये (कर्म सं-आचर) सम्यक् कर्म कर॥

यज्ञार्थ कर्म से अतिरिक्त यह संसार कर्मबन्धन है।
अर्जुन, मुक्तसंग होकर ही कर यज्ञार्थ कर्म तू सम्यक्॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥१०

(सह-यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा) यज्ञसहित प्रजाओं को रचकर (पुरा) पूर्व काल में (प्रजापतिः) प्रजापति ने (उवाच) कहा—"(अनेन) इस यज्ञ से (प्रसविष्यध्वं) बढ़ो। (एषः) यह [यज्ञ] (वः) तुम्हारे लिये (इष्ट-काम-धुक् अस्तु) इच्छित कामनाओं को दुहनेवाला हो"॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञसहित प्रजायें रचकर प्रजापति ने कहा पूर्व ही ।
इससे वृद्धि करो बढ़ो तुम, हो यह इष्टकामधुक् तुमको ॥

"देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११

(अनेन) इस [यज्ञ] से (देवान् भावयत) देवों को उन्नत करो। (ते देवाः) वे देव (वः) तुम्हें (भावयन्तु) उन्नत करें। तुम (परस्परं) एक दूसरे को (भावयन्तः) उन्नत करते हुए (परं श्रेयः) परम कल्याण (अवाप्स्यथ) प्राप्त करोगे" ॥

इससे उद्धारो देवों को देव तुम्हें उद्धारें ।
तुम उद्धरते हुए परस्पर परम श्रेय पाओगे ॥

"इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥१२

(यज्ञ-भाविताः) यज्ञ से समृद्ध होकर (देवाः) देव (वः) तुम्हें (हि) अवश्य (इष्टान् भोगान्) इच्छित भोगों को (दास्यन्ते) प्रदान करेंगे। (तैः) उन [देवों] द्वारा (दत्तान्) दिये हुए [भोगों] को (यः) जो (एभ्यः) इन [देवों] के लिये (अप्रदाय) न देकर (भुंक्ते) भोगता है, (स्तेनः एव) चोर ही है (सः) वह" ॥

यज्ञ-भावित ही देव तुम्हें देंगे इच्छित भोगों को ।
चोर ही वह भोगे उनके दिये भोगों को उन्हें न देकर ॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुचयन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥१३

(यज्ञ-शिष्ट-अशिनः) यज्ञ शेष-खानेवाले (सन्तः) सन्त जन, सत्पुरुष (सर्व-किल्बिषैः) सब-पापों से (मुच्यन्ते) मुक्त होजाते हैं। (ते तु) वे तो (अघं भुंजते) पाप खाते हैं, (ये पापाः) जो पापी (आत्म-कारणात्) आत्म-कारण से (पचन्ति) पकाते हैं ॥

यज्ञशेषसेवी साधु जन छुट जाते हैं सब पापों से ।
वे तो खाते पाप पकाते जो पापी निज-हेतु ॥

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१४

(भूतानि) प्राणी (अन्नात्) अन्न से (भवन्ति) होते हैं। (अन्न-सम्भवः) अन्नों का सम्भवन-उत्पादन (पर्जन्यात्) मेघ से [होता है]। (पर्जन्यः) मेघ (यज्ञात्) यज्ञ से (भवति) होता है। (यज्ञः) यज्ञ (कर्म-सं-उत्-भवः) कर्मों से समुत्पन्न होता है, कर्मों से उपजता है ॥

अन्न से होते प्राणी सकल, मेघ से अन्नों का सम्भवन ।
यज्ञ से होता है पर्जन्य, यज्ञ का कर्मों से उद्भवन ॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५

(कर्म ब्रह्म-उत्-भवं विद्धि) कर्म को ज्ञान से उत्पन्न हुआ जान। (ब्रह्म अक्षर-सं-उत्-भवं) ज्ञान अविनाशी से उत्पन्न हुआ है। (तस्मात्) उस [अक्षर] से (सर्व-गतं ब्रह्म) सर्वगत ज्ञान (नित्यं) नित्य, सदा सर्वदा, सदा से और सदा ही (यज्ञे) यज्ञ में (प्रतिष्ठितं) प्रतिष्ठित है ॥

कर्म उद्भवित ज्ञान से जान, ज्ञान का अक्षर से उद्भवन ।
सर्वगत उस अक्षर से ज्ञान, यज्ञ में रहता नित्य प्र-तिस्थ ॥

[इन सात श्लोकों की व्याख्या आगामी अंक में एक साथ की जायेगी।]

साधना

—३४—

भावसमाधि—ब्रह्ममयता

अखिल ब्रह्माण्ड ब्रह्ममय है। ब्रह्माण्ड ब्रह्म में है। ब्रह्म ब्रह्माण्ड में है। ब्रह्म व्यापक है। ब्रह्माण्ड व्याप्य है। ब्रह्माण्ड ब्रह्म में निहित है। ब्रह्म ब्रह्माण्ड में अन्दर बाहर सर्वत्र व्याप रहा है।

यह अनन्त और असीम ब्रह्माण्ड अमा है, अमापनीय है। अनन्त काल से मानव ब्रह्माण्ड को मापकर उसकी थाह पाने में लगा हुआ है। किन्तु वह इसे न माप सका है, न कभी माप सकेगा। अनन्त और असीम होने पर भी यह ब्रह्माण्ड ब्रह्म की अपेक्षा से अण्ड [अण्डे] के समान सान्त और ससीम है।

प्रकृति के परमाणु और परमाणुओं से बना हुआ यह अखिल ब्रह्माण्ड सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म से ओत प्रोत है। अत एव सृष्टि का एक एक कण सच्चिदानन्द की सच्चिदानन्दता से युक्त है।

प्रकृति सत् है, जड़ नहीं है, सत् है। आत्मा सत् और चित् है। ब्रह्म सत्, चित् और आनन्द है। सत् और सचित् सबमें सच्चिदानन्द समा रहा है। यह सब सच्चिदानन्दरूप है। जिस प्रकार कोयलों में अग्नि की व्याप्ति से कोयले अग्निरूप होते हैं, वैसे ही सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म की व्याप्ति से यह अखिल ब्रह्माण्ड सच्चिदानन्दरूप है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस प्रकार आत्मा की चेतना से सारा शरीर आत्म-चेतना से चेतनामय रहता है, उसी प्रकार सच्चिदानन्द ब्रह्म की व्याप्ति से यह अखिल ब्रह्माण्ड ब्रह्म की सच्चेतना तथा उसके आनन्द से पूरित है। जब आत्मा शरीर को छोड़कर चला जाता है, तो शरीर आत्मा की आत्मचेतना से शून्य होजाता है। सच्चिदानन्द ब्रह्म का कभी कहीं से बहिर्गमन नहीं होता है। यह सब सदा ही तन्मय रहता है।

रूपं-रूपं प्रतिरूपो बभूव—वह रूप-रूप में प्रतिरूप होरहा है, ऋग्वेद की इस सूक्ति में यही भाव संनिहित है। वह रूप-रूप में प्रतिरूपित है। रूप-रूप में उसी रूप-राशि का रूप रूपित है। हर सौन्दर्य में उसी के सौन्दर्य की छायाछवि छटक रही है।

हर वस्तु में उसे देखना, हर दृश्य में उसकी दर्शनीयता का दर्शन करना, प्रत्येक सौन्दर्य में उसके सौन्दर्य का अवलोकन करना, प्राणी मात्र में उसे अनुप्राणित अनुभव करना—यह ब्रह्मसमाधि है।

क्या बताऊं कि मुझे क्या क्या नज़र आता है।
ज़र्रे ज़र्रे में तेरा जलवा नज़र आता है।
खिलीं जो कलियां नज़र आया तेरा मुस्काना।
गुलों में मुझको तेरा हंसना नज़र आता है॥
उषा की सुरखी में सुरखी तेरे रुखसारों की।
हर एक अदा में तू इठलाता नज़र आता है॥
जिसने तत्त्वबोध पहचाना।
सब ब्रह्माण्ड ब्रह्ममय जाना॥

ब्रह्ममयता की इस अनुभूति से साधक की दृष्टि में ब्रह्म-दृष्टि की स्थापना होती है।

विचार कीजिये। जब कण-कण में ब्रह्म की सत्ता संनिहित है, तब कोई भी पदार्थ ब्रह्ममयता से शून्य कैसे हो सकता है। जब सबमें सर्वत्र चेतन ब्रह्म व्याप रहा है, तब कोई भी वस्तु चेतनारहित कैसे हो सकती है। जब सब में आनन्दस्वरूप समा रहा है, तब कोई भी आनन्दविहीन कैसे हो सकता है।

सच्चिदानन्द की चेतना और उसका आनन्द सर्वत्र आपूर है। अपनी दृष्टि में ब्रह्ममयता लाइये। अपनी भावना में ब्रह्म की व्याप्ति को बसाइये। अपनी अनुभूति में उसकी आनन्दमयी सत्ता और उसकी चिन्मयी चेतना की अनुभूति जगाइये। ऐसा करने से आपकी दृष्टि में दिव्यता का प्रस्फुटन होगा और हर वस्तु में आपको ब्रह्म की ज्योति जगमगाती नज़र आयेगी। इस अभ्यास से आपकी आत्म-चेतना में दिव्यता का संचार होगा और सबमें सर्वत्र आपको ब्रह्म की दिव्य चेतना का आभास होगा। इस अनुभूति से आपको सबमें सर्वत्र ब्रह्मानन्द का दिव्य आस्वादन होगा।

गृहस्थाश्रम

—१८—

[राष्ट्रसेवा]

सैकड़ों बल्कि हज़ारों बरस बाद हमारा भारत स्वतन्त्र हुआ है। हमारा राष्ट्र आज एक स्वतन्त्र राष्ट्र है, जहां इस बात की बड़ी खुशी है, वहीं चारों ओर दिन-दिन फैलते हुए पतन को देखकर रंज भी होता है। राष्ट्र की सेवा करने की इच्छा होती है, पर गृहस्थी के कारण कुछ बन नहीं आता। गृहस्थ में रहते हुए देश की सेवा किस प्रकार करूं, यह बताने की कृपा करें। (एक माता)

यह एक नितान्त भ्रान्त धारणा है कि गृहस्थ में रह-कर राष्ट्र की सेवा करना असम्भव अथवा दुष्कर है। वास्तविकता यह है कि राष्ट्र की सच्ची, स्थायी और आदर्श सेवा गृहस्थी ही कर सकते हैं।

राष्ट्र की सबसे बड़ी सेवा है अपनी सन्तान को सु-सन्तान बनाना। आपकी आजकी सन्तान ही कल के नागरिक नागरिका हैं। बड़े होने पर ये ही राष्ट्र के संचालक बनेंगे। यदि आप अपनी सन्तान को प्रत्येक दृष्टि से आदर्श नागरिक बनाते हैं तो आप न केवल अपने प्रिय राष्ट्र की, अपि तु सारे संसार की अमूल्य सेवा करते हैं।

परिवार-परिवार करके ही तो राष्ट्र बसा हुआ है। जो व्यक्ति अपने परिवार को राष्ट्रनिष्ठ बनाता है, वह भी राष्ट्र की महान् सेवा करता है। आदर्श राष्ट्रनिष्ठ परिवार के अनुकरण से अन्य परिवार राष्ट्रनिष्ठ बनाये जा सकते हैं।

आप अपने घर को स्वच्छ, सुव्यवस्थित और सुन्दर रखिये और अवकाश के समय में अपने ग्राम, मुहल्ले या नगर के घर-घर में जाकर घर को स्वच्छ, सुव्यवस्थित और सुन्दर रखने की कला सिखाइये।

आप अपने घर के द्वार और अपने घर के सामने की नालियों व मार्ग को स्वच्छ रखिये और अपने पड़ोसियों को वैसा करने की सक्रिय प्रेरणा कीजिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप अपने परिवार के व्यक्तियों को शिष्ट, सुशील और शालीन बनाइये और अन्य परिवारों के लिये इस विषय में एक अनुकरणीय आदर्श स्थापन कीजिये।

किसी कार्य विशेष का नाम राष्ट्र-सेवा नहीं है। आपका अपना प्रत्येक अच्छा कार्य और आपकी अपनी प्रत्येक सुन्दर चेष्टा राष्ट्र की सुसेवा है। आप जो कार्य करें, ऐसे ढंग से करें, कि उससे राष्ट्र का अहित न होकर, हित ही हो। प्रत्येक विषय में आदर्श की स्थापना राष्ट्र की एक ठोस सेवा है।

जहां-जहां आपकी पहुंच है, वर्ग-वर्ग में पारस्परिकता बढ़ाइये, परस्पर सचाई और ईमानदारी के साथ व्यवहार कीजिये, समाज में सहयोग और सहानुभूति के संस्कार जमाइये, सहिष्णुता और समन्वय की वृत्ति का संसृजन कीजिये, राष्ट्रहित के कार्यों में सरकार व जनता का हाथ बटाइये, लोगों को राष्ट्रभाषा सिखाइये।

जो जहां है, वहीं स्थित रहे और अपने-अपने कर्तव्य का सम्पादन राष्ट्रनिष्ठा के साथ करे—यही सच्ची राष्ट्रसेवा है।

राष्ट्र-सेवा के कार्य हैं सभी।
जो जहां है वहीं करे सेवा।।

चरित्र—निर्माण

—८—

राष्ट्रीय चरित्र

राष्ट्रीय चरित्र का मूलाधार है राष्ट्र-निष्ठा। प्रत्येक नागरिक की अपने राष्ट्र में पूर्ण निष्ठा होनी चाहिये। निष्ठा का सम्बन्ध प्रत्येक नागरिक के अपने स्वभाव और संस्कार से है। जिस व्यक्ति के स्वभाव और संस्कार में निष्ठा अंकित होती है, वही व्यक्ति अपने आप में निष्ठा रखता है, वही व्यक्ति अपने परिवार में निष्ठा रखता है, वही व्यक्ति अपने समाज में निष्ठा रखता है, वही व्यक्ति अपने राष्ट्र में निष्ठा रखता है और वही व्यक्ति अपने विश्व में निष्ठा रखता है।

"तुझसे राष्ट्र भ्रष्ट न हो", राष्ट्रनिष्ठ व्यक्ति का यह आदर्श वाक्य है। राष्ट्रीय चरित्र से सुशोभित एक राष्ट्रनिष्ठ नागरिक कदापि कोई ऐसा कार्य न करेगा, जिससे राष्ट्र में किसी भी प्रकार की तनिक भी भ्रष्टता फैले। राष्ट्रीय चरित्र से सुयुक्त एक राष्ट्रनिष्ठ नागरिका कदापि ऐसा कार्य न करेगी, जिससे राष्ट्र में [illegible] हो। राष्ट्रीय चरित्र के सुसंस्कारों से सुसंस्कृत नागरिक भ्रष्टाचार के आश्रय से धनसम्पन्न बनने की अपेक्षा दाने-दाने को तरसकर भूखा मरना पसन्द करता है।

"रहूं राष्ट्र में सदा जागता", यह राष्ट्रीय चरित्र का मूलमन्त्र है। प्रत्येक नागरिक नागरिका को चाहिये कि वह अपने राष्ट्र की सुरक्षा के लिये सदा सतर्क और सावधान रहे। अन्तर्राष्ट्रीय हलचलों तथा घटनाओं का अपने राष्ट्र की प्रगति पर क्या प्रभाव और परिणाम होगा, इससे उसे सदा अवगत रहना चाहिये। राष्ट्र में या राष्ट्र पर तनिक सा भी संकट आने पर उसें स्व सर्वस्व की आहुति देकर भी राष्ट्र के संकट का निराकरण करने में जुट जाना चाहिये।

"मातृभू पीऊं तेरा दूध", राष्ट्रीय चरित्र का यह सुन्दर सौन्दर्य है। बच्चे को अपनी मां के स्तनों का ही दुग्ध पान करना चाहिये। राष्ट्र में उत्पन्न और उत्पादित वस्तुओं का ही सेवन करना राष्ट्रीय चरित्र का उज्ज्वल प्रतीक है। स्वदेशी वस्तुओं का आत्मप्रेम के साथ सेवन करना और बहुत मजबूरी की अवस्था में ही विदेशी वस्तुओं को काम में लाना आदर्श राष्ट्रीयता है।

"राष्ट्रसेवा में हो बलि मेरी", यह है राष्ट्र की परम भक्ति। हर एक नागरिक नागरिका का जीवन राष्ट्रसेवा में समर्पित रहना चाहिये। उस जीवन को धिक्कार है, जो भोग रोग में व्यतीत होता है और चारपाई पर पड़कर शरीर-त्याग करता है। धन्य सुधन्य जीवन वह है, जो राष्ट्रसेवा में यापित हो और राष्ट्रसेवा करते हुए ही पञ्चतत्त्व को प्राप्त हो।

समन्वय की भावना राष्ट्रीयता का दृढ़ दुर्ग है। साम्प्रदायिकता, विलगता अथवा विभाजनकारिता से सर्वथा मुक्त रहकर राष्ट्र के सब धर्मों, वर्गों और वर्णों के नागरिकों में एकसूत्रता होनी चाहिये। राष्ट्र का प्रत्येक निवासी मेरा अपना आत्मीय है, जो नागरिक इस भावना से सुयुक्त रहकर अपना सब व्यवहार, व्यापार, व्यवसाय तथा समुद्योग करता है, उसका चरित्र राष्ट्रीय चरित्र है। धर्म, विचार और व्यवसाय की भिन्नता होते हुए भी राष्ट्रीयता के एक सूत्र में ग्रथित रहना नागरिक की [illegible] है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्तव्यपरायणता राष्ट्रीय चरित्र का सर्वश्रेष्ठ आभूषण है। कार्यालय काल [Office hours] में कार्यालय का ही कार्य करना, कारखाने के काल [hours] में कारखाने का ही काम करना, राजकाजकाल [Public hours] में राजकाज ही करना और एक क्षण भी व्यर्थ न खोकर एकाग्रता के साथ काम करना राष्ट्रीय चरित्र का स्तुत्य गुण है। जो जहां स्थित है और जिसका जो कर्तव्य है, यथास्थान अपने कर्तव्य का आत्मनिष्ठा [ईमानदारी] और पूर्ण तत्परता के साथ निर्वहन करे, भले ही कार्याध्यक्ष [Supervisor] उपस्थित हो या न हो। किसान, मजदूर, विद्वान् सब राष्ट्र को लक्ष्य में रखते हुए अपनी अपनी साधना में संलग्न रहें।

अध्यापक

[८]

पवित्र निष्पाप जीवन

अध्यापको!

आपका जीवन नितान्त पवित्र, निर्दोष और निष्पाप होना चाहिये। मुझे एक मर्मवेदना होती है, जब मैं अध्यापकों में व्यापे हुए दुराचार की चर्चायें सुनता हूं। अध्यापकों और अध्यापिकाओं में फैले हुए दुराचार का ही परिणाम है कि भारत के युवकों और युवतियों में चरित्र-हीनता बढ़ती चली जारही है।

अध्यापक अध्यापिकायें वास्तव में विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों के पिता माता हैं। अध्यापक-अध्यापिकाओं को चाहिये कि वे अपने विद्यार्थियों और अपनी विद्यार्थिनियों को पुत्र पुत्री के समान समझें और उसी प्रकार उनके साथ वर्तें।

अध्यापिकाओं और अध्यापकों को शृङ्गारप्रिय न होना चाहिये। उनका जीवन अतिशय सादा, सरल और स्वच्छ होना योग्य है। उनके विचार अतिशय पवित्र, उनकी भावनायें अतिशय निर्मल, उनका व्यवहार अतिशय पावन और उनका आचार परम पुनीत होना चाहिये। उनका चरित्र अतिशय चारु और उनका चरित सर्वथा अनुकरणीय होना चाहिये।

उपदेश की अपेक्षा आदर्श का कहीं अधिक महत्त्व और प्रभाव होता है। आपका खान पान, रहन सहन, चिन्तन मनन, काम काज, चलन फिरना, हंसना बोलना, पढ़ाना लिखाना—सब इतना विशुद्ध और आदर्शरूप हो और हो इतना प्रिय और आकर्षक कि आपके अनुकरण से आपके विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों के जीवन, अपि च स्वयं आपके अपने पुत्र-पुत्रियों के जीवन, स्वयमेव निखरते और उभरते चले जायें।

आपकी दृष्टि, आपकी श्रुति, आपकी वाणी और आपकी करनी हो ऐसी पावमानी और कल्याणी कि उनके पावन और पुनीत प्रभाव से आपके शिष्यों और शिष्याओं के जीवन अन्दर बाहर से सदा के लिये शुद्ध, पवित्र, निर्दोष और निष्पाप बन जायें। आप अपने स्वयं के जीवन को जितना ऊंचा उठायेंगे, आपके राष्ट्र के इन कुमारों और कुमारियों के जीवन उतने ही, बल्कि उससे भी अधिक, ऊंचे उठते चले जायेंगे। आपका अपना जीवन सार्थक होगा और उनके जीवन का उत्थान होगा। आपका कल्याण होगा और उनका भी कल्याण होगा॥ —विदेह

विद्यार्थी

[८]

समयपालन

पुत्रियो और पुत्रो,

समय पालन का दृढ़ अभ्यास करो। प्रत्येक कार्य के लिये एक समय और प्रत्येक समय के लिये एक कार्य—अपने जीवन में यह आदर्श वाक्य गहरे अक्षरों में अंकित करलो।

विद्यार्थियों के लिये दिन में शयन करना अच्छा नहीं, यद्यपि रात में निद्रा की कमी, आलस्य, थकान अथवा अस्वास्थ्य की अवस्था में ऐसा किया जा सकता है। सामान्य सुन्दर नियम है—दिन में काम, रात में आराम।

रात के दश बजे सोना और प्रातः चार बजे उठना। इसके अतिरिक्त सारा समय निश्चित कार्यक्रमानुसार निर्वहन होना चाहिये। यदि छः घण्टे की निद्रा आपके लिये पर्याप्त नहीं है, तो आप रात के दश बजे सोकर प्रातः पांच बजे उठ सकते हैं। यदि सात घण्टे की निद्रा भी आपके लिये कम पड़ती है, तो आप रात के नौ बजे सोकर सवेरे पांच बजे उठ जायें। किसी भी अवस्था में सायं नौ बजे से पहले सोना और प्रातः पांच बजे के बाद उठना आपके जीवन के लिये घातक सिद्ध होगा।

चौबीस घण्टे में आठ घण्टे से अधिक न सोना चाहिये। शयन के घण्टों के अतिरिक्त शेष सारे घण्टों के लिये दैनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनिश्चित कार्यक्रम निर्धारित करो और कठोरता तथा तत्परता के साथ उसका पालन करो। दैनिक निश्चित कार्यक्रम में कभी किसी दिन परिवर्तन करना हो, तो उसे अपनी डायरी में अंकित करलो और तदनुसार कार्यक्रम का निर्वहन करो।

किसी भी कार्यक्रम में निश्चित समय से पहले या पीछे पहुंचना अनैतिक तो है ही, असभ्यता और असांस्कृतता का भी द्योतक है। स्मरण रखो—एक सभ्य और सुसंस्कृत व्यक्ति सर्वत्र निश्चित समय पर पहुंचता है और निश्चित समय पर ही वहां से विदा होजाता है।

आलस्य, प्रमाद, गप शप, स्वांग, रासलीला, तमाशा, ड्रामा, सिनेमा, ताश, चौपड़, शतरंज आदि निरर्थक बातों में भूलकर भी अपना समय न खोओ। एक-एक क्षण का सतर्कता के साथ सदुपयोग करो।

प्रत्येक समय के लिये एक उपयोगी कार्य होना चाहिये और प्रत्येक उपयोगी कार्य के लिये समय निकाला जाना चाहिये। जीवन के अमूल्य क्षणों के सदुपयोग में ही जीवन की सार्थकता है।

—विदेह

शिक्षक के गुण

[सन्त विनोबा]

त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधोऽभिशस्तेरव स्पृधि।
त्वं न ऊती तव चित्रया धिया शिक्षा शचिष्ठ गातुवित्॥ (ऋ० ८-६६-१४)

हे शक्तिशाली! हे गातुवित्! तू हमको उत्तम शिक्षण दे। तेरी भिन्न शक्तियां सामने दिखा। तेरी बुद्धि प्रकट कर। तेरी रक्षण-शक्ति, उत्पादन-शक्ति, सब दिखा, उनका निरसन करनेवाला कौन मिलेगा?

× × × ×

शिक्षक को वेद में "गातुवित्" कहा है। जिसको अंग्रेजी में path finder कह सकते हैं। "गातु" याने 'गमन-मार्ग'। "गातुवित्" याने गमन-मार्ग को ढूंढनेवाला। शिक्षक के लिये वेद का यह विशेष शब्द है। गुरु को अत्यन्त शक्तिशाली मार्गदर्शक के रूप में वेद देखता है। ऊपर कहा है, "हे अत्यन्त शक्तिशाली गुरु! हे मार्ग ढूंढनेवाले! तुम हमें शिक्षण दो"। इस तरह शिक्षक को अत्यन्त शक्तिशाली कहा है। इसलिये शिक्षक मन से कभी दुर्बल नहीं हो सकता। सबसे अधिक ताक़त अगर किसी के हाथ में है, तो वह शिक्षक के हाथ में है। इसीलिये वह बड़ा है। ज्ञान देकर भावी योजना का मार्ग-दर्शक शिक्षक हो सकता है। इसलिये कोई उससे अधिक शक्तिशाली भी हो नहीं सकता। पर अगर वही कमज़ोर रहा, तो कुल मार्गदर्शन ही कमजोर होगा, कुल योजना कमज़ोर हो-जायेगी और कुल देश कमज़ोर बनेगा।

परन्तु इन दिनों शिक्षकों की हैसियत इतनी हलकी करदी गयी है कि वे अपने में ताक़त ही महसूस नहीं करते, क्योंकि वे नौकर का हैसियत में आगये हैं। सरकार जो रास्ता बतायेगी, उसपर उनको चलना है। सरकार अपने विद्वानों के ज़रिये शिक्षण की योजना बनाती है, परन्तु आखिर वे होते हैं सरकारी दिमाग़ के पीछे काम करनेवाले विद्वान्। तो जिस रंग की सरकार होगी, उसी रंग के वे विद्वान् होते हैं। ऐसे विद्वान् ग़ुलाम से अधिक हैसियत के नहीं हैं; वे स्वतन्त्र बुद्धि के विद्वान् नहीं होते हैं। उनको आदेश दिया गया होता है; वे अधीन होते हैं। फिर जो योजना बनती है, उसी के आधार पर शिक्षकों को अपनी योजना बनानी पड़ती है। उस बनी-बनाई योजना में इधर एक कॉमा, उधर एक विराम-चिह्न, वग़ैरह फ़रक़ शिक्षक कर सकते हैं, परन्तु इससे ज्यादा फ़रक वे नहीं कर सकते। शिक्षकों की यह हालत सबको मालूम है। विद्यार्थी भी इसको देखता है। इसलिये विद्यार्थी अपने उत्तर जीवन में शिक्षकों से सम्बन्ध नहीं रखता है। विद्यार्थी के जीवन में शिक्षकों को स्थान ही नहीं है। आज विद्या फैलाने की कोशिश होरही है। स्कूलों की और शिक्षकों की संख्या भी बढ़रही है, लेकिन उसमें गुरु-भावना नहीं रहती। शिक्षक अच्छे हैं, याने वे अच्छे नौकर हैं। शिक्षक खराब हैं, याने वे खराब नौकर हैं। अपने घर में मां नौकर नहीं है, पिता नौकर नहीं है, भाई नौकर नहीं हैं। लेकिन हमारे शिक्षक नौकर हैं। इसलिये हमारे जीवन के गम्भीर प्रसंगों में हम अपने पिता, माता, भाई, मित्र की सलाह ले सकते हैं। यह भी हो सकता है कि कोई महान् नेता हो, तो उसकी भी सलाह लेंगे। परन्तु शिक्षक की सलाह विद्यार्थी नहीं लेगा।

उसका कारण यही है कि शिक्षण-विभाग सरकारी विभाग है, स्वतन्त्र विभाग नहीं है। न्याय-विभाग में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायाधीश सरकारी होते हैं। सरकार द्वारा बनाये कानून के वश वे होते हैं। फिर भी वें स्वतन्त्र होते हैं। वे भी नौकर हैं, क़ानून में बदल नहीं कर सकते। फिर भी वे आज़ाद हैं एवं सरकार के बनाये क़ानून को मानकर भी सरकार के ही ख़िलाफ़ न्याय दे सकते हैं। तो न्यायाधीश जितना स्वतन्त्र है, उससे बहुत ज्यादा शिक्षक को स्वतन्त्र होना चाहिये। पर आज तो जो स्वतन्त्रता न्याय-विभाग को है, उतनी भी शिक्षण-विभाग को नहीं है। शिक्षक तो सारे देश की बुद्धि को, सारे देश के हृदय को, मार्गदर्शन करनेवाला है। इस वास्ते उसे तो अधिक शक्तिशाली होना चाहिये।

इसीलिये तो वेद में भी शिक्षक को सबसे अधिक शक्तिशाली कह दिया—"शचिष्ठ"—अत्यन्त श्रेष्ठ और शक्तिशाली, और "गातुवित्"—मार्ग ढूंढनेवाला। वेद में प्रार्थना की है, "शिक्षा शचिष्ठ गातुवित्"—हे श्रेष्ठ शक्तिशाली, मार्ग ढूंढनेवाले! हमें शिक्षा दे। यहां शिक्षक को अत्यन्त शक्तिशाली कहा है, याने उसकी स्वतन्त्र बुद्धि की प्रभा को, गति को, कोई बाधा ही नहीं है। जैसे हंस आकाश में खुलकर उड़ेगा, वैसे ही उसकी गति होगी। गरुड़ के समान या श्येन पक्षी के समान आक्रमणकारी विहार करनेवाला शिक्षक होना चाहिये।

उससे मार्गदर्शन पाने पर हम उससे क्या चाहते हैं, यह भी वेद ने कहा है। आज जो हम चाहते हैं, वे ही चीज़ें वहां कही गई हैं। "त्वं नो अस्य अमतेरुत क्षुधोऽभिशस्तेरव स्पृधि"—यह जो हमारा अज्ञान है, उसके निरसन का मार्ग हमको दिखा, हमारी भूख के निरसन का मार्ग दिखा, तरह तरह की जो बीमारियां हैं, उनके निरसन का मार्ग दिखा। यहां तीन बातों का उल्लेख है; अमति, क्षुधा और अभिशस्ति। इन तीन बातों के निरसन का मार्ग दिखाने का काम शिक्षक को करना है। इस वास्ते वह "शचिष्ठ" होना ही चाहिये, याने ज्ञान में प्रवीण, उत्पादन में बलवान् होना चाहिये; उसके बिना क्षुधा कैसे मिटेगी? और विविध प्रकार के सृष्टि-विज्ञान का भी ज्ञान होना चाहिये, क्योंकि उसके बिना बीमारियां कैसे मिटेंगी। चित्र-विचित्र बीमारियां हैं, तो चित्र-विचित्र ज्ञान भी चाहिये। तो सृष्टि का विविध ज्ञान तरह-तरह के रोगों को मिटायेगा, उत्पादन की क्षमता भूख को मिटायेगी और बुद्धि और चिन्तन-शक्ति होगी, तो अज्ञान मिटेगा। —"भूदानयज्ञ" से साभार

संसिद्धि

किसी भी साधना की संसिद्धि के दो ही अमोघ साधन हैं, श्रद्धा और निष्ठा।

श्रत् का अर्थ है सत्य और धा का अर्थ है धारणा। सत्य धारणा का नाम ही श्रद्धा है। सत्य में जो सत्य धारणा धारण की जाती है, उसे ही श्रद्धा कहते हैं। असत्य में जो धारणा धारण की जाती है, वह तो अश्रद्धा है, अश्रत्–असत्य धा–धारणा है।

निष्ठा नाम है नि [निश्चल] स्था [स्थिति, समाहिति] का। साधना में निश्चल स्थिति का अन्त तक अनवरत बना रहना ही निष्ठा है।

श्रद्धा और निष्ठा के द्वारा साधना में नैरन्तर्य बना रहता है। नैरन्तर्य ही साधना में संसिद्धि प्राप्त कराता है।

संसिद्धि चाहते हो तो अपने आपमें श्रद्धा और निष्ठा की स्थायी स्थापना करो। —विदेह

देख

देख दीपक को मेरा हृदय दुखानेवाले।
यों जला करते हैं औरों को जलानेवाले॥
मोमबत्ती ने कहा जलते हुए रो रो कर।
रोया करते हैं यों औरों को रुलानेवाले॥
पास है जिनके कि धीरज न कभी घबड़ाये।
कभी भूखे न रहे सब्र के खानेवाले॥
ढूंढते क्या हैं मेरी राख में "विदेह" वह आज।
दिल को बहलाते हैं या दिल के सतानेवाले—विदेह

विद्वानों का स्वभाव

जैसे बादल स्वयं छिन्न भिन्न होकर भी दूसरों का सदा उपकार करते हैं। उसी प्रकार विद्वान् दूसरों के अपकार से छिन्न भिन्न होकर भी उनका सदा उपकार ही करते हैं॥ —दयानन्द

विषरहित पितु

अविषं नः पितुं कृणु (य० २-२०)

हमारे जीविकान्न को विषरहित कर॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्थान—समाचार

श्री विदेह स्वामी पूरे डेढ़ मास कांगड़ा तथा हिमाचल प्रदेश में पावन वेदप्रचार करके श्री स्वामी जी ७ अगस्त को अजमेर पधारे। यहां आये तो वे केवल एक सप्ताह के लिये थे, किन्तु कुछ विशेष आयोजनों के अनायास बन जाने के कारण अब वे ३ अक्तूबर [विजयादशमी] तक तो निश्चित रूप से ही अजमेर विराजेंगे।

नवरात्र—वेदसत्र १६ सितम्बर से ३ अक्तूबर तक नवरात्र-पक्ष में वेदसत्र का संचालन होगा। नित्य रात्रि को ८-३० से ६-३० बजे तक विदेह स्वामी के वेदोपदेश होंगे। दिन में विदेह-विरचित और वेदसंस्थान द्वारा प्रकाशित वैदिक साहित्य को घर-घर में पहुंचाने का यत्न किया जायेगा। अजमेर में स्थानीय कार्यकर्ता यह कार्य करेंगे। अन्य नगरों के वेदप्रेमियों से सप्रेम निवेदन है कि वे यथाशक्य अधिक से अधिक वैदिक साहित्य संस्थान से मंगाकर अपने अपने नगर में खपायें।

सर्वसाधारण के लिये संस्थान-साहित्य पर कमीशन दरें निम्न प्रकार हैं—

१० रु० से अधिक से	२५ रु० तक	६¼%
२५ रु० ,,	७५ रु० तक	१२½%
७५ रु० ,,	१०० रु० तक	२०%
१०० रु० ,,	२५० रु० तक	२५%
२५० रु० से अधिक पर		३३⅓%

सविता की जिल्दों पर कमीशन नहीं दिया जाता है। साहित्य उधार नहीं भेजा जायेगा।

आवश्यकता संस्थान के लिये एक ऐसे अवकाश-प्राप्त [Retired] अथवा विरक्ताश्रमी व्यक्ति की आवश्यकता है, जो संस्थान में ही निवास करें, दोनों समय सत्संग करायें और वेदसंस्थान के कार्य की सुव्यवस्था रखें। संस्थान श्रद्धापूर्वक उनका मान सत्कार करेगा। संस्थान का एक सुन्दर पुस्तकालय है। साधना, अध्ययन और स्वाध्याय के लिये यथोचित सुभीता होगा।

पुस्तकालय संस्थान-पुस्तकालय के लिये जो महानुभाव उपादेय साहित्य भेंट करेंगे, संस्थान उनका आभारी होगा।

—व्यवस्थापक

नवीन प्रकाशन

आचार्यप्रवर श्री स्वामी विद्यानन्द जी विदेह द्वारा विरचित और वेदसंस्थान द्वारा प्रकाशित निम्न नवीन प्रकाशनों का उद्घाटन आगामी दुर्गाष्टमी, १ अक्तूबर १६५७ को होगा—

१) वेदव्याख्याग्रन्थ—द्वितीय पुष्प [मूल्य डेढ़ रु०]

यह यजुर्वेद के दूसरे अध्याय की व्याख्या है। इसका विषय है **"श्रेष्ठतम कर्म की स्थिर परम्परा के लिये गृहस्थाश्रम की सुव्यवस्था"**। इस ग्रन्थरत्न के अवलोकन से संसार को प्रथम बार गृहस्थाश्रम के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और उसकी महिमा का भान होगा। पुस्तक अविवाहित, नवविवाहित तथा पुराने विवाहित के लिये समान उपयोगी होगी।

२) गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान [मूल्य २५ न०पै०]

गायत्री-मन्त्र का महत्त्व तो सर्वविदित है, पर उसके अनुष्ठान की वास्तविक पद्धति का सर्वथा लोप होगया है। इस पुस्तक में प्रदर्शित पद्धति से गायत्री मन्त्र के अनुष्ठान से निश्चितरूपेण आध्यात्मिक और भौतिक ऐश्वर्यों की सिद्धि होगी।

महा-मृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान [मू० २५ न०पै०]

इस मन्त्र का भी बहुत महत्त्व है। विघ्न-बाधाओं के नाश और जरा, रोग, दरिद्रता, क्लेश तथा मृत्यु से त्राण के लिये इस मन्त्र का अनुष्ठान किया जाता है। इसके अनुष्ठान की वर्तमान में प्रचलित सभी पद्धतियां अशुद्ध और दोषपूर्ण हैं। इस पुस्तक में इस मन्त्र के अनुष्ठान की सही पद्धति है।

डाक-व्यय सहित मूल्य पेशगी भेजकर अपनी प्रतियां सुरक्षित करा लीजिये, अन्यथा सम्भव है दुबारा छपने तक प्रतीक्षा करनी पड़े।

डाक दर—तीनों पुस्तकें एक साथ

पोस्टल सर्टीफ़िकेट बुकपोस्ट	४५ न० पै०
रजिस्टर्ड बुकपोस्ट	६० न० पै०

दोनों प्रकार से मंगाने में मूल्य पेशगी आना आवश्यक है। वी० पी० पी० से एक रुपया डाक-व्यय लगेगा।

पता—व्यवस्थापक, वेदसंस्थान, अजमेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदव्याख्याग्रन्थ—प्रथम पुष्प

साध्वी विदुषी देवी क्षेमकुमारी हजेला, फतेहगढ़, लिखती हैं—

पुष्प को देख पढ़कर मैं आनन्दविभोर हो उठी। कितना रोचक, जिसका पाठ आरम्भ करके बिना समाप्त किये रहा नहीं जाता। मन मुग्ध होजाता है।

श्री जगदेव जी आर्य, एम. ए., बी. टी., दिल्ली, लिखते हैं—

पुष्प का स्वाध्याय मैंने किया और मेरे मित्रों ने किया। सबने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। मन्त्रों की यह व्याख्या सर्वथा मौलिक और अपूर्व है। शैली की सरसता सरलता आपके उपदेशों की याद दिलाती है। जिस प्रकार आपके प्रवचनों में प्रभु-भक्ति की झरनी झरती है और आध्यात्मिक जीवन की धारा प्रवाहित होती है, उसी प्रकार वेदमन्त्रों की इन व्याख्याओं में वही प्रवाह प्रवाहित होरहा है।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जो भी सहृदय मानव इस पुष्प का अध्ययन करेगा, वह ही कहेगा कि आपका यह पुष्प विश्व को एक महान् देन है।

देवी सत्या, मेरठ, लिखती हैं—

पुष्प मुझे बहुत पसन्द आया। इतनी सुन्दर व्याख्या पर आपको कोटिशः बधाई और धन्यवाद।

सनातनधर्म के सुविख्यात शिरोमणि विद्वान् पं० दीनानाथ जी शास्त्री, विद्यावागीश, प्रिंसिपल, संस्कृत हिन्दी महाविद्यालय, दिल्ली, लिखते हैं—

पुष्प यथासमय प्राप्त हुआ। छपाई, सफ़ाई बहुत सुन्दर है। वेदमन्त्रों के अर्थ भी आकर्षक किये गये हैं। विस्तार बहुत किया गया है। भय है कि आजकी जनता घबड़ा न जाय, क्योंकि वह समय की कमी पाती है।

वेदव्याख्याग्रन्थ—प्रथम पुष्प

श्री विदेह जी ने वेदों के प्रकाशन की जो बहुत दीर्घ योजना बनाई है, उससे उनका वेदानुराग स्फुट होरहा है। परमात्मा करे वे अपने जीवन में अपने परिश्रम को प्रकाशित देख जायें।

"ज़माना" साप्ताहिक, मौरीशस, लिखता है—

शुभ घड़ी में अजमेर [भारत] से आचार्य विद्यानन्द विदेह विरचित वेदव्याख्याग्रन्थ-प्रथम पुष्प इस देश में आया। आचार्य जी के लेखों को इस देश में बहुत लोग पढ़ते रहे हैं। इस ग्रन्थ से उनकी वेदव्याख्या पढ़ने की इच्छा को पूरा किया जा सकेगा। इस ग्रन्थ की मौजूदगी में यह बहाना नहीं बनाया जा सकता कि वेद हमारी पहुंच के भीतर नहीं।

पुस्तक का आकार सविता के आकार का है। इसका काग़ज अत्युत्तम है। यद्यपि अजिल्द है, पुस्तक अति आकर्षक है। उसका आवरण देखने लाइक है। उसकी सादगी उसकी शोभा बढ़ा रही है।

"हिन्दुस्थान", दिल्ली का मत है—

व्याख्या मधुर और सरस है तथा पाठक के मन पर छाप डालनेवाली है। भाषा सरल, सुबोध, प्रवाहपूर्ण तथा संस्कृतनिष्ठ है। मन्त्र के भाव को कविता में प्रकट करने की लेखक की शैली अच्छी है।

"भूदानयज्ञ" साप्ताहिक लिखता है—

आचार्य विदेह ने वेदों का जो भाष्य किया है, उसका यह प्रथम पुष्प है। वेद के आधार से मानव-जीवन की अनेक गुत्थियां कैसे सुलझायी जा सकती हैं, इसका विवेचन इसमें किया गया है और अन्तःसाधना और आधुनिकीकरण, इन दोनों ही प्रणालियों का उपयोग किया गया है।

माननीय श्री कैलाशनाथ जी काटजू, मुख्य मन्त्री, मध्य प्रदेश, की सम्मति में—

पुष्प बहुत सुन्दर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १० ; नवम्बर १९५७ ; कार्तिक, २०१४. : अङ्क १०

स वि ता

[वेद-संस्थान का मासिक पत्र]

सम्पादक :
विश्वदेव शर्मा

मन्द और स्थिर

मन्द स्थिर हो ही हो, यह आवश्यक नहीं, किन्तु स्थिर की गति निश्चय ही मन्द होती है।

जो साधना बहुत शीघ्र फल ले आई है, वह चिरस्थायी न होगी। चिर काल में संसिद्ध होनेवाली साधना ही चिरस्थायी होती है।

साधना जितनी उदात्त और व्यापक होती है, उसकी प्रगति में उतनी ही दीर्घसूत्रता होती है।

मन्दगति से चलनेवाला और स्थिरता के साथ जमा-जमाकर पग रखनेवाला न कभी ठोकर खाता है, न कभी टकराता है, न कभी लड़खड़ाता है, न गिरता है।

अनावश्यक विलम्ब एक क्षण का भी न करो, किन्तु शान्ति के साथ चलो, देखकर चलो, स्थिरता के साथ चलो, मधुरता के साथ चलो, मुस्कराते हुए चलो और यह स्मरण रखते हुए चलो कि संसार के किसी भी कार्य को नर तो क्या नारायण भी पूरा नहीं कर सका। —विदेह

वेद संस्थान
ओ३म्
अजमेर

मूल्य :
देश में— वार्षिक ३) रु०
एक प्रति २५ नये पैसे
विदेश में—वार्षिक ६ शि०
एक प्रति ६ पेंस

पत्र व्यवहार का पता :
व्यवस्थापक, वेद-संस्थान, अजमेर

वेद-संस्थान के लिये पं० विश्वदेव शर्मा द्वारा आदित्य मुद्रणालय, बाबू मोहल्ला, अजमेर में, मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सविता

लेख-क्रम

निर्मल ...	विदेह	१४७
इष्टका देवी	"	१४८
अखिल विजय	"	१५०
दशपाद विश्रुती	"	१५०
करें पाप से मुक्त मुझे सब	"	१५२
गीता-योग [३१]	"	१५२
नवीन प्रकाशनों का उद्‌घाटन	सम्पादक	१५३
उद्‌घाटन भाषण	क्षेमकुमारी	१५४
शुभ कामनायें	विविध	१५५
व्यवस्थापकीय	व्यवस्थापक	१५७

मन्त्रानुक्रम

अस्य पीत्वा (ऋ० ८-९२-६)	१५०
इडे रन्ते (य० ८-४३)	१५०
द्रुपदादिव (अ० ६-११५-३)	१५२
या शतेन प्रतनोषि (य० १३-२१)	१४८
ये अग्नयो न (ऋ० ६-६६-२)	१४७

संस्थान-प्रकाशन

विदेह-विरचित

वेदव्याख्याग्रन्थ—प्रथम पुष्प	२.००
वेदव्याख्याग्रन्थ—द्वितीय पुष्प	१.५०
गायत्री—[द्वितीय संस्करण]	१.५०
गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान	०.२५
महामृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान	०.२५
सार्वभौम आर्य-साम्राज्य	०.५०
वैदिक-बालशिक्षा—प्रथम भाग [तृतीय संस्करण]	०.३७
वैदिक-बालशिक्षा—द्वितीय भाग [द्वितीय संस्करण]	०.३७
वैदिक योग-पद्धति—[द्वितीय संस्करण]	०.३७
सन्ध्या-योग	०.२५
स्वस्तियाग	०.७५
यज्ञोपवीत-रहस्य—[चतुर्थ संस्करण]	०.०६
संस्कृत-शिक्षा—प्रथम भाग	०.१९
संस्कृत-शिक्षा—द्वितीय भाग	०.३७
सत्यनारायण की कथा—[द्वितीय संस्करण]	०.३७
सत्संग-गीतावली	०.३७
दिव्य-भावना	०.०६

सविता की वार्षिक जिल्दें

वर्ष ४ से प्रति जिल्द ३.२५

—डाकखर्च पृथक्

पता—व्यवस्थापक, वेदसंस्थान, अजमेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

Supplement to Savita, Dated 1st Nov. 1957

वेदसंस्थान का साहित्य दिल्ली में

वेदव्याख्याग्रन्थ के दोनों पुष्प तथा वेदसंस्थान के अन्य समस्त
प्रकाशन दिल्ली में निम्न पते पर मिलेंगे—

श्री वंशीलाल जी आर्य,
दयानन्द वाटिका, राम बाग़,
सब्ज़ी मण्डी,
दिल्ली—६

(ये) जो (मरुतः) वीर (अरेणवः) निर्मल और (हिरण्ययासः) स्वर्णिम होते हैं, वे (इधानाः अग्नयः न) प्रज्वलित अग्नियों के समान (शोशुचन्) जगमगाया करते हैं, (द्विः यत् त्रिः) दुगुने बल्कि तिगुने (ववृधन्त) बढ़ा करते हैं। (एषां) इनकी साधनायें (नृम्णैः च पौंस्येभिः) ऐश्वर्यों और संबलों से (साकं भूवन्) युक्त हुआ करती हैं ॥

जो होते निर्मल कुन्दन वीर
जगमगाते जगती में सदा,
प्रज्वलित अग्नियों की तरह ॥

सर्वतः बढ़ते वे दिन रात,
साधनायें होती हैं इनकी,
संबलों ऐश्वर्यों से युक्त ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सविता

लेख-क्रम

निर्मल [illegible]	विदेह	१४७
इष्टका देवी	,,	१४८
अखिल विजय	,,	१५०
द		
व		
गं		
न		
उ		

मन्त्रानुक्रम

अस्य पीत्वा (ऋ० ८-९२-६)	१५०
इडे रन्ते (य० ८-४३)	१५०
द्रुपदादिव (अ० ६-११५-३)	१५२
या शतेन प्रतनोषि (य० १३-२१)	१४८
ये अग्नयो न (ऋ० ६-६६-२)	१४७

संस्थान-प्रकाशन

विदेह-विरचित

वेदव्याख्याग्रन्थ—प्रथम पुष्प	२.००
वेदव्याख्याग्रन्थ—द्वितीय पुष्प	१.५०
सत्यनारायण की कथा—[द्वितीय संस्करण]	०.३७
सत्संग-गीतावली	०.३७
दिव्य-भावना	०.०६

सविता की वार्षिक जिल्दें

वर्ष ४ से प्रति जिल्द ३.२५

—डाकखर्च पृथक्

पता—व्यवस्थापक, वेदसंस्थान, अजमेर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ

[वेद-संस्थान अजमेर का मासिक पत्र]

वर्ष १०	अजमेर, नवम्बर १९५७, (ऊर्ज) कार्तिक, २०१४	अङ्क [illegible] पूर्णाङ्क ११८

निर्मल मरुत

ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत्त्रिर्मरुतो वावृधन्त।
अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥ (ऋ०६-६६-२)

ये अग्नयः न शोशुचन् इधानाः द्विः यत् त्रिः मरुतः ववृधन्त।
अरेणवः हिरण्ययासः एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिः च भूवन् ॥

(ये) जो (मरुतः) वीर (अरेणवः) निर्मल और (हिरण्ययासः) स्वर्णिम होते हैं, वे (इधानाः अग्नयः न) प्रज्वलित अग्नियों के समान (शोशुचन्) जगमगाया करते हैं, (द्विः यत् त्रिः) दुगुने बल्कि तिगुने (ववृधन्त) बढ़ा करते हैं। (एषां) इनकी साधनायें (नृम्णैः च पौंस्येभिः) ऐश्वर्यों और संबलों से (साकं भूवन्) युक्त हुआ करती हैं ॥

जो होते निर्मल कुन्दन वीर
जगमगाते जगती में सदा,
प्रज्वलित अग्नियों की तरह ॥

सर्वतः बढ़ते वे दिन रात,
साधनायें होती हैं इनकी,
संबलों ऐश्वर्यों से युक्त ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इष्टका देवी

या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि ।
तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥

(य० १३-२१)

या शतेन प्र-तनोसि सहस्रेण वि-रोहसि ।
तस्याः ते देवि इष्टके वि-धेम हविषा वयम् ॥

१) (देवि इष्टके) !
२) (या) जो तू (शतेन सहस्रेण) शत सहस्र से (प्र-तनोसि) सुविस्तारती है और (वि-रोहसि) विरोहण करती है।
३) (तस्याः ते) उस तेरी (वयं) हम (हविषा) हवि से (वि-धेम) वि-धारणा करें।

शत और सहस्र का प्रयोग वेद में असंख्यता के लिये होता है। इष्टका नाम ईंट का है। ईंट कई प्रकार की होती है। मिट्टी की ईंटें सांचे में ढालकर बनाई जाती हैं, भट्टों में पकाई जाती हैं, छोटी बड़ी अनेकों आकार की बनाई जाती हैं। पर्वतों के पत्थरों को काट काट कर अनेकों आकार प्रकार की ईंटें बनाई जाती हैं। वर्तमान में सिमेण्ट की ईंटें भी बनने लगी हैं।

जिसमें दिव्यता हो, देवत्व हो, उसे देव या देवी कहते हैं। देव पुल्लिंग है, देवी शब्द स्त्रीलिंग है। मन्त्र में इष्टका को देवी विशेषण दिया गया है। ईंट में दिव्य गुण हैं, महान् दिव्य गुण हैं और उसी कारण इष्टका देवी है।

क्या जड़ पदार्थों में भी दिव्यता है ? क्यों नहीं। दिव्य देव की सम्पूर्ण सृष्टि दिव्य है। कण-कण में दिव्य देव की दिव्यता निहित है। कण-कण में, परमाणु-परमाणु में, दिव्य देव रम रहे हैं। ईशावास्यमिदं सर्वम्। इस समस्त समष्टि में दिव्येश बस रहे हैं। जब इस सबमें दिव्येश रमरहे हैं, तो इस सबमें दिव्येश की दिव्यता भी संनिहित है। यहां सबमें दिव्यता है। दिव्यता से रहित यहां कुछ भी नहीं है। बुरे से बुरे कहे जानेवाले पदार्थ में भी एक न एक दिव्यता निहित है। निकृष्ट से निकृष्ट प्राणी में भी कोई न कोई दिव्यता अवश्य है। पतित से पतित, पापी से पापी मनुष्य में भी कहीं न कहीं कोई दिव्यता छिपी हुई है। किन्तु दिव्यता के दर्शन के लिये एक दृष्टि चाहिये, एक निगाह चाहिये, देखने की क्षमता चाहिये।

ईंट में एक महान् दिव्यता है। इष्टका एक दिव्य सन्देश देरही है, उसे सुनो और साथ ही वेद की सुदिव्य वर्णन-शैली को भी समझो। वेद की शैली और वेदार्थ की पद्धति को न समझने से वेदार्थ के क्षेत्र में बड़ा अनर्थ हुआ है। वेदमन्त्रों के भीतर निहित दिव्य संकेतों को, दिव्य सन्देशों को, दिव्य रहस्यों को, दिव्य विज्ञानों को, दिव्य शिक्षाओं को खोज निकालने के लिये जिस दिव्य दृष्टि की अपेक्षा है, वह दृष्टि सम्पादन करो। यथार्थ दृष्टि से ही यथार्थता का दर्शन होता है। यथार्थ दृष्टि के बिना यथार्थ दर्शन कैसा ? वेदार्थ के दर्शन के लिये वैदिक दृष्टि चाहिये।

(देवि इष्टके)! (या) जो तू (शतेन सहस्रेण प्र-तनोसि वि-रोहसि) शत सहस्र से सुविस्तारती और विरोहती है—इस सम्बोधन में इष्टका देवी की दिव्यता का प्रकाशन बड़ी सुन्दरता के साथ चित्रित है।

प्र-तनोसि और **वि-रोहसि**—इन दो क्रियापदों में देवी इष्टका की दिव्यता का गूढ़ संकेत है। तनु विस्तारे। प्र-तनोसि का अर्थ है तू प्र-प्रकृष्टतया, चतुरतया, यथेच्छ, तनोसि-विस्तारती है। वि-रोहसि का अर्थ है तू वि-विशेषतया, विविधतया, रोहसि प्रस्फुटित-अंकुरित होती है, उगती है, आरोहण करती है, ऊपर ऊंची चढ़ती है।

सैकड़ों हज़ारों अर्थात् असंख्य ईंटें इधर उधर ऊपर नीचे विस्तारती और ऊपर चढ़ती हैं। सैकड़ों, हज़ारों, लाखों, करोड़ों, अरबों ईंटों का अस्तित्व भी किस काम का, यदि वे यों ही भूमि पर बिखरी पड़ी हों। जब एक कुशल कारीगर उन ईंटों को एक एक करके दीवारों के रूप में चूना, गारे या सिमेण्ट से इधर उधर नीचे ऊपर सुव्यवस्था के साथ योजनाबद्ध रीति से जमाता चला जाता है तो ईंट-समूह भवन के रूप में सब ओर विस्तार और ऊंचाई को प्राप्त होता है। बड़े से बड़े विस्तृत विशाल भवन और ऊंची से ऊंची अट्टालिकायें इष्टका-चयन के ही चमत्कार हैं। ईंट ईंट करके एक एक ईंट जब सब ओर विस्तारती है और आरोहण करती है, तब ही भवन और भुवन विशाल क्षेत्र में विस्तारते और आकाश में आरोहण करते हैं। बड़े से बड़े नगर, पुर, दुर्ग, पुल, भवन—सब इष्टका की ही कृति हैं, ईंट की दिव्यता के द्योतक हैं।

ईंट के नीचे ईंट दबी हुई है, ईंट के ऊपर ईंट रखी हुई है। ईंट ईंट का बोझ सह रही है। ईंट ईंट को सहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही है। ईंटसमूह भव्य भवन के रूप में खड़ा हुआ है। ईंटों की दीवारों पर छतें सधी हुई हैं। ईंटों के कमरों में धन जन सब सुरक्षित होगये हैं। ईंटों की दीवारों पर प्लस्तर कर दिया गया है, ऊपर से पुताई रंगाई करदी गयी है। पुताई रंगाई के ऊपर सजावट करदी गयी है। ईंटें छिप गयी हैं। पुताई, रंगाई और सजावट की सब प्रशंसा कर रहे हैं। ईंटों का कोई नाम भी नहीं लेता है। हर वस्तु की चर्चा है, पर ईंटों की कोई चर्चा नहीं करता। ईंटें अन्तर्धान और समाहित हुई संस्थित हैं और भवन बनी खड़ी हैं। कितनी अनासक्त, कितनी निर्लेप, कितनी साध-परायण, कितनी धीर, कितनी निर्यश, कितनी अविचल, कितनी निष्काम, कितनी सहनशील, कितनी तपःपूत, कितनी शान्त और कैसी समाहित हैं ये ईंटें। ओह ! कितने दिव्य गुणों से युक्त है यह देवी इष्टका। कैसे दिव्य सन्देश दे रही है यह देवी इष्टका। सचमुच तू धन्य है, देवि इष्टके।

देवि इष्टके ! (वयं) हम (तस्याः ते) उस तेरी (हविषा) हवि से, हवि के साथ (वि-धेम) वि-धारणा करें।

जो सुहुत किया जाता है उसे हवि कहते हैं।

वि—धेम = वि विशिष्टतया, धेम धारण स्थापन करें। (वयं) हम (तस्याः ते) उस तेरी (वि-धेम) विशिष्टतया धारणा करें, विशेष रीति से स्थापना करें, (हविषा) सुहुतता की भावना से, जीवन की सार्थकता की भावना से। कहां प्रस्थापन करें ? अपने जीवन-यज्ञ में, अपने जीवन-भवन में। किस प्रकार ? इस प्रकार।

त्वष्टा [कुशल कारीगर] बनकर अपने जीवन भवन को सुविस्तृत, सुविशाल और समुदात्त बनाना चाहते हो तो धैर्यपूर्वक साधना की एक एक इष्टका चयन करते चले जाओ। विश्वास रखो, साधना की एक एक ईंट सर्वतः चयन करते करते एक दिन तुम्हारा जीवन-भवन इतना व्यापक और ऊंचा होजायेगा कि तुम्हारे जीवन भवन की विशालता और उदात्तता पर संसार को तो आश्चर्य होगा ही, स्वयं तुम्हें भी आश्चर्य होगा। छोटी बड़ी सभी प्रकार की ईंटों का भवन-निर्माण में समान उपयोग है। जीवन-भवन के सुनिर्माण में भी छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी साधना की ईंट का समान महत्व है। साधना में जो छोटी छोटी बातों की उपेक्षा करते हैं, उनके जीवन-भवन का सुष्ठु यथावत् सुनिर्माण असम्भव है। भवन की बुनियाद में ईंटों के छोटे छोटे रोड़े तक काम में आते हैं। छोटी छोटी बातों के सदभ्यास से ही बड़ी बड़ी साधनायें सम्भव होती हैं।

भवन के निर्माण में ईंटों का सुष्ठु चयन तब ही होता है, जब कारीगर कुशल हो और साथ ही ईंटों को परस्पर चिमटाने के लिये चूना, गारा या सिमेण्ट भी हो। जीवन-भवन का सुष्ठु निर्माण तब ही होगा, जब आत्म-त्वष्टा उद्बुद्ध हो और साधक के अन्तःकरण में श्रद्धारूपी सिमेण्ट हो। सर्वप्रथम आवश्यकता यह है कि भवन का सही नक्शा भी त्वष्टा की आंखों के सामने हो। जीवन-भवन की वास्तविक नियोजना आत्म-त्वष्टा के अभिमुख होनी चाहिये। जीवन-भवन की नियोजना आत्म-चिन्तन से प्राप्त होती है। आत्म-बोध से कर्मकुशलता आती है। आत्म-चिन्तन से जीवन-भवन की नियोजना प्राप्त होती है। साधनारूपी ईंटों को श्रद्धारूपी सिमेण्ट से नियोजनापूर्वक चयन करने से सुविशाल और समुदात्त जीवन-भवन निर्मित होता है।

कुल [परिवार] को सुन्दर स्वच्छ और उच्च बनाने के लिये भी इष्टका-चयन एक आदर्श उपस्थित कररहा है। गृहपति और गृहणी उत्तम त्वष्टा बनें, परिवार के छोटे बड़े सब सदस्य इष्टका बनकर प्रेम की सिमेण्ट से सुसम्बद्ध होकर परस्पर के परामर्श से नियोजनापूर्वक कार्य करें, तो ही परिवार-भवन, शोभनीय और ऊर्ध्वस्थ बनता है।

सामाजिक या राष्ट्रीय भवन के सुनिर्माण के लिये भी इष्टका सुष्ठु प्रेरणा कररही है। जिस समाज या राष्ट्र का सुनेता त्वष्टा बनकर और सुपरिष्कृत संस्कृति तथा आदर्श परम्पराओं पर आधारित नियोजना से युक्त होकर बालक बालिका युवक युवती वृद्ध वृद्धा रूपी समस्त ईंटों को ऐक्य की सिमेण्ट से सम्यक् चयन करके स्वार्थरहित आत्मश्रद्धा के साथ साधना करता है, उस समाज या राष्ट्र का भवन, अतिशय विशाल और उदात्त होकर विश्वशिरोमणि बनता है।

किसी भी भवन की विशालता और ऊर्ध्वता में प्रमुख स्थान ईंट का ही है। जो जितनी ईंटों का सुघड़ता के साथ चयन कर सकता है, वह उतने ही विशाल और उदात्त भवन का निर्माण कर सकता है।

क्या कोई है जो मानव समाज की समस्त ईंटों का सुचयन करके इष्टका देवी के दिव्य सन्देश को साकार कर दिखाये ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवि इष्टके,
जो तू शतशः और सहस्रशः,
सुविस्तारती और चढ़ती है।
हम उस तेरी प्रस्थापना,
करें सार्थकता के साथ॥

अखिल-विजय

अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा।
विश्वाभि भुवना भुवत्॥ (ऋ० ८-९२-६)

अस्य पीत्वा मदानां देवः देवस्य ओजसा।
विश्वा अभि भुवना भुवत्॥

(अस्य देवस्य) इस परमात्म देव के (मदानां) मदों का (पीत्वा) पान करके (ओजसा) ओज से युक्त होकर, मेरे (देवः) आत्मदेव ने (विश्वा भुवना) समस्त भुवनों को (अभि भुवत्) अभिभूत-विजय कर लिया।

करके पान,
मदों का,
इस परमात्मदेव के।
ओजयुक्त हो,
विजय कर लिया,
आत्मदेव ने,
सब भुवनों को॥

दशपाद विश्रुती

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति। एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्॥ (य० ८-४३)

१) (वि-श्रुति)! (इडे! रन्ते! हव्ये! काम्ये! चन्द्रे! ज्योते! अदिते! सरस्वति! महि! अघ्न्ये!)
२) (एता) ये (ते) तेरे (नामानि) नाम हैं।
३) तू (देवेभ्यः) देवों के लिये (मा) मुझे (सुकृतं) सुकृत (ब्रूतात्) बता।

विश्रुती को मन्त्र में दश सम्बोधनों से पुकारा गया है। ये दश सम्बोधन विश्रुती के दश नाम हैं। विश्रुती के दश नामों का उल्लेख सम्बोधनों में करके मानों विश्रुती के दश पादों का मानसिक आह्वान किया गया है। मानसिक आह्वान से आह्वानकर्ता के मन में आह्वानित की प्रस्थापना होती है, तदनुसार संस्कार समंकित होते हैं।

विश्रुती का सामान्य अर्थ कीर्ति है। किन्तु कीर्ति और विश्रुती में बहुत भेद है। कीर्ति तो मनुष्य की किसी एक दो उत्तम गुणों से भी होजाती है। विश्रुती नाम उस कीर्ति का है, जो सर्वांगीण हो, सब बातों में हो। जिसकी प्रत्येक गति, कृति, चेष्टा, क्रिया, विधि—कीर्तिकर हो, उसे विश्रुतीमान् कहते हैं। जिसकी किसी एक दो बातों के कारण कीर्ति हो, उसे कीर्तिमान् कहते हैं।

विश्रुती का अभिलाषी विश्रुती को सम्बोधन करता हुआ कहता है—विश्रुति! (देवेभ्यः) दिव्यताओं की प्राप्ति के लिये (मा) मुझे (सुकृतं ब्रूतात्) सुकृत-सुसाधना बता। मुझे वह सु-उपाय बता, जिनकी साधना से मैं दिव्यताओं से युक्त होजाऊं, मैं सर्वतः दिव्य होजाऊं, मैं अखिल विश्रुतियों से विश्रुत होजाऊं। विश्रुति! (ते एता नामानि) तेरे ये नाम हैं।

विश्रुती का पहला नाम है इडा। अत एव विश्रुती को 'इडे' कहकर सम्बोधन किया गया है।

विश्रुती का दूसरा नाम है रन्ता। अत एव उसे 'रन्ते' कहकर सम्बोधन किया गया है।

विश्रुती का तीसरा नाम है हव्या। अत एव उसे 'हव्ये' कहकर सम्बोधन किया गया है।

विश्रुती का चौथा नाम है काम्या। अत एव उसे 'काम्ये' कहकर सम्बोधन किया गया है।

विश्रुती का पांचवां नाम है चन्द्रा। अत एव उसे 'चन्द्रे' कहकर पुकारा गया है।

विश्रुती का छटा नाम है ज्योति। अत एव उसे 'ज्योते' शब्द से सम्बोधन किया गया है।

विश्रुती का सातवां नाम है अदिति। इसीलिये उसे 'अदिते' कहकर पुकारा गया है।

विश्रुती का आठवां नाम है सरस्वती। इसीसे उसे 'सरस्वति' सम्बोधन किया गया है।

विश्रुती का नवां नाम है मही। इसीसे उसे 'महि' सम्बोधन से पुकारा गया है।

विश्रुती का दशवां नाम है अघ्न्या। इसीसे उसे 'अघ्न्ये' सम्बोधन से सम्बोधित किया गया है।

विश्रुती के इन दश नामों में वह सुकृतसमूह संनिहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, जिसकी सफल साधना द्वारा दिव्यताओं से युक्त होकर साधक विश्रुतीमान् हो सकता है।

विश्रुती का प्रथम पाद है इडा। इडा के दो बहुत प्रसिद्ध अर्थ हैं वाणी और स्तुति। इडा नाम उस वाणी का है, जो स्तुति के योग्य हो, जो स्तुत्य हो। किसी भी प्रकार की वाणी का नाम इडा नहीं है। स्तुत्य, प्रशस्त, प्रशंसनीय वाणी को ही इडा कहते हैं। विश्रुती के उपासक को ऐसा अभ्यास करना चाहिये कि वह जो कुछ बोले, अपने वचनों को ठीक तराशकर और नाप तोल कर बोले, समाधान-कारिता के साथ बोले, अनुभूत और संश्रुत सत्यों तथा तथ्यों का ही वर्णन व प्रकाशन करे।

विश्रुती का दूसरा पाद है रन्ता। रन्ता का अर्थ है रमणीय, रमणीयता, प्रियता। विश्रुती की प्रस्थापना के लिये साधक के जीवन और व्यवहार में रमणीयता तथा प्रियता होनी चाहिये। शुद्ध दर्शनीय आकृति, सरलता, पवित्र गात और स्वच्छ सुन्दर सादा वसन किसी को रमणीय बनाने के लिये सुपर्याप्त है।

विश्रुती का तीसरा पाद है हव्या। हवि से हव्या। हव्या नाम है आहुति-शीलता का। सर्वहित के लिये अपने शुभ श्रेष्ठ की आहुति देना, सबके लिये इष्ट-चिन्तन करना, सबके प्रति हितभावना का होना, अपनी सेवा और श्रम से सबकी सुविधा का ध्यान रखना हव्यता अथवा आहुति-शीलता है।

विश्रुती का चौथा पाद है काम्या। काम्या का अर्थ है कमनीया, काम्यता, कमनीयता। विश्रुती के साधक का शील, स्वभाव और व्यवहार ऐसा आकर्षक और मोहक होना चाहिये कि सब नर नारी तथा प्राणी उसकी कामना करें, उसपर मुग्ध होजायें।

विश्रुती का पांचवां पाद है चन्द्रा। चन्द्रा का अर्थ है आह्लादिका, आह्लादित करनेवाली, आह्लादवृत्ति। जिसकी वृत्ति आह्लादवृत्ति होती है, उसकी विश्रुती में चार चांद लग जाते हैं।

विश्रुती का छटा पाद है ज्योति। ज्योति से तात्पर्य अन्तःज्योति से है। साधक के अन्तः में आत्मज्योति होनी चाहिये, ब्रह्मज्योति जगमगानी चाहिये। बुद्धि और मन का अवलम्ब तो बड़ा स्थूल और दुर्बल अवलम्ब है। बुद्धि और मन की दौड़ बहुत ही थोड़ी दूर तक है। जो साधक अन्तःस्थ आत्मज्योति तथा ब्रह्मज्योति का प्रज्वलन कर लेता है, उसकी विश्रुती को न काल मिटा सकता है, न युग हटा सकता है।

विश्रुती का सातवां पाद है अदिति। अदिति के तीन प्रसिद्ध अर्थ हैं—अखण्ड, अदम्य, अदीन। जो अदीन है, वही अखण्ड है। जो अखण्ड है, वही अदीन है। अदीनता और अखण्डता अभिन्न हैं। वह एक दूसरे से कभी पृथक् नहीं रहतीं। अदीन ही अदम्य होता है। अदम्य ही अखण्डता के साथ व्रतों की साधना करता है। अखण्ड साधना से संसिद्धि होती है। संसिद्धि से अमिट और व्यापक विश्रुती की उपलब्धि होती है।

विश्रुती का आठवां पाद है सरस्वती। सरस्वती मूर्धा के सानु [सर्वोच्च शिखर] और हृदय के सोमसागर से क्षरण करती हुई वाणी द्वारा प्रवाहित होती है। सरस्वती का अर्थ विद्या किया जाता है। सरस्वती और विद्या का लेश मात्र भी कोई सम्बन्ध नहीं है। सत्व के नितान्त संशुद्ध और आत्माग्नि के नितान्त प्रबुद्ध होने पर जब ज्ञान सानु तथा सोमसागर से क्षरित होकर वाग्धारा से प्रवाहित हुआ सत्य का प्रकाश करता है, उस स्वतः प्रवाहित ज्ञान की धारा का नाम सरस्वती है। सरस्वती अन्तःसाधना का विषय है, अध्ययन अध्यापन का नहीं। विद्वान् और अविद्वान् दोनों को ही साधना द्वारा सरस्वती की सिद्धि हो सकती है। विश्रुती के लिये सरस्वती की अनिवार्य आवश्यकता है, विद्या की नहीं।

विश्रुती का नवां पाद है मही। इयं पृथिवी मही। यह भूमि मही है। जो समस्त भूमि को अपना घर और भूवासिनी अखिल प्रजा को अपना परिवार समझते हैं, वे महानात्मा ही देश के प्यारे और विश्व के दुलारे बनकर विश्रुती का वरद वरदान प्राप्त करते हैं।

विश्रुती का दशवां पाद है अघ्न्या। अघ्न्या का अर्थ है अहन्या। जिसका हनन अथवा घात नहीं करना चाहिये, उसे अघ्न्या कहते हैं। यह जो अन्तःध्वनि है, यह जो आत्मा की आवाज है, वह अघ्न्या है। उसका हनन नहीं करना चाहिये। आत्मा की आवाज को दबाना, आत्मा की ध्वनि की अवहेलना करना, ही आत्महनन है, आत्मघात है। आत्मघाती को विश्रुती प्यार नहीं करती है, साधक को यह सदा स्मरण रखना चाहिये। जो अन्तर्ध्वनि के अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य करता है, विश्रुती उसी का वरण और आलिंगन करती है।

विश्रुति ! तेरे नाम इडा रन्ता हव्या और चन्द्रा,
अघ्न्या ज्योति काम्या अदिति मही सरस्वती।
बता मुझे वह सुकृत सुन्दर वह सुसाधना,
होजाऊं मैं दिव्य गुणों से युक्त समंकित ॥

करें पाप से मुक्त मुझे सब

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः ॥
(अ० ६-११५-३)

(विश्वे) सब (शुम्भन्तु) शुद्ध करें (मा) मुझे (एनसः) पाप से, (द्रुपदात् मुमुचानः इव) जूते से मुक्त हुए पैर के समान, (स्विन्नः स्नात्वा मलात् इव) गोता लगाकर स्नान करके मल से मुक्त हुए के समान, (पवित्रेण पूतं आज्यं इव) चलनी से छाने हुए घृत के समान।

सब संशोधें मुझे पाप से,
जूते से सम्मुक्त पाद इव,
स्विन्न स्नान करके ज्यों मल से,
चलनी से छनकर घृत जैसे।

गीता—योग

—३१—

[तीसरा अध्याय]

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६

(एवं प्रवर्तितं चक्रं) इस प्रकार संचालित चक्र को (इह) यहां (यः) जो (न अनुवर्तयति) अनुसरण नहीं करता है, (पार्थ) अर्जुन, (सः अघायुः इन्द्रियारामः) वह पापी विलासी (मोघं जीवति) व्यर्थ जीता है।

यह सारा ब्रह्माण्ड ब्रह्म द्वारा संचालित ब्रह्मचक्र है। ब्रह्म से ही इस ब्रह्मचक्र का उद्भवन हुआ है। इसका एक एक कण नियति के नियम में बंधा हुआ अपना अपना नियत कार्य कररहा है। अर्जुन ! जो इस ब्रह्मचक्र के नियम का अनुसरण न करके अपने कर्तव्य से जी चुराता है, वह पापी और विलासी है। ऐसे मनुष्य का जीना वृथा है।

ब्रह्म के इस ब्रह्माण्डरूपी ब्रह्मचक्र में सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, आदि, सब प्राकृत देव नियति से नियत होकर ही अपना अपना कार्य कररहे हैं। न उन्हें कृत अकृत की कोई चिन्ता है। न उन्हें अपना निजका कोई स्वार्थ अथवा प्रयोजन है। वे सब प्रकर्ता के प्राकृत नियमों से नियन्त्रित हुए संचालित होरहे हैं। स्वप्रयोजन और स्वार्थ से रहित होने के कारण वे प्राकृत देव प्रत्येक अवस्था और परिणाम से मुक्त हुए रतिमय, तृप्त और सन्तुष्ट रहते हैं। इस चक्र में इन देवों का अपना कोई कार्य नहीं है, यद्यपि ये रात दिन सतत सन्तत निरन्तर कर्म कररहे हैं।

इसी प्रकार, अर्जुन, जो मनुष्य इस प्रवर्तित चक्र का अनुसरण करता हुआ केवल इस मानव-समाज-रूपी सुचक्र के सुसंचालनार्थ स्व-प्रयोजन और स्वार्थ से मुक्त होकर कर्म करता है, उसके लिये इस संसार में अपना कोई कार्य नहीं है। अत एव वह सदा सर्वदा प्रत्येक परिस्थिति में कर्मरत रहता हुआ भी प्रसन्न, तृप्त और सन्तुष्ट रहता है।

जो अनुसरण नहीं करता है,
इस सु-संचालित सुचक्र का।
वह जन पापी और विलासी,
वह तो, पार्थ, वृथा जीता है ॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७

इस प्रवर्तित चक्र का अनुसरण करता हुआ, मानव-समाज के सुसंचालनार्थ ही कर्म करता हुआ (यः तु मानवः) जो तो मानव (आत्म-रतिः एव) आत्म-रति ही (च) तथा (आत्म-तृप्तः) आत्म-तृप्त (स्यात्) रहता हो, (च) और जो (आत्मनि एव सन्तुष्टः) आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता हो, इस संसार में (तस्य) उसका अपना कोई (कार्यं) कार्य (न विद्यते) नहीं है।

रति नाम प्रीति का है। जो तो आत्मा से ही प्रीति करनेवाला है, अपने आत्मा में तृप्त रहता है और अपने आत्मा में सन्तुष्ट है, उसे अपने लिये तो इस संसार में कुछ करणीय है ही नहीं। वह सब कुछ करता हुआ भी कुछ नहीं कररहा है। वह देह में देह के व्यापार करता हुआ भी जीवनमुक्त विदेह है। वह गृहस्थाश्रम का निर्वहन करता हुआ भी संन्यासी है। वह शासन का संचालन करता हुआ भी राजर्षि है। वह युद्ध करता हुआ भी परम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ति से युक्त है। वह असंख्य नियोजनों का आयोजन करता हुआ भी कर्मों के समारम्भ और उनके परिणामों से सर्वथा असंग है।

जो तो मानव आत्मरतिमय,
और आत्मा में ही तृप्त।
और सन्तुष्ट आत्मा में ही,
उसके लिये न कोई कार्य॥

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥ १८

(इह) यहां, इस संसार में (तस्य) उसका (न एव कृतेन) न तो कृत से (न अकृतेन) न अकृत से (कः चन अर्थः) कोई भी प्रयोजन है (च) और (न) न (अस्य) इसका (सर्वभूतेषु) सब प्राणियों में (कः चित्) कोई भी (अर्थ-व्यपाश्रयः) प्रयोजन-सम्बन्ध है।

संसारचक्र के साथ उसका कर्मचक्र भी अनवरत घूम रहा है। संसार का कोई भी कार्य कभी समाप्त नहीं होता है। जगत् के किसी भी कार्य को कभी नर तो क्या नारायण भी न पूरा कर पाया है, न पूरा कर सकेगा। इस चक्र का अनुसरण करते हुए मनुष्य केवल यथामति और यथागति अपने नियत कर्तव्य का निर्वहन ही कर सकता है, इससे अधिक कुछ नहीं। एक मात्र कर्तव्यबुद्धि से सब कर्म करता हुआ वह इस बात से कोई लगाव नहीं रखता कि कितना कार्य होगया है और कितना करना शेष है। न सब प्राणियों में से ही किसी के विषय में उसे कोई व्यासंग होता है। कर्म से निर्लेप, और व्यक्ति से निस्पृह रहता हुआ ही वह सर्वत्र सब कुछ करता है और निर्द्वन्द्व रहता है।

उसका यहां नहीं प्रयोजन कृत से न अकृत से।
और न सब भूतों में उसका है कोई प्रयोजन॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥ १९

(तस्मात्) अतः तू (असक्तः) अनासक्त होकर (सततं) निरन्तर (कार्यं कर्म समाचर) कर्तव्य कर्म करता रह। (असक्तः हि कर्म आचरन्) असक्त होकर ही कर्म करता हुआ (पुरुषः) पुरुष (परं आप्नोति) परब्रह्म को प्राप्त करता है।

जो पुरुष संसार में किसी भी कर्म, किसी भी वस्तु अथवा किसी भी प्राणी से आसक्त है, वह ब्रह्म को प्राप्त नहीं हो सकता है। अवर से बंधा हुआ पर को प्राप्त नहीं कर सकता है। अवर से मुक्त होकर ही पर से युक्त होता है। ब्रह्म पर है। संसार अवर है। अवर से सर्वथा मुक्त अनासक्त रहकर जो कर्तव्य कर्मों का अनुष्ठान करता है, वह मुक्तात्मा ही सदामुक्त परब्रह्म के 'परम धाम की ओर अनुधावन कर सकता है। जो यहां बंधा हुआ है, वह वहां नहीं पहुंच सकता।

अतः तू कर्तव्य कर्म कर,
सतत निरन्तर अनासक्त हो।
पुरुष प्राप्त करता है पर को,
अनासक्त जो करता कर्म॥

नवीन प्रकाशनों का उद्घाटन

विदेहकृत "वेदव्याख्याग्रन्थ–द्वितीय पुष्प", "गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान" तथा "महामृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान"– इन तीन नवीन प्रकाशनों का उद्घाटन दुर्गाष्टमी २०१४ वि०, १ अक्तूबर १९५७ को हुआ। द्वितीय पुष्प में यजुर्वेद के दूसरे अध्याय की व्याख्या है और उसका विषय है "श्रेष्ठतम कर्म की स्थिर परम्परा के लिये गृहस्थाश्रम की सुव्यवस्था"। अन्य दो प्रकाशनों का विषय उनके नाम से ही विदित होरहा है।

उद्घाटन-समारोह के मनोनीत सभापति श्री स्वामी अभेदानन्द जी महाराज कुछ अनिवार्य कारणों से आ न सके। समारोह का सभापतित्व करने की वह हमें सुनिश्चित स्वीकृति दे चुके थे। किन्तु पंजाब में चल रहे हिन्दी-सत्याग्रह के सम्बन्ध में विशेष कार्य के कारण वह अजमेर न पधार सके। इससे अजमेर की श्रद्धालु जनता को बड़ी निराशा हुई। उनकी अनुपस्थिति में वेदसंस्थान के अध्यक्ष विदेह ने सभा का संचालन किया।

उद्घाटन का कार्यक्रम स्वस्तियाग के साथ प्रारम्भ हुआ। तदुपरान्त सभा का कार्यक्रम जारी हुआ। कुमार विश्वविभूति ने एक वेदमन्त्र से ईशप्रार्थना की और एक गीत गाया। संस्थान-मन्त्री सेठ चांदमल जी चण्डक ने वेद-स्तवन किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगीराज श्रोमानन्द तीर्थ के सहसा रुग्ण होजाने के कारण स्वामी केवलानन्द सरस्वती को अर्घ दिये जाने के उपरान्त देवी क्षेमकुमारी हजेला मंच पर सुशोभित हुई। देवियों ने फूलमालाओं से उनका सत्कार किया। श्रीमती हजेला के उद्घाटन भाषण का सार आगे दिया गया है।

देवी क्षेमकुमारी ने नवीन प्रकाशनों की एक एक प्रति स्वामी केवलानन्द सरस्वती तथा स्वामी प्रकाशानन्द सरस्वती को भेंट करके प्रकाशनों का उद्घाटन किया।

संस्थान-मन्त्री ने प्राप्त शुभ कामनायें तथा सन्देश पढ़कर सुनाये।

यजुर्वेद, अध्याय ७, मन्त्र १४ की व्याख्या करते हुए विदेह ने सभ्यता व संस्कृति का विश्लेषण किया। इस मन्त्र की जो मौलिक और विशद व्याख्या विदेह ने इस अवसर पर की, उसका उपस्थित जनता पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। समारोह की समाप्ति पर विद्वज्जन परस्पर बातचीत करते हुए कह रहे थे कि सभ्यता और संस्कृति पर आज जो प्रकाश मिला है, वह अपूर्व है। बड़े बड़े विद्वान् और नेता सभ्यता और संस्कृति के भेद को नहीं पहचानते हैं। प्रायः लोग सभ्यता और संस्कृति की रट तो लगाते रहते हैं, किन्तु वे स्वयं इस विषय में स्पष्ट नहीं हैं कि सभ्यता क्या वस्तु है और संस्कृति क्या चीज़ है। जनता के आग्रह पर विदेह ने सविता के आगामी अंक में इस मन्त्र की वह व्याख्या प्रकाशित कराना स्वीकार कर लिया है।

अपने वेदोपदेश का उपसंहार करते हुए विदेह ने कहा, "संस्कृति का आदि स्रोत वेद हैं। वेद की सर्वगम्य व्याख्यायें जब संसार की समस्त भाषाओं में प्रसारित होंगी, तब ही इस वसुन्धरा पर संस्कृति अपने वास्तविक स्वरूप में प्रस्थापित होगी और तब ही विश्व का मानव सुसंस्कृत मानव बन पायेगा"।

अपनी वेदसाधना पर कुछ प्रकाश डालते हुए विदेह ने कहा, "मुझे सबके हृदय तो मिल रहे हैं, किन्तु जीवन नहीं मिल रहे हैं। इस साध की सिद्धि के लिये मुझे कुछ सक्षम जीवन चाहियें। कोई साथ दे या न दे, मैं स्वयं तो अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक इस साधना में लगा ही रहूंगा। इतिहासकार को यह भले ही लिखना पड़ जाये कि लोगों ने वेदप्रसार में विदेह का साथ नहीं दिया, पर वह यह कदापि न लिख पायेगा कि विदेह ने निराश होकर अपनी वेदसाधना का परित्याग कर दिया"।

अजमेर के अतिशय वयोवृद्ध विद्वान् पं० ख्यालीराम जी ने अपने जीर्ण और कांपते हुए शरीर को मंच के सहारे खड़ा करके कहा, "...विदेह की वेदसाधना अपूर्व है। अपने भौतिक शरीर को त्यागते हुए महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कहा था—ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो। ईश्वर की वह इच्छा, जिसके पालन करने का प्रयत्न महर्षि कर रहे थे, देशदेशान्तरों में वेद का प्रचार व प्रसार था। "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो" से महर्षि दयानन्द का तात्पर्य यह था कि वेद की विश्वव्याप्ति की तेरी इच्छा को मैं पूर्ण नहीं कर सका, तेरी वह इच्छा भविष्य में किसी के द्वारा पूरी होजाये। ईश्वर की उसी इच्छा की पूर्ति का सुप्रयास...विदेह कर रहे हैं। इस सुप्रयास में यथाशक्ति हाथ बटाना हम सबका परम धर्म होना चाहिये। मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि...विदेह स्वस्थ रहते हुए चिरायु हों और उनकी वेदसाधना फलवती होकर ईश्वर की इच्छा को पूरी करे। ऋषि दयानन्द का अपूर्ण कार्य पूरा होजाये"।

अन्त में संस्थान के उपाध्यक्ष पं० ब्रह्मदत्त जी भार्गव ने परमात्मा को तथा सब सहयोगियों को धन्यवाद दिया और शान्तिपाठ के साथ सभा विसर्जित हुई।

—सम्पादक

उद्घाटन भाषण

[देवी क्षेमकुमारी हजेला]

स्वामी जी, बन्धुओ और बहिनो,

इस पुनीत अवसर पर आप सबके दर्शन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता होरही है।

स्वामी जी के जीवन की एकान्त साध पल्लवित और सुरभित होना प्रारम्भ होगयी है।

वेदव्याख्याग्रन्थ के पुष्प जहां स्वामी जी के जीवन की साधना के प्रतीक हैं, वहां उनमें मेरे जीवन की कामनायें और अभिलाषायें भी अन्तर्निहित हैं। यद्यपि कार्यरूप में मैंने उनमें कुछ नहीं किया है।

मुझे वह दिन याद आते हैं जब आर्यसमाज के वार्षिक अधिवेशनों में बार बार वेदों के नाम सुनने तथा पढ़ने की प्रेरणा मिला करती थी। वह दिन भी याद है जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

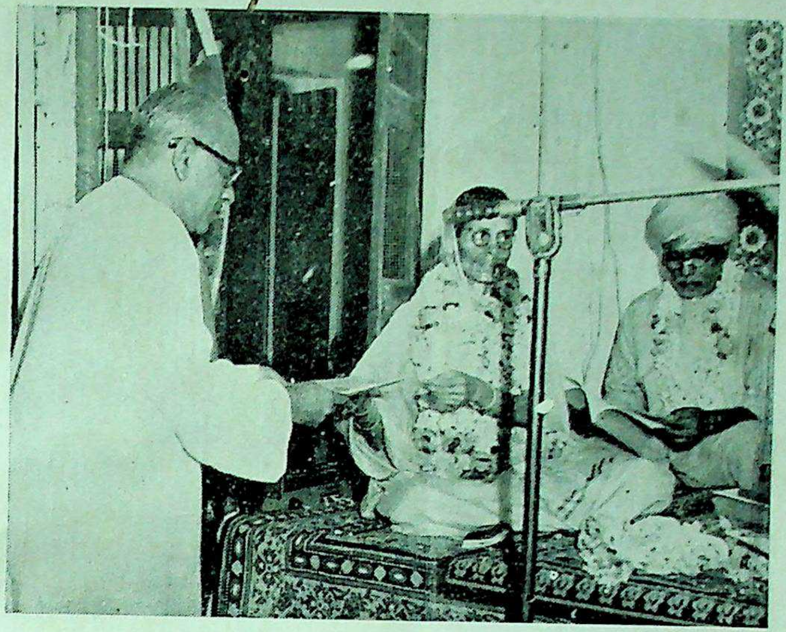

देवी क्षेमकुमारी हजेला से श्री बृजभूषण हजेला द्वितीय पुष्प लेरहे हैं।

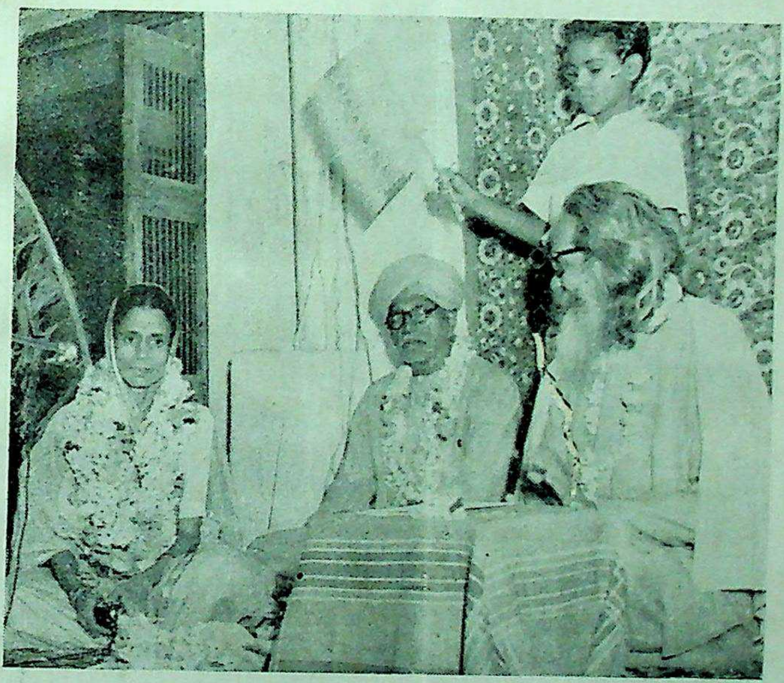

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

देवी क्षेमकुमारी हजेला, स्वामी प्रकाशानन्द व स्वामी विदेह

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

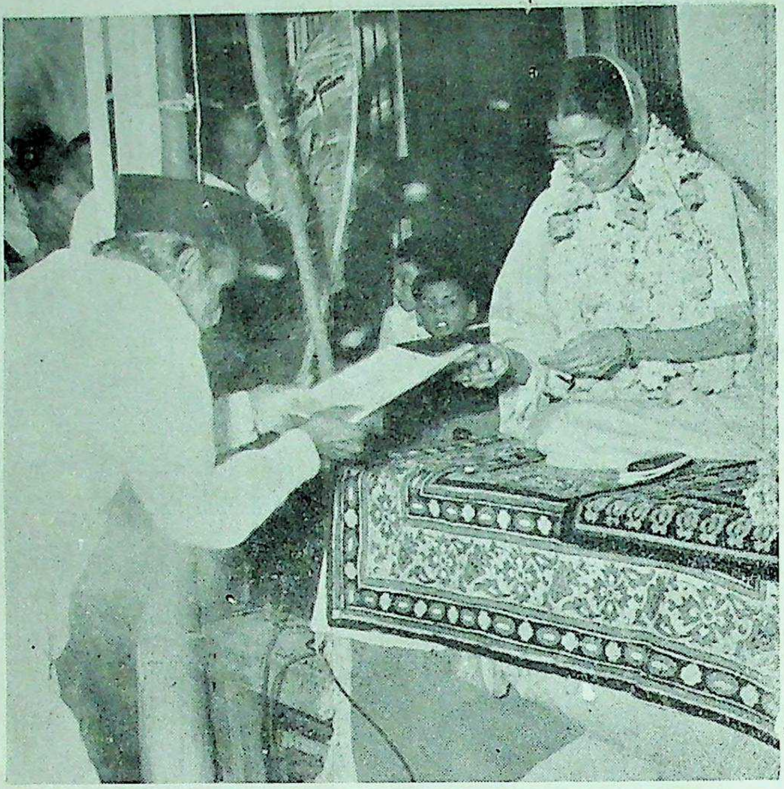

देवी क्षेमकुमारी हज़ेला से श्री कन्हैयालाल जी द्वितीय पुष्प ले रहे हैं।

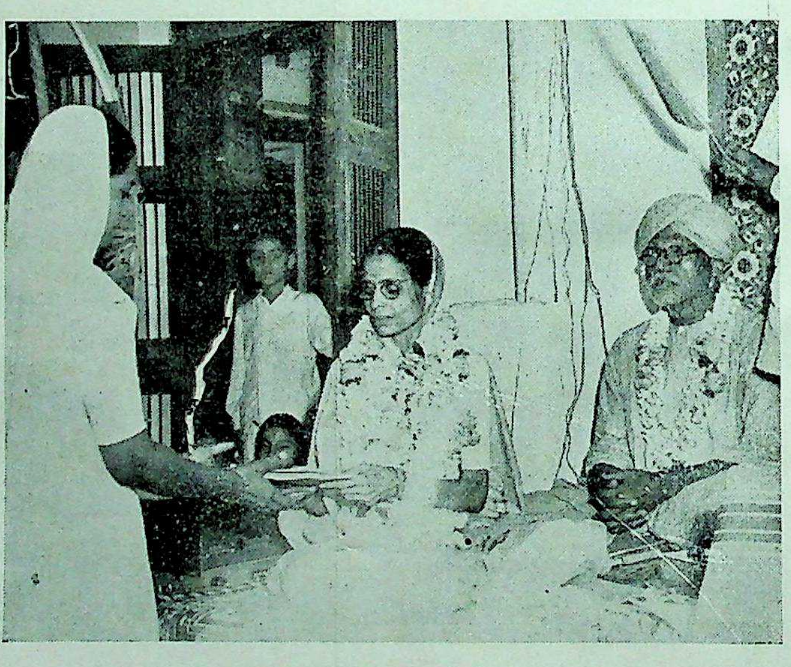

देवी क्षेमकुमारी हज़ेला से देवी प्रेमवती द्वितीय पुष्प ले रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनायास ही वेद का प्रथम मण्डल मुझे मिला था और बड़े मनोयोग से मैंने उसे पढ़ा था। काफ़ी प्रयत्न करने पर भी मैं उसे बहुत कम समझ सकी थी। तब मैं मन ही मन प्रभु से प्रार्थना कर उठी थी कि भगवन्, क्या कभी ऐसा शुभ दिन आयेगा जब वेदवाणी जनसुलभ होगी।

कदाचित् भगवान् उस समय मेरी अबोध प्रार्थना पर मुस्करा रहे होंगे। वह तो पूर्व ही ऐसे व्यक्तित्व का सृजन कर चुके थे, जिसके कारण उस कार्य का आरम्भ होचुका था।

मेरी आन्तरिक कामना है कि ये पुष्प अधिकाधिक संख्या में छपें और शीघ्र शीघ्र आगामी पुष्प प्रकाशित हों। परमात्मा शीघ्र वह शुभ दिन लायें कि चारों वेदों के व्याख्याग्रन्थ छपकर तैयार होजायें।

सरलतम भाषा में ये पुष्प जनसाधारण की कितनी बड़ी आवश्यकता को पूरा करेंगे, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। यद्यपि ऐसी आशा नहीं करनी चाहिये कि सरल होने पर सब व्यक्ति इसे पढ़ेंगे। यदि कुछ विशिष्ट जन ही इसे पढ़ेंगे तो जनता कालान्तर में उनका अनुकरण करने लगेगी।

मैं ऐसा अनुभव करती हूं कि वेदमन्त्रों की सूक्तियां चहुंमुखी जीवननिर्माण की सामग्री से भरी पड़ी हैं। यह अमूल्य निधि हमारी पहुंच से बाहर होने के कारण किस प्रकार हमसे दूराति दूर होकर हमारे अभाग्य और अशान्ति का कारण बनी हुई हैं।

वेदव्याख्याग्रन्थ के द्वितीय पुष्प का उद्घाटन करने में मुझे बड़ी प्रसन्नता होरही है। साथ ही अपने सौभाग्य पर संकोच भी है। वेदव्याख्याग्रन्थ का उद्घाटन तो किसी महान् विद्वान् द्वारा किया जाना चाहिये था। खोजने पर भी मुझे अपने में ऐसा कोई गुण नहीं मिलता, जिसके कारण मुझे यह सम्मान प्रदान किया गया है।

मुझे ऐसे समय पर एक भक्त की यह लाइन याद आरही है—

।। जापर दीनानाथ ढुरै ।।
सोइ कुलीन सोई बहु सुन्दर,
जस हरि कृपा करै ।।

मुझे ऐसा लग रहा है कि सर्वप्रेरक प्रभु स्वामी जी को मेरे द्वारा उद्घाटन की प्रेरणा करके मेरे प्रति अपनी कृपा का संकेत कर रहे हैं। मैं उस करुणामय तथा स्वामी जी के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा के पुष्प अर्पित करती हूं और इस वेदमन्त्र से अपनी भावना प्रकट करके अपना कथन समाप्त करती हूं—

तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ।।

प्रभो ! कितनी भी तुम्हारी स्तुति करूं, कितना भी तुम्हारा गुण गान करूं, फिर भी तुम्हारी स्तुति नहीं कर पाती। तुम्हारी दया का, तुम्हारे स्नेह का, तुम्हारी करुणा का, कहीं पार नहीं है।

शुभ कामनायें

१ अक्तूबर १९५७ को नवीन ग्रन्थों के उद्घाटन के अवसर पर बाहर से प्राप्त कुछ शुभ कामनायें—

लोकोपकार के कार्यों की सफलता का विशेष साधन लोकपति का आशीर्वाद होता है, जो आपको प्राप्त है और प्राप्त रहेगा।

—देशराज आर्य

मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि परमात्मदेव स्वामी विदेह जी को ऐसी सुविधायें दें कि वह अपना सम्पूर्ण वेदभाष्य आगामी पांच वर्षों में प्रकाशित कर सकें। इसी से संसार का महान् उपकार सम्भव है।

—तेजकृष्ण कौल

मैं समझता हूं कि वैदिक धर्म प्रचार सम्बन्धी विदेह-वादी प्रगतियों से अवश्य ही संसार का भारी हित होगा और महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रवर्तित वेदार्थशैली का विशुद्ध रूप स्पष्टतया सबको विदित होजायेगा।

—जगत्कुमार शास्त्री

नवरत्न कार्यक्रम की सफलता की कामना करता हुआ संस्थान की प्रगति के हेतु परमात्मा से प्रार्थना करता हूं।

—मा० स० गोलवलकर

आप उस नगरी में बैठकर न केवल उस नगर की जनता को वेदमाता का पयः पान करा रहे हैं, प्रत्युत अपनी अमूल्य कृतियों से भारत की भक्त जनता को अमृत पान कराकर तृप्त कर रहे हैं। वेदमन्त्रों के गहन अर्थों को सरल एवं सरस शब्दों में ग्रथित कर आप जनता का बड़ा कल्याण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कररहे हैं। सरस्वती की यह सेवा आपको बल और ओज प्रदान करे, प्रभु से यह हार्दिक कामना है।

—देवेन्द्र शर्मा

आपके प्रयास सफल हों और वेदसंस्थान का कार्य उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त हो।

—विश्वबन्धु शास्त्री

ईश्वर आपको अधिकाधिक शक्ति प्रदान करें और दीर्घायु करें, ताकि आप चिरकाल तक वैदिक धर्म एवं मातृभूमि की सेवा करते रहें।

—धर्मवीर महाजन

॥ हमारी वेदमाता की वेदसंस्थान की जय हो ॥
हृदय का दीप समता स्नेह से परिपूर्ण हो सबका।
करे जो पन्थ ज्योतिर्मय विषम विद्वेष का क्षय हो ॥
हमारी वेदमाता की वेदसंस्थान की जय हो ॥
सहस्रों वर्ष स्वामी जी जियें मंगल करें सबका।
उन्हीं की छत्र-छाया में रहें गतिशील निर्भय हो ॥
हमारी वेदमाता की वेदसंस्थान की जय हो ॥
मधुर ध्वनि वेदवाणी की ध्वनित हो विश्व में घर-घर।
कि जिसमें एकता की मीड़ समता शान्ति की लय हो ॥
हमारी वेदमाता की वेदसंस्थान की जय हो ॥

—शान्ति अग्रवाल

मेरी हार्दिक इच्छा आपके इस शुभ कार्य में सम्मिलित होने की थी। किन्तु इस समय की शारीरिक अवस्था इसमें बाधक होरही है। यद्यपि स्थूल शरीर से उपस्थित न हो सकूंगा, पर मेरी सद्भावना इस पवित्र कार्य के साथ है। यह शुभ कार्य समारोह और सफलतापूर्वक समाप्त हो। प्रभु आपको देश, धर्म और समाज की सेवा के लिये अधिकाधिक उत्साह और बल प्रदान करें।

—ओमानन्द तीर्थ

इस शुभावसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभ कामनायें भेजता हूं। वेदों की सरस एवं सरल भाषा में व्याख्या कर उसे जनता में पहुंचाने का यह प्रयास बहुत ही प्रशंसनीय है।

श्री रामनिवास मिर्धा,
स्पीकर,
राजस्थान विधान सभा

मनुष्य के आध्यात्मिक विचारों और भावों के विकास के लिये तथा जीवन की शान्ति के लिये वेद का अध्ययन एवं भारतीय संस्कृति का ज्ञान अत्यावश्यक है। इस क्षेत्र में वेदसंस्थान का कार्य सराहनीय है।

नाथूराम मिर्धा
राजस्थान यातायात
कृषि मन्त्री

मेरी शुभ कामना है कि सब सफलता को प्राप्त हो। विदेह जी में अलौकिक शक्ति है। प्रभु कृपा करेंगे।

—शिवानन्द

आचार्य विदेहकृत वेदव्याख्याग्रन्थ के द्वितीय पुष्प का प्रकाशन वेदाध्ययनशील जिज्ञासुओं और भारतीय संस्कृति के विद्यार्थियों के लिये हर्ष का विषय है।

वेदों के क्रम में क्या कोई वैशिष्ट्य हो सकता है या होना चाहिये, इस ओर आज तक कोई गम्भीर विचार नहीं हुआ है। महर्षि दयानन्द ने सर्वप्रथम अपने वेदभाष्य में मन्त्रों तथा सूक्तों की परस्पर संगति बिठाने का प्रयास किया था और उसी विचार को अंकुर से वृक्ष का रूप देने का भागीरथ प्रयत्न आचार्य विदेह अपनी शैली से कररहे हैं। यह बात वैदिक वाङ्मय के इतिवृत्त में अपना विशिष्ट महत्त्व रखती है। यदि वेद अर्ध सभ्य मानवों की कृति नहीं हैं, यदि उनका निर्माण स्वार्थी पुरोहितों के कर्मकाण्ड के सम्पन्नार्थ नहीं हुआ है, यदि वेद दिव्य काव्य हैं, सत्य विद्याओं की पुस्तक हैं, तो उनमें सुव्यवस्थित विचारधारा का साद्यन्त पाया जाना एक अनिवार्य बात है। इस विचारधारा की खोज वेद के हृदय और मस्तिष्क के बन्द कपाटों को खोलेगी। यही वास्तविक वेदानुसन्धेय विषय है और भारतीय चिन्तकों की सम्पूर्ण शक्ति इस ओर लगनी चाहिये। आचार्य जी ने शंखनाद गुंजा दिया है।

इसके अतिरिक्त, प्रति-मन्त्र-व्याख्याओं का हमारे दैनिक जीवन में व्यवहार्य स्थान हो सकता है। वेदव्याख्याग्रन्थ में मन्त्रों की व्याख्यायें वर्तमान युग के मानव को दृष्टि में रखकर की गयी है। यदि वेद हमारे लिये उपयोगी ग्रन्थ हैं, यदि वे हमारे धर्म के आदिम स्रोत हैं, यदि वे आज भी हमारी समस्याओं को सुलझा कर विविध क्षेत्रों में विभक्त हमारा जीवन-पथ प्रशस्त कर सकते हैं, तो ही हम आजके मानव वेदों को पुनः अपना सकते हैं। अन्यथा वेद अजायब-घर की प्राचीन वस्तु [Dead Relics] ही बने रहेंगे और दो-चार पुरातत्त्वप्रिय मस्तिष्क कोनों में बैठे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें तराशते परखते रहेंगे, अनुसन्धान के नाम पर। अतः वेद की आधुनिकी व्याख्या युग की पुकार है।

श्रद्धेय आचार्य जी की भागीरथ साधना सफल हो और हम वेदाभिमानी भारतीय उनकी साधना के साफल्यार्थ जितना कर सकें, करें। अन्यथा अभिमन्यु तो अकेला युद्ध में जूझता ही रहेगा, उसके बलिदान में ही विजय की विजयादशमी का पर्व मनेगा। आचार्य जी ने वेद के "अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः" के कथन को जीवन में चरितार्थ किया हुआ है।

—अभयदेव शर्मा

मैं वेदसंस्थान के कार्यों से बहुत ही प्रभावित हूं। आशा है वेदों को जनता के मध्य प्रसारित करने में आपकी संस्था पूर्ण रीत्या योगदान देगी।

आचार्य रामानन्द शास्त्री,
उपप्रधान,
विहार आर्य प्रतिनिधि सभा

व्यवस्थापकीय

व्याख्यानमाला १९ सितम्बर से ३ अक्तूबर तक वेदसंस्थान की ओर से विदेह द्वारा जो वेदोपदेशमाला प्रचारित की गयी, उससे अजमेर की जनता ने सदा की भांति श्रद्धा, निष्ठा तथा प्रेम के साथ पूरा लाभ उठाया। इस दैनिक व्याख्यानमाला में जनता की अपार उपस्थिति तथा विदेह के प्रति जनता की श्रद्धा से प्रभावित होकर ग्रन्थोद्घाटन-समारोह में १ अक्तूबर की रात्रि को स्वामी केवलानन्द सरस्वती यह कहे बिना न रह सके—

"मैंने जो एक विशेष बात यहां देखी, वह अन्यत्र कहीं नहीं देखी। मैं बड़े बड़े संन्यासियों, महात्माओं और मठाधीशों के आश्रमों में गया हूं। अपने अपने निवासस्थानों के नगरों में उनका इतना मान और प्रभाव नहीं है, जितना सम्मान उनका अन्य नगरों में जाने पर होता है। यहां मैं देखता हूं कि अजमेर नगर में, जहां...विदेह का स्थायी-निवास है,...विदेह का इतना मान और प्रतिष्ठा है। अपने स्थायी-निवास के नगर में...विदेह के दैनिक प्रवचनों में इतनी भारी उपस्थिति का होना आश्चर्य की बात है। कतिपय विद्वान् कुछ वर्षों से...विदेह का घोर विरोध कररहे हैं। मैं उनसे कहता रहता हूं कि...विदेह का विरोध करके तुम सूर्य के ऊपर थूक रहे हो"। जैसा कि सर्वविदित है, विदेह के प्रवचनों में न गाना बजाना होता है, न कोई साज सजावट। सब आयोजनों में एक मात्र वेदोपदेश होता है।

सहयोग की स्थापना विश्व में वेद की व्याप्ति और मानव-संस्कृति की स्थापना एक गुरुतर नहीं गुरुतम कार्य है। यह सही है कि विदेह को भगवान् ने अमित धैर्य और अतुल अध्यवसाय प्रदान किया है, फिर भी इतने बड़े कार्य को कोई भी अकेला पूरा कर सकेगा, यह विश्वास कोटि से परे की बात है। आखिर धन और जन की सहायता के बिना वह अकेले कहां तक क्या कुछ और कितना कर पायेंगे। अच्छा यह होगा कि वेदसंस्थान की वेदसम्बन्धी योजना से प्रेम करनेवाले सब नर-नारियों का सहयोग संगठित किया जाये। हमारा विचार है कि स्थान स्थान पर "वैदिक साधना मण्डल" की स्थापना की जाये। कमर कसकर कार्य करने से ही महान् कार्य होते हैं।

क्षमा-याचना कतिपय अनिवार्य कारणों से इस अंक में स्थायी स्तम्भों के लेख प्रकाशित नहीं हो सके हैं। उसके लिये हम पाठकों से क्षमा-याचना करते हैं।

अथाह कार्य वेदव्याख्याग्रन्थों के प्रकाशन का अथाह कार्य सामने है। यदि हम विदेह को स्थायी रूप से अजमेर में किसी एक स्थान पर सुचारुता के साथ न बिठा सके तो इस कार्य का पूरा होना अशक्य होजायेगा। इस कार्य के महत्त्व को समझनेवाले भाई बहन इस समस्या पर गम्भीरता के साथ विचार करें और अपने सुझाव भेजें।

आज्ञापालन यह आदेश दिया गया है कि वेद-संस्थान के पत्र-व्यवहार में तथा सविता में अध्यक्ष का नामोल्लेख केवल 'विदेह" शब्द से किया जाये। आगे पीछे 'स्वामी' 'आचार्य', 'श्री' आदि कुछ न जोड़ा जाये। हम जानते हैं कि हमारी तरह सविता के पाठकों को यह अखरेगा। क्या करें, हम आज्ञा का पालन करने के लिये मजबूर हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

VEDAVYAKHYA GRANTH (Prathama Pushpa)

By Acharya Vidyanand Videh *Price Rs. 2.*

Vedasansthan, Ajmer, Pp. 129.

For the study of man in general and of Aryan humanity in particular there is nothing in the world which is equal in importance with the Veda. It is on this account that the Vedas are said to be the most valuable cultural heritage of Bharat. For this very reason, the Vedas have become a perennial source of inspiration to the thought-leaders and research workers both of the east as well as of the west.

Several theories have been put forth and are being put forth as regards the methodology of Vedic exegesis. Even in Yaska's time there were the nairukta or naturalistic and aitihasika or historical schools of interpretation. Among European scholars in the early part of the so-called modern period of Vedic studies there were two schools, namely one represented by ROTH, BENFEY, GRASMANN and KAEGI maintaining that the RV was pre-eminently an Indo-European document while the other by PISCHEL, GELDNER and SIEG put forth that it was predominently Indian. Recently several new theories have been put forth. AUROBINDO GHOSE, COOMARSWAMY, AGRAWALA, etc., are the protagonists of the mystic, symbolic and metaphysical interpretation of the Veda. RSI DAYANANDA vehemently stressed the need of the metaphysical interpretation of the Veda. This was indeed a reaction against the uncritical and unjust attacks on the Veda by ill-informed foreigners.

Now on this background of history of Vedic exegesis if we peruse the first flower of the Vedavyakhya Granth (in Hindi) by ACHARYA VIDYANANDA VIDEHA, it appears that he is trying to utilise antassadhana and modernisation in interpreting the Veda. Through his deep meditation over 38 years SWAMI VIDEHA is trying to show that these ancient scriptures yield up their treasured beauty and truth if they are properly interpreted. "Read the things of the flesh with the eyes of the spirit, not the things of the spirit with the eyes of the flesh"—appears to be the motto of the Swamiji. As such the modern critical methods of Vedic interpretation are not so much to his taste. The pendulum of Vedic exegesis which was thus swinging from one end to the other was to be firmly steadied. Acharya Vedeha has girded up his lions to do this.

The prathama pushpa of this Vedavyakhya Granth contains specimens of mantras from the four Vedas. Mantras are printed in bold types. Below it are given the padapatha, literary meaning, full explanation, metrical translation and then similar proverbs and maxims. In this way the whole Veda is to be published in 20 volums of 1000 pages each. In his preface Acharya has laid down the main tenets of his interpretation.

(१) विद्यार्थों के अभिवर्धन के लिये संकोच के स्थान में "विश्वजनहिताय" का लक्ष्य सदा अभिमुख रहे।

(२) वेद जीवन में विश्वास करना सिखाता है, मृत्यु में नहीं।

(३) वेदों के साचार अध्ययन में ही मानव को सुखशान्ति एवं उज्ज्वल भविष्य निहित है।

This stupendous task undertaken by the Swamiji, if carried through with meticulous care as is shown in this book, will be highly useful not only to the Vedists but also to the Indologists and the students of Humanities. The interpretation of the Mantras given by Videhaji, the fund of knowledge he has brought to bear upon the subject speak volumes for his deep insight into and utmost reverence for the Veda. In a work of this nature it is difficult to agree with each and every statement of the author. There are bound to be differences. But in spite of this the author deserves to be congratulated for having determined to utiliese his energies in giving us a balanced and scientific Vedic exegesis.

—*V. G. Rahurkar*

[Extracted from the Bulletin of the Deccan College Research Institute, Poona.]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदव्याख्याग्रन्थ—प्रथम पुष्प

ले० आचार्य विद्यानन्द विदेह मूल्य २)

संसार में कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जो मानव, और विशेषतः आर्य मानवसमाज के अध्ययन के लिये वेद के बराबर महत्वपूर्ण हो। इसी कारण वेद भारत की सर्वाधिक मूल्यवान् सांस्कृतिक सम्पत्ति कहे जाते हैं। और इसीलिये वेद पूर्व तथा पश्चिम के विचारकों और अनुसन्धान-कर्ताओं के लिये सतत प्रेरणा के स्रोत बन गये हैं।

वेदार्थ की प्रक्रिया के सम्बन्ध में कई मान्यतायें प्रस्तुत की जा चुकी हैं और की जारही हैं। यास्क के काल में भी वेदार्थ के नैरुक्त और ऐतिहासिक सम्प्रदाय विद्यमान थे। वैदिक अध्ययन के आधुनिक युग के प्रारम्भिक काल में योरोपीय विद्वानों के दो सम्प्रदाय थे। एक का प्रतिनिधित्व राथ, बैन्फे, ग्रास्मैन, केजी कररहे थे और वे लोग यह मानते थे कि ऋग्वेद मुख्यतया एक भारत–योरोपीय ग्रन्थ था; और दूसरे सम्प्रदाय–पिशल, गैल्डनर और सीज–की मान्यता थी कि वह प्रधानतः भारतीय ग्रन्थ था। हाल ही में कई नवीन मान्यतायें प्रस्तुत हुई हैं। अरविन्द घोष, कुमारस्वामी, अग्रवाल, आदि, वेद के रहस्यमय, प्रतीकात्मक और तत्त्वज्ञानमय अर्थ के पक्षपाती हैं। ऋषि दयानन्द ने वेद के तत्त्वज्ञानमय अर्थ की आवश्यकता पर साग्रह बल दिया। निश्चय ही, अनभिज्ञ विदेशियों के वेद पर अतात्त्विक और अन्यायपूर्ण आक्रमण की यह प्रतिक्रिया थी।

वेदार्थ के इतिवृत्त की इस पृष्ठभूमि में यदि हम आचार्य विद्यानन्द विदेह के, हिन्दी में, वेदव्याख्याग्रन्थ के प्रथम पुष्प को देखें तो यह प्रतीत होता है कि वे वेदार्थ करने में अन्तस्साधना और आधुनिकीकरण का उपयोग करने का यत्न कररहे हैं। ३८ वर्ष से भी अधिक के गहन चिन्तन के द्वारा, स्वामी विदेह यह बताने का प्रयास कररहे हैं कि यदि ठीक व्याख्यान किया जाये तो ये प्राचीन ग्रन्थ अपने सन्निहित सौन्दर्य और सत्य को अभिव्यक्त करदेते हैं। "प्रकृति के पदार्थों को आत्मा के चक्षुओं से देखो, आत्मिक पदार्थों को प्राकृतिक नेत्रों से नहीं", यह स्वामी जी का मोटो प्रतीत होता है। और इसलिये वेदार्थ की आधुनिक आलोचनात्मक पद्धतियां उनको उतनी रुचिकर नहीं हैं। वेदार्थ की जो अवस्था, इस प्रकार, एक ओर से डावांडोल होरही थी, उसे दृढ़तापूर्वक स्थिर करना था। आचार्य विदेह एतदर्थ कटिबद्ध होगये हैं।

इस व्याख्याग्रन्थ के प्रथम पुष्प में चारों वेदों के मन्त्रों के नमूने हैं। मन्त्र मोटे टाइप में मुद्रित हैं। उसके नीचे पदपाठ, शाब्दिक अर्थ, पूर्ण व्याख्या, पद्यात्मक अनुवाद, और फिर सूक्तियां और समानार्थक वाक्य दिये गये हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण वेद एक सहस्र पृष्ठों की २० जिल्दों में प्रकाशित होने को हैं। अपने प्राक्कथन में आचार्य ने अपनी व्याख्या की प्रमुख स्थापनायें स्थापित की हैं—

१) विद्याओं के अभिवर्धन के लिये संकोच के स्थान में 'विश्वजनहिताय' का लक्ष्य सदा अभिमुख रहे।

२) वेद जीवन में विश्वास करना सिखाता है, मृत्यु में नहीं।

३) वेदों के साचार अध्ययन में ही मानव की सुखशान्ति एवं उज्ज्वल भविष्य निहित है।

स्वामी जी के द्वारा गृहीत यह विशाल श्रमसाध्य कार्य, यदि इसी बारीकी और ध्यान से सम्पन्न हुआ, जोकि इस ग्रन्थ में दिखाई गई है तो, न केवल वैदिकों, वरन् प्राच्य-विद्याविदों और मानवी ज्ञानों के अध्येताओं के लिये भी अत्यन्त उपयोगी होगा। विदेह जी द्वारा की गई मन्त्र-व्याख्या, और, ज्ञान का भण्डार, जो उन्होंने विषय के स्पष्टीकरण में व्यक्त किया है, उनकी गहन अन्तर्दृष्टि और वेद के प्रति अत्यन्त श्रद्धा के सम्बन्ध में प्रभूत प्रकथन करता है। इस प्रकार के कार्य में लेखक के प्रत्येक कथन से सहमत होना कठिन है। मतभेद होना अनिवार्य है। परन्तु इसके बावजूद, हमें एक सन्तुलित और वैज्ञानिक वेदार्थ प्रदान करने में अपनी शक्ति लगाने की सन्नद्धता के लिये लेखक बधाई के पात्र हैं।

—वी. जी. राहुरकर

[दक्षिण महाविद्यालय शोध संस्थान, पूना, की पत्रिका से उद्धृत]

डा० मंगलदेव शास्त्री, पूर्व प्रिंसिपल, गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज, बनारस, लिखते हैं—

मैं आपके उन विचारों और आदर्शों से बहुत अंशों तक सहमत हूं और उनका हृदय से अभिनन्दन करता हूं, जिनकी पृष्ठभूमि में आप वेदमन्त्रों की व्याख्या करने का यत्न करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदव्याख्याग्रन्थ—द्वितीय पुष्प

आर्यसमाज के प्रसिद्ध महोपदेशक पं० देशराज जी आर्य लिखते हैं—

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि कोई भी सहृदय मनुष्य पुष्प का अध्ययन करके आपके उद्योग की सराहना किये बिना नहीं रह सकता। वेदमन्त्रों की सरल तथा सारगर्भित व्याख्या करके मनुष्य मात्र को आपने वेद के स्वाध्याय की ओर प्रेरित किया है। आपका यह पुष्प विश्व को एक महान् देन है।

श्री शीलस्वरूप शर्मा, बी. ए., लिखते हैं—

आपका प्रथम पुष्प एक बार पढ़ा। देव दयानन्द की कल्पनायें मूर्त्त हो उठी हैं और उनके जीवन की साध पर मधु-फल लगने लगे हैं—ऐसा लगा। आपके जीवन की साध आपके जीवन में ही इतनी यश-सुगन्धि चाहे न दे, पर आनेवाली पीढ़ियां इससे जीवन, गौरव, स्वाभिमान और आर्यत्व की उत्कृष्टतम सुरभित रश्मियों का आलोक प्राप्त कर अपने को गौरवान्वित और आजके अनेक व्यक्तियों की कृतघ्नता पर दुःख अनुभव करेंगी।

मंगलमय भगवान् आपको चिरायु करें, जिससे उनका ही यह काम सुचारुरूपेण सम्पन्न होजाये।

डा० विनायक महादेव आपटे, डाइरैक्टर, वेदसंशोधन मण्डल, बम्बई, लिखते हैं—

वेदों के भाषान्तर के विषय में मैक्सम्युलर लिखता है, "ऐसे कठिन कार्य के लिये हमें न केवल आगामी शताब्दी तक प्रतीक्षा करनी होगी, वरन् मुझे ती शंका है कि हम कभी भी उसे सिद्ध कर सकेंगे"।

ऐसा अतीव कठिन कार्य सम्पन्न करने की प्रतिज्ञा केवल आचार्य विदेह जी जैसे एक असाधारण पण्डित ही कर सकते हैं। यह प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये जिन गुणों की आवश्यकता है, उन सब गुणों से विभूषित आचार्यवर विदेह जी हैं।

मैं आशा करता हूं कि वेदसंस्थान को इस महान् कार्य में जनता की पूर्ण सहयोग प्राप्त हो।

द्वितीय पुष्प का द्रुत-पाठ मैंने कर लिया है। मनन चल रहा है। उसमें जो नवीनता, शुभ्रता एवं उत्प्रेरणा है, उसे उत्तमतया आत्मसात् कर लेना चाहता हूं। यह पुष्प मुझे तब मिला है, जबकि गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थाश्रम का सन्धिकाल मेरे सामने आकर उपस्थित हो चुका है। तथापि जीवन का सिंहावलोकन तो हो ही जायेगा।

इस द्वितीय पुष्प का प्रसार नवयुवक एवं नवयुवती वर्गों में विशेष रूप से होना चाहिये। यह नये गृहस्थियों का एक सच्चा पथप्रदर्शक है। कन्याशालाओं के पाठ्य क्रम में इसे स्थान मिलना चाहिये। विवाह-प्रसंगों में बारातियों आदि के लिये यह एक उत्तम भेंट होगी। भेंट और पुरस्कारों में उपयोग के लिये इसका मोटे अक्षरों में और दो रंगों में छोटे पृथक् आकार में मुद्रण होना चाहिये। विभिन्न भाषाओं में इसके अनुवाद पहिले कराये जायें। गृहस्थाश्रम और कन्याओं के लिये सात्त्विक साहित्य की सर्वत्र ही भारी कमी है। उसकी पूर्ति इस पुष्प से होगी। बधाई।

जगत्कुमार शास्त्री

मान्यवर व्यवस्थापक जी,

वेदव्याख्याग्रन्थ [द्वितीय पुष्प] मिला, धन्यवाद। इसे देखूंगा, इससे लाभ उठाने का यत्न करूंगा।

स्वामी विदेह जी ने आत्म-निवेदन में जिस दृढ़ आस्था और निष्ठा का परिचय दिया है, वह आज दिन बहुत ही दुर्लभ है। वह मुर्दा दिलों में जान डालनेवाली है। यदि सौ पीछे नहीं हज़ार पीछे एक व्यक्ति भी ऐसे गुण का परिचय देने लगे तो यह भारत-भूमि न केवल अपना उत्थान करले, वरन् संसार भर में मानवता का स्तर ऊंचा करने में सफल हो। ऐसे तेजस्वी मानव के प्रति नत-मस्तक हूं।

—भगवानदास केला

"द्वितीय पुष्प" ने यह सिद्ध कर दिया है कि आपकी वेदसाधना अपूर्व और आश्चर्यजनक है। वेद के आलोक को विश्व में व्यापने का जो दिव्य कार्य आप कररहे हैं, वैसा सृष्टि के आदि से आज तक किसी ने नहीं किया। ...विदेह दिव्य पुरुष हैं और उनकी वेदसाध भी दिव्य है। इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।

— भगवतानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १० : अङ्क ११

दिसम्बर १९५७ : मार्गशीर्ष, २०१४

स वि ता

[वेद-संस्थान का मासिक पत्र]

सम्पादक :
विश्वदेव शर्मा

मूल्य :
देश में— वार्षिक ३) रु०
एक प्रति २५ नये पैसे
विदेश में—वार्षिक ६ शि०
एक प्रति ६ पेंस

पत्र व्यवहार का पता :
व्यवस्थापक, वेद-संस्थान, अजमेर

वेद-संस्थान के लिये पं० विश्वदेव शर्मा द्वारा आदित्य मुद्रणालय, बाबू मोहल्ला, अजमेर में, मुद्रित तथा प्रकाशित

अक्षय स्रोत

एक उत्स [कूप] का जल के अक्षय स्रोत से सम्बन्ध है। उस उत्स से रात दिन जल खींचा जाता है, किन्तु कभी उसका जल टूटता नहीं है। उस उत्स का जल अटूट है, क्योंकि उसका सम्बन्ध जल के एक अक्षय स्रोत से है।

तुम अपने आत्म-उत्स का सम्बन्ध अखिल दिव्यताओं के अनन्त असीम अक्षय अजस्र स्रोत से जोड़ लो। तुम अक्षय अजस्र हो जाओगे। तब तुम जितना जितना अधिक कार्य करोगे, जितनी जितनी अधिक साधना करोगे, अपनी शक्तियों का जितना जितना व्यय करोगे, उतनी उतनी ही क्षमतायें, शक्तियां और दिव्यतायें तुममें स्वयमेव संचारित होती रहेंगी।

सान्त और ससीम समस्त स्रोतों से अपना सम्बन्ध तोड़कर उस एक अनन्त और असीम अक्षय स्रोत से अपना शाश्वत सम्बन्ध जोड़ लो।

—विदेह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सविता

लेख-क्रम

शिव बन	विदेह	१६३
संस्कृति	"	१६४
अहंकार-नाशक इन्द्र	"	१६७
दुःख की महिमा	"	१६७
गीता-योग [३२]	"	१६८
साधना [३६]	"	१६६
गृहस्थाश्रम [१६]	"	१७०
चरित्र और चरित	"	१७०
अध्यापक [१०]	"	१७१
विद्यार्थी [१०]	"	१७१
यम	रघुवीर	१७२
विशेषण	विदेह	१७२
सविता-परिवार से	चण्डक	१७३
समन्वय	अभयदेव	१७४

मन्त्रानुक्रम

अविप्रो वा (ऋ० ८-६१-६)	१६७
नमः सु ते (य० १२-६३)	१६७
शिवो भव (य० ११-४५)	१६३
सा प्रथमा संस्कृतिः (य० ७-१४)	१६४

संस्थान-प्रकाशन

विदेह-विरचित

वेदव्याख्याग्रन्थ—प्रथम पुष्प	२.००
वेदव्याख्याग्रन्थ—द्वितीय पुष्प	१.५०
गायत्री—[द्वितीय संस्करण]	१.५०
गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान	०.२५
महामृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान	०.२५
सार्वभौम आर्य-साम्राज्य	०.५०
वैदिक-बालशिक्षा—प्रथम भाग [तृतीय संस्करण]	०.३७
वैदिक-बालशिक्षा—द्वितीय भाग [द्वितीय संस्करण]	०.३७
वैदिक योग-पद्धति—[द्वितीय संस्करण]	०.३७
सन्ध्या-योग	०.२५
स्वस्तियाग	०.७५
यज्ञोपवीत-रहस्य—[चतुर्थ संस्करण]	०.०६
संस्कृत-शिक्षा—प्रथम भाग	०.१६
संस्कृत-शिक्षा—द्वितीय भाग	०.३७
सत्यनारायण की कथा—[द्वितीय संस्करण]	०.३७
सत्संग-गीतावली	०.३७
दिव्य-भावना	०.०६

सविता की वार्षिक जिल्दें
वर्ष ४ से, प्रति जिल्द ३.२५

—डाकखर्च पृथक्

पता—व्यवस्थापक, वेदसंस्थान, अजमेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

सविता

[वेद-संस्थान अजमेर का मासिक पत्र]

वर्ष १०	अजमेर, दिसम्बर १९५७, (सहः) मार्गशीर्ष, २०१४	अङ्क ११ पूर्णाङ्क ११९

शिव बन

शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः।
मा द्यावापृथिवी अभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन्॥ (य० ११-४५)

(अंगिरः) प्यारे! (त्वं) तू (मानुषीभ्यः प्रजाभ्यः) मानुषी-प्रजाओं के लिये (शिवः भव) शिव हो, कल्याणकारी बन। (द्यावापृथिवी मा अभि शोचीः) द्यौ और पृथिवी को मत सन्तप्त कर। (अन्तरिक्षं मा अभि शोचीः) अन्तरिक्ष को मत पीड़ित कर। (वनस्पतीन् मा अभि शोचीः) वनस्पतियों को मत जला।

वेदमाता बड़े प्यार के साथ अपने मानव-पुत्र से कहती है, "प्यारे! मानव-समाज के लिये अभिशाप न बन। मानव-प्रजा के लिये शिव बन। द्यौ, भू और अन्तरिक्ष में हिंसा और अशान्ति मत फैला। वनस्पतियों को न जला"।

मानव-प्रजाओं के प्रति तू,
हो मंगलकारी, हे प्यारे!
द्यावापृथिवी को न तपा तू,
और न वनस्पतियों को जला तू!!

खिदमत कर ऐ इन्सान तू इन्सान की हैवां न बन।
बर्बाद करके बस्तियां और हस्तियां शैतां न बन॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा ॥ (य० ७-१४)

(सा संस्कृतिः) वह संस्कृति (प्रथमा) प्रथमा तथा (विश्व-वारा) विश्व-वारा है।

संस्कृति [Culture] और सभ्यता [Civilization]-ये दोनों एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। इन दोनों में बड़ा अन्तर है, बहुत भेद है। संसार के बड़े-बड़े नेता और बड़े-बड़े विद्वान् इन दोनों शब्दों का खुला प्रयोग करते हैं। साधारण पढ़े लिखे लोग भी इनकी बहुत दुहाई देते हैं। किन्तु आश्चर्य की बात है कि प्रायः वे सब ही इन दोनों ही शब्दों के अर्थ और मर्म से सर्वथा अनभिज्ञ हैं और इस कारण भारत में भी तथा अन्यत्र भी संस्कृति के नाम पर बड़े भारी अनर्थ होरहे हैं।

सभ्यता का सम्बन्ध किसी भी जाति के सामाजिक शिष्टाचार तथा व्यवहार से है, जबकि संस्कृति का सम्बन्ध है मानव की अथवा मानव-समाज की आत्मिक आस्था और नैतिक निष्ठा से।

एक दूसरे से कैसे मिलना जुलना और सम्भाषण करना, परस्पर किस प्रकार आदर सत्कार करना, सभा सोसाइटी में किस प्रकार वर्तना, सौजन्य और शिष्टता का सर्वत्र कैसे परिचय देना—ये और इस प्रकार की अन्य अनेक बातें सभ्यता में सम्मिलित हैं। यह सब बाह्य व्यापार है।

सब प्राणियों को आत्मवत् समझकर यथाशक्य और यथासम्भव किसी को किसी प्रकार कष्ट न देना, किसी की भावनाओं को ठेस न पहुंचाना, सत्य का पालन, सब प्रकार की चोरी का त्याग, पर-नारी को पुत्री बहिन माता समझना, अर्थशुचिता, पवित्र विचार, पवित्र भावना, पवित्र जीवन, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, आत्म-साधना, कर्तव्य-निष्ठा, ईशभक्ति—ये और इसी प्रकार के अन्य सब आचार संस्कृति के अंग हैं।

यह हो सकता है कि एक सभ्य पुरुष संस्कृतिविहीन हो। मैं रेलवे ट्रेन के एक फ़र्स्ट क्लास डिब्बे में यात्रा कररहा था। रात्रि का समय था। उस डिब्बे में मैं अकेला ही था। दोनों ओर की चटखनियां बन्द करके मैं सोरहा था। एक स्टेशन पर एक जैंटिलमैन ने धीरे से आवाज़ दी, "महात्मा जी"।

"कहिये"।

"मुझे खेद है कि मैं आपको असमय कष्ट देरहा हूं। क्या आप दरवाज़ा खोलने की कृपा करेंगे ?"

"यह फ़र्स्ट क्लास का डिब्बा है"।

"जी, मैं जानता हूं। मैं फ़र्स्ट का यात्री हूं। मेरे पास फ़र्स्ट क्लास का टिकिट है"।

मैंने दरवाज़ा खोल दिया। वह अन्दर दाखिल हुआ। चटखनी लगाकर बर्थ पर बैठते हुए वह पुनः बोला, "स्वामी जी, मैंने सचमुच आपको बहुत कष्ट दिया है। मुझे बड़ा खेद है। आप मुझे क्षमा करदें"।

"कोई बात नहीं। आप चिन्ता न कीजिये"।

अपने सूटकेस में से उसने एक चादर निकाली और उसे बिछाकर वह सोने के लिये लेट गया। लेटते हुए उसने मुझे प्रणाम किया।

"यह कितना सभ्य है", मैंने अपने मन में कहा।

प्रातः चार बजे मेरी आंखें खुलती हैं तो क्या देखता हूं कि वह सभ्य पुरुष ग़ाइब है और उसके साथ ही ग़ाइब है मेरा वह थैला, जिसमें मेरे रेलवे टिकिट और मेरी घड़ी के अतिरिक्त दो सौ रुपये भी थे।

वह आदमी सभ्य तो था, किन्तु संस्कृतिमान् नहीं था। यदि वह सुसंस्कृत भी होता, तो उसमें वह आस्था और नैतिकता भी होती कि वह कितने भी लाभ के लिये चोरी कदापि न करता।

एक दूसरे अवसर पर मैं कलकत्ते से दिल्ली के लिये रवाना हुआ। ठीक गाड़ी के छुटने पर मेरे आतिथ्यकर्ता ने मुझे सौ सौ रुपये के पांच नोट भेंट किये। मैं कोई जेबदार वस्त्र पहिने हुए नहीं था। पांचों नोट मैंने अपने थैले में रख लिये। थैले को तकिये के नीचे दबाकर मैं सोगया। प्रथम बार ही जहां ट्रेन रुकी, एक फ़ैशनेबिल बूढ़ा आदमी सवार हुआ। कलकत्ते से ही उसके लिये मेरे डिब्बे में बर्थ सुरक्षित हो चुकी थी। उसने दरवाज़ा खटखटाया। मैंने द्वार खोल दिया। सामान के बहुत से अददों के साथ वह डिब्बे में प्रविष्ट हुआ। उसने मुझसे "धन्यवाद" भी न कहा। मैं सोचने लगा—यह आदमी बड़ा असभ्य है। उसने अपना सारा सामान संभाल कर रखवाया, बिस्तर बिछाया और सो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रातः चार बजे मैं सोकर उठा। खिड़की में होकर मैंने कुल्ला किया, मुंह धोया। मुंह पोंछने के लिये मैंने थैले में से रूमाल निकालकर, थैले को वापस तकिये के नीचे रख दिया। ध्यान व प्रार्थना करके मैं शौचालय में चला गया। आधे घण्टे में शौच स्नान आदि से निवृत्त होकर मैं अपनी सीट पर आकर बैठा तो उस भद्र वृद्ध ने मुझसे प्रश्न किया, "क्या आपके कुछ करेंसी नोट खो गये हैं ?" मैंने थैला निकालकर देखा तो सौ सौ रुपये के पांचों नोट ग़ायब थे। मुझे ख्याल आया कि मुंह पोंछने को रूमाल निकालते समय वे नोट नीचे गिर गये होंगे। "जी हां, मेरे सौ सौ रुपये के पांच नोट ग़ायब हैं", मैंने उत्तर दिया।

"यह लीजिये। मैं उठा तो आपकी ही बर्थ के नीचे मुझे ये नोट दिखाई पड़े", इतना कहकर पांच सौ रुपये के नोट उसने मुझे पकड़ा दिये।

वह आदमी उजड्ड था। उसे असभ्य कहा जा सकता है। पर वह सुसंस्कृतिमान् था, तभी तो उसमें ऐसी आस्था और नैतिकता थी कि उसने स्वयं याद दिलाकर पांच सौ रुपये मुझे लौटा दिये।

एक व्यक्ति है। वह ज़ाहिरा देवियों का बड़ा मान करता है। उन्हें आता देखकर वह खड़ा होजाता है। वह उनका स्वागत करता है और उन्हें उत्तम आसनों पर बिठाकर स्वयं एक साधारण आसन पर बैठ जाता है। किन्तु अपने अन्दर वह उनके लिये अश्लील विचार करता है, उन्हें अपावन दृष्टि से देखता है। यह आदमी सुसभ्य तो है, किन्तु सुसंस्कृत नहीं है।

यह आवश्यक नहीं कि एक सभ्य व्यक्ति संस्कृतिमान् भी हो। यह भी आवश्यक नहीं कि एक सुसंस्कृत व्यक्ति सुसभ्य भी हो।

जिस व्यक्ति में सभ्यता और संस्कृति दोनों प्रस्थापित हैं, वह व्यक्ति साधारण मानव नहीं है, वह तो दिव्य देव है, जिस नारी में सभ्यता और संस्कृति दोनों प्रस्थापित हैं, वह साधारण नारी नहीं है, वह तो दिव्य देवी है।

जिस व्यक्ति में सभ्यता तो है किन्तु संस्कृति नहीं है, वह दस्यु है। दस्यु शब्द का अर्थ है दर्शनीय और दंशनशील [डंक मारनेवाला] व्यक्ति। जो व्यक्ति बाहर से बड़ा ही सभ्य है और अन्दर का मलिन है, उसे दस्यु कहते हैं। प्रत्यक्ष में हितैषी और परोक्ष में डंक मारनेवाले जन दस्यु कहलाते हैं। संस्कृतिशून्य सभ्य पुरुष सामाजिक दस्यु हैं।

जो व्यक्ति संस्कृतिमान् तो है पर सभ्य नहीं है, वह पूजार्ह है, सत्करणीय है, वह महा मानव है और यदि वह सभ्यता से युक्त होजाये तो वह दिव्य देव बन जाये।

जिस व्यक्ति में न सभ्यता का निवास है न संस्कृति का, वह निरा पशु है।

सभ्यता संस्कृति से युक्त होकर दिव्यता का सृजन करती है। संस्कृति सभ्यता से युक्त होकर देवत्व का निर्माण करती है और परम सौन्दर्य से सुभूषित होती है। सभ्यता से शून्य संस्कृति नंगी तलवार है तो संस्कृति से शून्य सभ्यता हलाहल विष है। पूर्ण शोभा, पूर्ण सौन्दर्य, पूर्ण कल्याण और पूर्ण आनन्द तो वहीं है, जहां सभ्यता और संस्कृति दोनों ही विद्यमान हैं।

ऐसे व्यक्ति दुर्लभ हैं, जिनमें सभ्यता और संस्कृति दोनों ही सुशोभित हैं और ऐसा समाज या राष्ट्र तो आज संसार में है ही नहीं, जो सभ्यता और संस्कृति दोनों से समलंकृत हो।

जो समाज सभ्यता और संस्कृति दोनों से युक्त है, वही देव समाज है, वही आर्य समाज है।

जो समाज केवल संस्कृति से युक्त है, वह समाज आदरणीय समाज है।

जो समाज केवल सभ्यता से युक्त है, वह समाज दस्यु समाज है।

जो समाज सभ्यता और संस्कृति दोनों से शून्य है, वह समाज पशु समाज है।

समाज-समाज और राष्ट्र-राष्ट्र की सभ्यतायें बदलती रहती हैं। सभ्यता परिवर्तनशील है। सामाजिक परिवर्तनों के साथ सभ्यताओं में परिवर्तन होना अनिवार्य है। सभ्यता किसी भी समाज या राष्ट्र की पोषाक है। जिस प्रकार देश-देश की पोषाकों में भेद है, वैसे ही देश-देश की सभ्यता में भेद है। सभ्यता का सम्बन्ध बाह्य रीति-रिवाजों से है। जैसे जलवायु के परिवर्तन के अनुसार पोषाकों में परिवर्तन होता है, वैसे ही सामाजिक परिवर्तनों के अनुसार सभ्यताओं में परिवर्तन होते हैं। जलवायु के कारण भी सभ्यताओं में भेद है। अनेक परम्परायें भी सभ्यताओं का अंग हैं।

किन्तु संस्कृति अखण्ड और अपरिवर्तनशील है, क्योंकि उसका सम्बन्ध शाश्वत सत्यों और तथ्यों से है। (संस्कृतिः सा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति वह वस्तु है, जो (प्रथमा विश्व-वारा) प्रथमा और विश्व-वारा है।

प्रथमा का अर्थ है, पहली, सर्वपूर्व, आदिम। जो आदिम हो, आदि से ही एक जैसी हो, आदि से ही एकरूप चली आरही हो, उसे प्रथमा कहते हैं। सृष्टि के आदि से लेकर आज तक देश-देश और समाज-समाज की सभ्यताओं में भिन्नता रही है और रहेगी, सृष्टि के आदि से लेकर आज तक सभी सभ्यताओं में परिवर्तन होते रहे हैं और होते रहेंगे, क्योंकि सभ्यता का सम्बन्ध परिवर्तनीय बाह्य रीतिरिवाजों, बाह्य कारणों और बाह्य परिस्थितियों से है, बाह्य प्रदेशों से है। संस्कृति आदि से अन्त तक एकरूप और अपरिवर्तित रहती है, क्योंकि उसका सम्बन्ध भीतर से है, आत्मिक आस्था और नैतिक निष्ठा से है, आत्मा से है, अन्तरात्मा से है, धर्म से है, परमात्मा से है। (संस्कृतिः सा) संस्कृति वह है, जो (प्रथमा) आदिम है, सृष्टि के आदि से चली आरही है।

विश्व-वारा शब्द के दो अर्थ हैं, (१) विश्व-वरणीया और (२) विश्व-वारिका, विश्वदोष-निवारिका।

(सा) वह, जिसे (संस्कृतिः) संस्कृति कहते हैं, (विश्व-वारा) विश्व-वरणीया है। संस्कृति विश्व-वरणीय होती है। सभ्यता समाज-समाज या राष्ट्र-राष्ट्र की अपनी अपनी होती है। संस्कृति अखिल विश्व की, सारे संसार की, समस्त भूमण्डल की, सम्पूर्ण मानव-समाज की एक ही होती है। संस्कृति न यूरोपियन होती है, न एशियन होती है, न अमेरिकन होती है, न आस्ट्रेलियन होती है, न एफ्रीकन होती है। संस्कृति तो वैश्व होती है, सारे विश्व की एक ही होती है, विश्व-व्यापिनी होती है। संस्कृति न भारतीय है, न अरबीय है, न चीनीय है, न रूसीय है, न जर्मनीय है। संस्कृति तो सारे संसार की एक अखण्ड अविभाज्य है। संस्कृति न पाश्चात्य है, न पौरस्त्य है। संस्कृति तो सार्वभौम है।

(सा) वह, जिसे (संस्कृतिः) संस्कृति कहते हैं, (विश्व-वारा) विश्व-वारा है, विश्व-वारिका है, विश्व-निवारिका है, सर्वदोषनिवारिका है, सब दोषों का वारण-निवारण-निराकरण करनेवाली है।

संस्कृति मनुष्य को निर्दोष और निष्पाप बनाती है। एक सभ्य पुरुष पर-स्त्री-गामी हो सकता है, एक सभ्य स्त्री पर-पुरुष-गामिनी हो सकती है। एक संस्कृतिमान् पुरुष पर-स्त्री-गामी नहीं हो सकता, एक संस्कृतिमती नारी पर-पुरुष-गामिनी नहीं हो सकती। सभ्य स्त्री पुरुष व्यभिचारी हो सकते हैं। सुसंस्कृत स्त्री पुरुष कदापि व्यभिचारी नहीं हो सकते। सभ्य व्यक्ति असत्य बोल सकता है। संस्कृतिमान् व्यक्ति असत्य बोल ही नहीं सकता। सभ्य व्यक्ति चोरी कर सकता है, हिंसा या परहानि कर सकता है, लालची हो सकता है, मलिन हो सकता है, आरामतलब और प्रमादी हो सकता है, अश्लील हो सकता है, नास्तिक और अधार्मिक हो सकता है। संस्कृति से सुसंस्कृत व्यक्ति निश्चय से कभी कदापि चोरी नहीं कर सकता, हिंसा या परहानि नहीं कर सकता, लालच नहीं कर सकता, मलिन नहीं हो सकता, आरामतलब और प्रमादी नहीं हो सकता, अश्लील नहीं हो सकता, नास्तिक और अधार्मिक नहीं हो सकता।

सभ्य पुरुष ईर्ष्या, द्वेष और निन्दा से युक्त हो सकता है। सुसंस्कृत व्यक्ति कदापि ईर्ष्या, द्वेष और निन्दा नहीं कर सकता।

सभ्य व्यक्ति व्यसनी हो सकता है। सुसंस्कृत व्यक्ति व्यसनी नहीं हो सकता।

जो नितान्त निर्दोष और निष्पाप है, वह ही संस्कृति से सुसंस्कृत है। संस्कृति के नाम पर आजकल देशविदेशों में जो तथाकथित सांस्कृतिक आयोजन होते हैं, उन्हें सांस्कृतिक आयोजन कहना या तो **संस्कृति** शब्द के अर्थ की अनभिज्ञता है, या आयोजकों की ढीढता और निर्लज्जता है। वे तो प्रत्यक्षतः असांस्कृतिक आयोजन हैं।

नितान्त निर्दोष निष्पाप व्यक्ति ही सुसंस्कृत व्यक्ति है। नितान्त निर्दोष निष्पाप व्यक्तियों का समूह ही सुसंस्कृत समाज अथवा सुसंस्कृत राष्ट्र है। वासनाओं को उत्तेजित न करनेवाले निर्विकार शिक्षाप्रद पवित्र आयोजन ही सांस्कृतिक आयोजन हैं।

संस्कृतिशून्य सभ्यता संसार का सर्वनाश करदेगी। संस्कृतियुक्त सभ्यता से ही संसार का परित्राण होगा। संस्कृतिविहीन सभ्यता विधवा का अप्रतिष्ठ शृंगार है। संस्कृतियुक्त सभ्यता सधवा की सप्रतिष्ठ शोभा है।

आज संसार में सभ्यता तो फैलती जारही है, किन्तु संस्कृति का सर्वथा ह्रास होता जारहा है। वेद ही संस्कृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मूल स्रोत है। वेद की सुसंस्कृत शिक्षाओं का साचार प्रचार ही संस्कृति के प्रसार का अमोघ साधन है।

जो वह संस्कृति,
है वह आदिम,
सार्वभौम और दोषवारिका ॥

अहंकार-नाशक इन्द्र

अविप्रो वा यदविधद्विप्रो वेन्द्र ते वचः ।
स प्र ममन्दत्त्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ॥

(ऋ० ८-६१-९)

अविप्रः वा यत् अविधत् विप्रः वा इन्द्र ते वचः ।
सः प्र ममन्दत् त्वाया शत-क्रतो प्राचा-मन्यो अहं-सन ॥

(शत-क्रतो प्राचा-मन्यो अहं-सन इन्द्र) असंख्य-कर्तृत्व सनातन-प्रज्ञ अहंकार-नाशक इन्द्र ! (अविप्रः वा विप्रः वा) अविप्र हो या विप्र उसने (यत् ते वचः अविधत्) जब तेरे वचन को विहित [धारण, शिरोधार्य] कर लिया, तो (सः) वह (त्वाया) तेरी इच्छा में (प्र ममन्दत्) प्रसन्न रहा करता है।

विश्वविकर्मा प्रज्ञसनातन,
अहं-विनाशक प्रियतम इन्द्र !
हो अविप्र या विप्र,
कि जिसने तेरा वचन,
विहित कर लिया।
तेरी ही इच्छा में रहता,
है वह सदा प्रसन्न ॥

दुःख की महिमा

नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम् । यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके अधिरोहयैनम् ॥ (य० १२-६३)

नमः सु ते निःऋते तिग्म-तेजः अयस्मयं वि-चृत बन्धं एतम् । यमेन त्वं यम्या सं-विदाना उत्तमे नाके अधि-रोहय एनम् ॥

१) (निःऋते) !

२) (ते) तेरे लिये (सु) सुष्ठुतया, सुस्वागतपूर्वक (नमः) नमस्कार।

३) (तिग्म-तेजः) तीक्ष्ण-तेज तू (एतं अयस्मयं बन्धं) इस लोहमय बन्धन को (वि-चृत) तोड़ दे।

४) (यमेन यम्या) यम और यमी के द्वारा (सं-विदाना) संज्ञान करती हुई, (त्वं) तू (एनं) इसको (उत्-तमे नाके) उच्च-तम आनन्दलोक में (अधि-रोहय) चढ़ादे।

ऋत का स्त्रीलिंग है ऋति। जितने अर्थ ऋत के हैं, उतने ही अर्थ ऋति के हैं। ऋत, ऋतु, ऋति—तीनों एक ही परिवार के शब्द हैं। निर्ऋति वेद का एक सुप्रसिद्ध शब्द है और उसका प्रयोग वेद में सर्वत्र कृच्छ्रापत्ति के अर्थ में हुआ है।

निर्ऋति अथवा कृच्छ्रापत्ति का अर्थ है पार्थिव आपत्ति, पार्थिव दुःख। पृथिवी पर जो बड़ी से बड़ी आपत्तियां और भयंकर से भयंकर दुःख हो सकते हैं, उन सबके सर्वतः आक्रमण का नाम कृच्छ्रापत्ति अथवा निर्ऋति है। **एक शब्द में निर्ऋति का अर्थ** है दुःखापत्ति [दुःख+आपत्ति, दुःख+आक्रमण, दुःखों का आक्रमण]।

पाठशालाओं, गुरुकुलों, स्कूलों, कॉलिजों और विश्वविद्यालयों में केवल साक्षरता उपलब्ध होती है, वहां न शिक्षा मिलती है न ज्ञान प्राप्त होता है। शिक्षा की प्राप्ति और ज्ञान की सम्प्राप्ति तो केवल दुःखापत्ति की पाठशाला में होती है। विद्यालयों की डिग्रियां और विश्वविद्यालयों की उपाधियां तो क्रमशः मिथ्याभिमान के बिल्ले और अज्ञान के दुमछल्ले हैं। दुःखापत्तियों की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते हुए और अनुभव की श्रेणियों पर चढ़ते हुए, जो जीवनोत्थान के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचे हैं, वे ही मानव वास्तव में शिक्षित और सुशिक्षित हैं। दुःखापत्तियां ही जीवन का वास्तविक निर्माण करती हैं, मानव का वास्तविक कल्याण करती हैं, मानव को सत्य संज्ञान और सद्विवेक प्राप्त कराती हैं।

अतः निर्ऋति के आगमन पर एक धीर मानव कहता है—(नमः सु ते निर्ऋते) नमस्कार है सुस्वागतपूर्वक तेरे लिये, निर्ऋते ! कृच्छ्रापत्ते, तेरा सनमस्कार सुस्वागत है।

सुख की धार बहुत सुकोमल है। उसमें इतनी क्षमता कहां कि मोह माया और लेप आसक्ति के लोहमय बन्धनों को काट सके। निर्ऋते ! तू (तिग्म-तेजः) तीक्ष्ण-तेज है, तू तेज धार वाली है। तू ही (एतं अयस्मयं बन्धं) इस लोहमय बन्धन को, मन के इस दृढ़ बन्धन को (वि-चृत) काट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकल्प विकल्प का यामक नियामक होने से मन ही यम है। विचारों की नियामिका होने से बुद्धि ही यमी है। सुख से मन और बुद्धि की नियामक शक्ति का ह्रास होता है। दुःख की भट्टी में तपकर मन निर्विकल्प होजाता है और बुद्धि परिष्कृत होजाती है। निर्विकल्प मन और परिष्कृत बुद्धि से संज्ञान की प्राप्ति होती है। संज्ञान के द्वारा मानव जीवन में आरोहण करता हुआ जीवन की उच्चतम स्थिति को प्राप्त करके आनन्दमय लोक [अवस्था] को पाता है। इसी भाव का द्योतन करता हुआ निर्ऋति का स्वागत करनेवाला महा मानव कहता है—निर्ऋते ! (यमेन यम्या) मन और बुद्धि के द्वारा (सं-विदाना) संज्ञान-सद्विवेक प्राप्त कराती हुई (त्वं) तू (एनं) इस मानव को (उत्तमे नाके) उच्चतम स्वर्ग में, आनन्द की उच्चतम अवस्था में (अधि-रोहय) चढ़ा।

नमस्कार सुस्वागत तेरे लिये निर्ऋते,
बहुत तीक्ष्ण तू काट लोहमय इस बन्धन को।
मन और बुद्धि से इसको संज्ञान कराकर,
चढ़ा इसे तू ऊर्ध्वस्तम आनन्दलोक में॥

गीता—योग

—३२—

[तीसरा अध्याय]

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ २०

(जनक-आदयः) जनक आदि (कर्मणा एव हि) कर्म के द्वारा ही (सं-सिद्धि) संसिद्धि को (आस्थिताः) प्राप्त हुए हैं। (लोक-संग्रहं एव अपि) लोक-संग्रह को भी (सं-पश्यन्) देखता हुआ, तू (कर्तुं अर्हसि) कर्म करने को योग्य है, तुझे कर्म करना चाहिये।

पूर्व श्लोक में कृष्ण के द्वारा अर्जुन से कहा गया है, "अनासक्त होकर सतत कर्तव्य कर्म कर, क्योंकि अनासक्त होकर कर्म करता हुआ मानव परब्रह्म अथवा परम पद को प्राप्त होता है"। इस कथन की पुष्टि में कृष्ण पुनः कहते हैं, "जनक आदि अनेक पुरुष ऐसे हो गये हैं, जिन्होंने अनासक्त रहकर विविध कर्तव्य कर्मों का सम्पादन करते हुए संसिद्धि प्राप्त की है। अर्जुन ! लोकसंग्रह को दृष्टि में रखते हुए भी तुझे अनासक्त भाव से कर्तव्य कर्म का सम्पादन करना ही चाहिये"।

लोकसंग्रह का अर्थ है लोक-व्यवस्था अथवा सामाजिक व्यवस्था। सामाजिक सुव्यवस्था के लिये कर्मत्याग की परिपाटी बहुत हानिकर है। लोकसंग्रह के लिये भी अनासक्त कर्म का आदर्श ही सर्वथा उपादेय है। कर्म के त्याग की अपेक्षा तो आसक्तिपूर्वक कर्म करना कहीं अधिक श्रेष्ठ है। श्रेयस्कर तो आसक्तिरहित होकर कर्म करना ही है।

एक माता है। वह अपने छोटे शिशु के पालन पोषण के अपने कर्तव्य कर्म का त्याग करती है और अपने शिशु को छोड़कर कहीं चली जाती है। कर्तव्य कर्म के इस त्याग से समाज-व्यवस्था ही नष्ट होजायेगी। इस प्रकार का कर्मत्याग कर्मत्याग नहीं है, कर्मच्युतता है, कर्तव्यभ्रष्टता है, सामाजिक महा पाप है। इस प्रकार के कर्मत्याग से तो समाज में वह भयंकर अव्यवस्था फैलेगी कि सारा मानव-समाज ही नष्ट भ्रष्ट होजायेगा।

दूसरी माता है। वह आसक्ति के कारण अथवा मोहवशात् अपने शिशु का यथावत् पालन पोषण और शिक्षण सुशिक्षण करती कराती है। यह माता पहली माता की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि इससे समाज-व्यवस्था की सुरक्षा होती है, इससे लोकसंग्रह का व्याघात नहीं होता है।

तीसरी माता है। वह नितान्त अनासक्त होकर केवल मात्र कर्तव्य बुद्धि से और लोकसंग्रह की संदृष्टि से अपने शिशु का सुचारुता के साथ पालन पोषण और सुशिक्षण कर कराकर उसे सुयोग्य और सक्षम बनाती है। यह माता दोनों माताओं से अधिक श्रेष्ठ है। यह माता आदर्श माता है। निष्ठापूर्वक कर्तव्य कर्म का सम्पादन करके यह माता लोकसंग्रह अथवा समाजव्यवस्था की रक्षा करती है और आसक्तिरहित होकर कर्म करके वह संसिद्धि को प्राप्त होकर परम पद लाभ करती है।

यहां न्याय की रक्षार्थ युद्ध करना अर्जुन का कर्तव्य कर्म है। किन्तु अर्जुन कहता है, "मैं युद्ध नहीं करूंगा। मैं भीख मांगकर खा लूंगा। राज्य लेकर मुझे क्या करना है"। यह समझदारी की बात नहीं है। यह तो कर्तव्य-हीनता है, कापुरुषता है। यदि न्याय की रक्षा के प्रति उपेक्षा की यह वृत्ति समाज में व्याप जाये तो अत्याचारियों का बोल बाला होकर मानव-समाज में भयंकर अव्यवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याप जायेगी। इस प्रकार का कर्मत्याग कर्मत्याग नहीं है। फलासक्ति का त्याग ही वास्तव में कर्मत्याग है। अतः अर्जुन के प्रति कृष्ण कहते हैं—

कर्म के द्वारा ही संसिद्धि को प्राप्त हुए हैं जनकादि।
लोकसंग्रह को देखते हुए भी चाहिये तुझे करना कर्म॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते॥ २१

(श्रेष्ठः) बड़ा आदमी (यत् यत् आचरति) जो जो आचरण करता है, (इतरः जनः) अन्य जन (तत् तत् एव) वह वह ही [करता है]। (सः) वह (यत् प्रमाणं कुरुते) जो प्रमाण करता है, (लोकः) समाज (तत् अनु-वर्तते) वही अनुवर्तता है, उसी का अनुकरण करता है।

बड़े आदमी की हर बात जनता के लिये प्रमाण बन जाती है। समाज में उच्च स्थिति के लोग जैसा व्यवहार करते हैं, जनसाधारण वैसा ही करने लग जाते हैं। अर्जुन एक साधारण व्यक्ति नहीं है। वह एक वीरशिरोमणि है। यदि वह इस प्रकार एक न्याय्य युद्ध से हट जाता है तो अन्याय के प्रतिरोध की श्रेष्ठ परम्परा विलीन होजायेगी। साधारण जनता उसका अनुकरण करने लगेगी। वह समाज के लिये एक सर्वथा अप्रशस्त और अवाञ्छनीय आदर्श होगा।

मानव-समाज में जो विशिष्ट व्यक्ति हैं, उनके लिये यह श्लोक एक सुन्दर विधान कर रहा है। विशिष्ट व्यक्तियों के प्रत्येक व्यवहार और उनकी प्रत्येक चेष्टा का जनसाधारण में अनुकरण किया ही जाता है। सामाजिक उच्च स्थिति प्राप्त व्यक्ति समाज में बुराई या भलाई के फैलानेवाले होते हैं। वे जैसा वर्तते हैं, जनता भी वैसा ही वर्तती है। यह एक सहज और स्वाभाविक बात है। अतः बड़े लोगों का प्रत्येक कार्य ऐसा होना चाहिये कि उसका अनुकरण करके मानव-समाज अवनत न होकर उन्नत होता चला जाये।

जो जो बड़ा मनुज आचरता जनसाधारण करता वैसा।
वह जो कुछ प्रमाण करता है तथा वर्तती जनता सारी॥

साधना

—३६—

वृत्ति-निरोध

नेत्र, श्रोत्र, वाणी और सांस [श्वास प्रश्वास] के द्वारा वृत्तियों का बाहर की ओर [illegible] होता है। वृत्तियों के निरोध के लिये इन चारों का कठोर नियन्त्रण अथवा पूर्ण संयम करना अतिशय आवश्यक है।

जब किसी व्यक्ति को नींद नहीं आती है तो वह आंख मुंह बन्द करके और कान दबाकर लेट जाता है और निद्रा लाने का यत्न करता है। नेत्र, श्रोत्र और मुख के इस संयम से प्रथम उसे धीरे धीरे झपकी सी आती है, फिर झपकी निद्रा में परिवर्तित होती है और तब व्यक्ति सुषुप्ति [गाढ़ निद्रा] से आच्छादित होजाता है। सुषुप्ति की अवस्था में पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति के सांस की गति स्वयमेव निरुद्ध होजाती है।

वृत्तियों के निरोध की सिद्धि के लिये साधक को अपने नेत्र, श्रोत्र और वाणी का पूर्ण संयम करना चाहिये। नेत्र, श्रोत्र और वाणी के संयम से सांस का निरोध स्वयमेव सिद्ध होजाता है।

नेत्रों के निरोध के लिये अपनी दृष्टि का संयम कीजिये। यदि आप पढ़रहे हैं तो अपनी दृष्टि को पढ़ने में ऐसा केन्द्रित कीजिये कि पढ़ते समय आपकी दृष्टि बिल्कुल इधर उधर न जाये। यदि आप चित्र बनारहे हैं तो आपकी दृष्टि चित्रकारी में सुकेन्द्रित होजाये। आप जो भी कार्य कररहे हैं, उसी कार्य में आपकी दृष्टि संस्थित रहे। मार्ग में चलते हुए आप मार्गविलोकिनी दृष्टि रखें, इधर उधर अकारण किसी की ओर दृष्टिपात न करें। यदि आप किसी सभा में बैठकर व्याख्यान अथवा उपदेश श्रवण करें तो नेत्रों के पलक मूंदकर अथवा पलक नीचे करके सभा में स्थित रहें। केन्द्रित दृष्टि, नीची निगाह या बन्द पलक—इन तीन अभ्यासों से नेत्रों का पूर्ण निरोध सम्पादन कीजिये। ग्रन्थपाठ और साहित्यावलोकन का सम्बन्ध भी नेत्रों से है। नेत्रनिरोध के लिये यह भी नितान्त आवश्यक है कि आप अतिशय विशुद्ध और सात्त्विक ग्रन्थों व साहित्यों का ही अवलोकन करें।

श्रोत्रों के संयम के लिये अनावश्यक व्यर्थ वार्तालाप से सदा बचिये, अश्लील असम्बन्धित और अप्रासंगिक बातें न सुनिये, शृंगारिक व रसिक गाने बजाने अपने कर्णगोचर न होने दीजिये। परुष और अपावन वचन अपने कानों में न आने दीजिये। कम से कम और नितान्त आवश्यक वचनों को ही अपने श्रोत्रों से टकराने दीजिये। श्रुति के [illegible] श्रोत्रों का संयम सिद्ध कीजिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी के संयम के लिये सदा मुनि भाव को प्राप्त रहिये। यदि एक शब्द बोलने से काम चल सकता है तो दो शब्द न बोलिये। सदा ओष्ठ बन्द रखिये। कभी भी ओष्ठ निरर्थक न खोलिये। सर्वदा नाप तोल कर नपे तुले शब्द बोलिये।

जब आप आसनस्थ होकर ध्यान करने बैठेंगे, तब उपर्युक्त वृत्ति-निरोध का यह सन्तत अभ्यास आपके ध्यान को जमाने में और ध्यान को जमाकर समाधि में प्रवेश कराने में अत्यन्त सहायक होगा।

आसनस्थ होकर नेत्र और ओष्ठ बन्द करके इच्छाशक्ति के द्वारा श्रवणशक्ति को अन्तर्मुख कीजिये। निश्चलता के साथ आसन पर आसीन होने से प्राण स्वयमेव स्थिर और निश्चल होता चला जायेगा। यों आसन पर स्थित होकर सविता देव के वरेण्य भर्ग का, सौन्दर्य के परम सूर्य परम पावन प्रभु के दिव्य सौन्दर्य का, प्रकाशस्वरूप देव के दिव्य प्रकाश का, ध्यान कीजिये। नेत्र बन्द करने पर बन्द आंखों से जैसा भी धूमल या धवल वर्ण दिखाई पड़े, उसी पर अपना ध्यान जमाइये। उसी धूमल या धवल वर्ण को देव सविता का वरेण्य भर्ग, प्रकाशस्वरूप देव का दिव्य प्रकाश, सुन्दर देव का दिव्य सौन्दर्य, समझकर, उसी पर अपना सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित कर दीजिये। ध्यान करते करते आपकी धारणाओं में दिव्यता का संचार होता जायेगा। अभ्यास के परिपक्व होने पर आपकी दृष्टि दिव्य दृष्टि होजायेगी। दृष्टि के दिव्य होने पर आपकी दिव्य दृष्टि से आपको देव सविता के, परब्रह्म के, परम सुन्दर, परम प्रकाशमय, दिव्य स्वरूप का दर्शन होगा, संदर्शन होगा।

किसी चक्र या किसी स्थान विशेष पर कभी भूलकर भी ध्यान जमाने का अभ्यास न कीजिये, अन्यथा जिस चक्र या स्थान पर आप अपना ध्यान जमायेंगे, उसी चक्र या स्थान पर पीड़ा या कोई रोग होजायेगा।

गृहस्थाश्रम

—१६—

विशुद्ध वातावरण

जब तक सामाजिक वातावरण का संशोधन नहीं होता, तब तक पारिवारिक वातावरण को शोधा नहीं जा सकता। सामाजिक और पारिवारिक वातावरण के संशोधन के बिना सन्तान को आर्य सन्तान कैसे बनाया जा सकता है? ज़रा इसपर प्रकाश डालिये। —दिनेशार्य

यह एक जटिल प्रश्न है। समाज के वातावरण का परिवार के वातावरण पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता और विशेषतः छोटे बालकों को समाज के प्रभाव से नितान्त अछूता रखना या रख सकना एक कष्टसाध्य समस्या है। परिवार और समाज दोनों परस्पर एक दूसरे से सर्वथा ग्रथित हैं।

परिवार-परिवार करके ही समाज बना है और परिवार-परिवार करके ही समाज बिगड़ा है। इसलिये परिवार-परिवार करके ही समाज सुधरेगा और परिवार-परिवार के संशोधन से ही समाज का संशोधन होगा। समाज की संशोधनशाला परिवार ही है।

पंचवर्षीय योजना में जो पारिवारिक आयोजन समंकित किये गये हैं, वे नितान्त मूर्खतापूर्ण और अपूर्ण हैं। वास्तव में वर्तमान सरकारें इस कार्य को कर भी नहीं सकती हैं। आजकल की सरकारें तो पारिवारिक आयोजन के लिये केवल व्यभिचारयुक्त सन्ततिनिरोध, रहन सहन के उच्च स्तर और बाहरी टीप टाप के अतिरिक्त और कुछ सोच ही नहीं सकती हैं। ये भ्रष्ट सरकारें सामाजिक आयोजनों के विषय में भी पाश्चात्यों के अन्धानुकरण के अतिरिक्त मौलिकता के साथ न कुछ सोच सकती हैं, न कुछ कर सकती हैं।

पारिवारिक संशोधन और सामाजिक परिष्कार के आयोजन की रूप रेखा कैसी होनी चाहिये, इसपर मैं प्रकाश डालना चाहूंगा और इसका उपक्रम मैं आगामी अंक से करूंगा। मैं चाहता हूं कि वह आयोजन अधिक से अधिक गृहस्थियों द्वारा पढ़ा जाये और कार्यान्वित किया जाये।

चरित्र और चरित

इस वर्ष सविता के अंक १ से अंक ६ तक चरित्र-निर्माण लेखमाला मैंने बड़े ध्यान से पढ़ी है। चरित्र के पांच ही अंग हैं—वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्व। पांचों पर ही प्रकाश डाल दिया गया है। मेरी एक जिज्ञासा का आप समाधान करने की कृपा करें। मैं यह जानना चाहता हूं कि चरित्र और चरित में क्या भेद है? —सूपायन महेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 079837

चरित्र का सम्बन्ध मनुष्य के विचार और व्यवहार तथा उसकी भावनाओं से है, जबकि चरित का सम्बन्ध है उसकी दक्षता और कृति से। चरित्र साधना की वस्तु है तो चरित क्षमता की। किस विचार और किस भावना से कोई कार्य किया जारहा है, इसका सम्बन्ध चरित्र से है। वह कार्य कैसी सफ़ाई, सुघड़ाई, चतुराई, क्षमता, योग्यता, कुशलता, मनोहरता, शोभनीयता, प्रियता और आकर्षणीयता के साथ किया जारहा है, इसका सम्बन्ध चरित से है। चरित्र अन्दर का सौन्दर्य है और चरित बाहर का। चरित्र अन्तःकला है, चरित बाह्य-कला है। चरित्र आत्मा की विभूति है, चरित दृष्टि की विभूति है। चरित्र मानव के मानस को रिझाता है, चरित मानव के नेत्र को। चरित्रे सत्यं शिवम्—चरित्र में सत्य और शिव है। चरिते सुन्दरम्—चरित में सुन्दर है, सौन्दर्य है।

जहां चरित्र और चरित दोनों मिल जाते हैं, वहीं है सत्यं शिवं सुन्दरम् !!

अध्यापक

[१०]

प्रेरणा-पुञ्ज

अध्यापकों से

आपका जीवन प्रेरणाओं का पुञ्ज होना चाहिये। जिस प्रकार सूर्य में से प्रकाश की किरणें प्रसारित होकर सब दिशा-विदिशाओं में प्रकाश पूर देती हैं, उसी प्रकार आपके जीवन से आपके विद्यार्थियों को सुप्रेरणायें प्राप्त होनी चाहियें। आपका व्यक्तित्व ऐसा प्रेरणाप्रद हो कि आप जब भी अपने विद्यार्थियों वा विद्यार्थिनियों के सम्मुख या मध्य में आयें, वे आपसे प्रेरणा व स्फुरण लेकर जायें।

यन्त्रवत् रूढ़गति जीवन भी कोई जीवन है। जीवन, सच्चा जीवन, अच्छा जीवन वही है, जो तरंगों से तरंगित हो और दूसरों के जीवनों में तरंगें तरंगित करनेवाला हो। वह सूर्य क्या, जिससे रश्मियों का प्रसरण न हो। वह सागर क्या, जिसका मानस तरंगों से तरंगित न हो। वह आचार्य क्या, जिसका जीवन प्रेरणाओं का सम्प्रेरक न हो।

विद्यार्थियों को आपके जीवन से सच्चरित्र और सदाचार की, पवित्रता और सत्य की, तप और त्याग की, श्रद्धा और संकल्प की, राष्ट्रनिर्माण और राष्ट्रोन्नति की, जीवन-निर्माण और आत्मोत्थान की, श्रम और साध की, मान और स्वाभिमान की, जनहित और लोककल्याण की, शिष्टता और शालीनता की, अध्यात्म और योग की, दक्षता और क्षमता की, तितिक्षा और सहनशीलता की, संयम और अनुशासन की, कर्मनिष्ठा और मर्यादापालन की, शक्ति और संज्ञान की, उदात्त समुदात्त और जीती जागती प्रेरणायें सदा सर्वदा मिलती रहें, आप ऐसे प्रेरणा-पुञ्ज बनिये।

—विदेह

विद्यार्थी

[१०]

श्रम और विश्राम

पुत्रियो और पुत्रो,

श्रम और विश्राम का विज्ञान एक बड़ा उपयोगी विज्ञान है। यदि तुम अपने विद्यार्थी-जीवन में उसका महत्त्व समझकर तदनुसार कार्य करने का अभ्यास करलोगे तो तुम्हारे जीवन का मार्ग सदा के लिये प्रशस्त हो जायेगा और तुम यावदायुष्य निरन्तर उत्कर्ष को प्राप्त होते रहोगे।

श्रम और विश्राम का परस्पर वह ही सम्बन्ध है, जो भूख और भोजन का है। विना भूख भोजन करना जितना हानिकर है, विना श्रम विश्राम करना उससे कहीं अधिक हानिकर है। यथा क्षुधा भोजन और यथा श्रम विश्राम—इस सुनहरी सिद्धान्त को तुम सदा के लिये याद करलो।

क्षुधा से अधिक भोजन करने से स्वास्थ्य की जितनी हानि होती है, उससे कहीं अधिक हानि श्रम से अधिक विश्राम करने से होती है। जितनी अधिक क्षुधा लगी हो, भोजन उतना ही स्वादिष्ठ लगता है। वैसे ही जितना अधिक श्रम किया जाता है, विश्राम भी उतना ही हितकर होता है। विना भूख के भोजन विष है। विना श्रम के विश्राम विष है।

चौबीस घण्टों में १८ घण्टे श्रम करो और ६ घण्टे विश्राम करो। नित्य १८ घण्टे उपयोगी काम करो और ६ घण्टे गहरी नींद सोकर विश्राम करो। अपने स्वयं के सब काम स्वयं करो। आप काज महा काज—इस कहावत को कभी न भूलो।

छोटे से छोटा समझे जानेवाले कार्य को बिना किसी झिझक के करो। अपना सब काम स्वयं करने से तुम्हारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन में आत्म-विश्वास और आत्म-निर्भरता की स्थापना होगी। अपने कामों के साथ दूसरों के कामों में भी हाथ बटाओ। हर समय कुछ न कुछ उपयोगी और अच्छा कार्य करते ही रहो। एक मिनट भी ठाली न बैठो।

श्रम और विश्राम का मर्म जानो।
जो सुख चाहते हो मेरा कहना मानो॥

यम

[रघुवीर कुमार]

यम एक महत्त्वपूर्ण शब्द है। इसके पूर्व नि, सं, सु उपसर्ग लगाने से क्रमशः नियम, संयम तथा सुयम शब्द बनते हैं।

तत्त्वतः 'यम' बहुत गहन गम्भीर अर्थों को निर्देशित करता है। इसके मुख्यतः चार अर्थ हैं और उन चारों अर्थों में साधक के जीवन की समग्र साधना संनिहित है। आत्म-संयम, सुव्यवस्था, अनुशासन और मर्यादा, यह वह चतुरङ्गिणी है, जिसके आश्रय से साधना-पथ का पथिक, जीवन-समर का सेनानी, विजय पर विजय प्राप्त करता चला जाता है।

यम में यन्त्रणा होती है। साधक जब यम का अभ्यास आरम्भ करता है, तो प्रथम उसे यन्त्रणा अनुभव होती है। किन्तु जब यम को नियम बना लिया जाता है, तो जीवन में एक सरसता आजाती है। तब यन्त्रणा प्रगति का रूप धारण करके साधक को सत्यं शिवं सुन्दरम् के शाश्वत पथ पर अग्रसर करने लगती है। यम यन्त्रणा न रहकर वरदान बन जाता है और उसे अनुशासन के नाम से संज्ञित किया जाता है। आत्म-अनुशासन का फलितार्थ है जीवन में सर्वाङ्गीण उन्नति।

अष्टाङ्ग-योग में यम और नियम योग के दो प्रथम अङ्ग हैं।

यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।
नियम—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान।

यम का सम्बन्ध सामाजिक जीवन से और नि-यम का सम्बन्ध व्यक्तिगत जीवन से है।

वैयक्तिक जीवन में शौच के मर्मार्थ को चरितार्थ करने-वाले के लिये हिंसा का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। शौच में अहिंसा निहित है।

सन्तोष की सिद्धि हो जाने पर असत्य की भूमिका ही नहीं बनती। सन्तोष आन्तरिक स्थिति का सूचक है। सन्तोष में सतत आत्म-तुष्टि है। आत्म-तुष्टि में सत्य निवास करता है।

तप की प्रतिष्ठा होजाने पर अस्तेय स्वयं सिद्ध होजाता है। जहां तप होगा, वहां चोरी का क्या काम। तप की अग्नि में चोरवृत्ति भस्म होजाती है।

स्वाध्याय द्वारा मनुष्य का हृदय और मस्तिष्क परिष्कृत होजाता है, भावनायें और विचार शुद्ध होजाते हैं। साधक निर्विकार बन जाता है। निर्विकारित ब्रह्मचर्य की साधिका है। ब्रह्मचर्य से साधक का जीवन मित परिमित होजाता है।

परिग्रह का प्रश्न जटिल है। मनुष्य परिग्रह क्यों करता है? अपने अहं के कारण, अपने स्वामित्व की भावना के कारण, विलासप्रियता के कारण, जिसका परिणाम होता है समाज में संग्रहवृत्ति, शोषण, हिंसा, द्वेष, अनाचार। ईश्वरप्रणिधान से अपरिग्रह की वृत्ति बनती है। ईश्वरप्रणिधान से मनुष्य 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' और 'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्' के रहस्य को समझ पाता है।

यम और नियम एक दूसरे से अभिन्नतया गुथे हुए हैं। यम और नियम के इस गुन्थन में योग के शेष छः अङ्ग माला के मनकों की तरह पिरोये हुए हैं।

विशेषण

१९-२० वर्ष की आयु से ही मैं 'स्वामी जी', 'पण्डित जी' और 'महाशय जी' कहलाने लगा था। जब रात्रि वेद-संस्कृत-कक्षायें चलायीं तो 'आचार्य जी' भी कहलाने लगा। पुलिस-विभाग के कार्यकाल में ही लोग मुझे 'ऋषि जी' भी कहने लगे थे। विरक्ताश्रम में प्रविष्ट होकर देश-विदेश में वेदप्रचार किया तो मेरे लिये यदा कदा 'महर्षि' और 'भगवान्' शब्दों का प्रयोग भी होने लगा।

इन विशेषणों के पक्ष विपक्ष का एक काफी बड़ा अध्याय है। इस विषय पर पर्याप्त संघर्ष हुआ है, जिसमें मैं सदा तटस्थ रहा हूं। इस अप्रिय प्रसंग को समाप्त करने के लिये मैंने सविता में यह सूचित किया कि मेरे नाम के पूर्व स्वामी, आचार्य, श्री, आदि कोई विशेषण न लगाया जाये और न ही मेरे नाम के परे 'जी' शब्द का प्रयोग किया जाये। सिर्फ़ 'विदेह' लिखा और बोला जाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सविता में इस सूचना को पढ़कर अनेकों पत्र केवल यह कहने के लिये ही आये कि "आपका यह आदेश एक ऐसा आदेश है, जिसका कोई भी सभ्य और शालीन व्यक्ति पालन नहीं कर सकता"। पत्रों में व्यक्त किये भावों के कतिपय नमूने नीचे दिये जाते हैं—

१) क्या कोई पुत्र अपने पिता को इस प्रकार पुकार सकता है ?

२) यह आपके क्षेत्र से बाहर की बात है कि आप हम लोगों से कहें कि आपको अमुक प्रकार सम्बोधित किया जाये।

३) चतुर्थाश्रमी संन्यासी को हम ऐसे कैसे लिख या बोल सकते हैं। संन्यासाश्रम का मान तो करना ही होगा।

४) योग्यता के अनुरूप सम्बोधन करना आर्य मर्यादा है।

५) प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार है कि वह आपके लिये अपनी श्रद्धा के अनुसार विशेषणों का प्रयोग करे।

उपर्युक्त तर्कों का मेरे पास कोई उत्तर नहीं है, फिर भी मैं सोचता हूं कि इस निर्मर्याद युग में किसी भी विशेषण का आज महत्त्व ही क्या है ? 'आर्य' नामधारी दस्युओं को मात कररहे हैं। संन्यासी 'स्वामी' शब्द को कितना लजा रहे हैं। 'महाशय' कहलानेवाले कैसे क्षुद्राशय बने हुए हैं। महा अनाचारी 'आचार्य' कहला रहे हैं। व्यभिचारी 'ब्रह्मचारी' जी बने फिरते हैं। विज्ञापन के बल पर कोई भी 'भगवान्, महर्षि, सर्वेश्वर' कहला सकता है। बिना पाण्डित्य के 'पण्डित' बने हुए हैं।

मेरा यह आशय कदापि नहीं कि जो इन विशेषणों के अधिकारी हैं, उन्हें इन सम्बोधनों से सम्बोधन करना अशिष्ट है। इस सम्बन्ध में मुझे अपनी स्थिति किस प्रकार निश्चित करनी चाहिये, मेरी अपनी समस्या केवल यह है।

मेरा विद्यानन्द नाम लगभग समाप्त होगया है। अधिकतर जनता मुझे 'विदेह जी' के नाम से ही जानती पहचानती और पुकारती है। जिन्हें इतने पर सन्तोष न हो, उनकी भावना का भी मुझे आदर करना चाहिये। वे अधिक से अधिक 'विदेह जी' के पूर्व संन्यासाश्रम-सूचक 'स्वामी' शब्द का प्रयोग करलें। जनता तथा पत्रकारों को मैं कोई आदेश देने की स्थिति में नहीं हूं। उनसे केवल निवेदन कर सकता हूं।

संसार के सब रिश्ते नाते और व्यवहार बर्ताव भावनानुसार होते हैं। जिसकी जैसी भावना होती है, वह प्रत्येक को उसी दृष्टि से देखता और वर्तता है। पर यह भी स्मरण रखना चाहिये कि विशेषणों का प्रयोग किसी के जीवन का वास्तविक दर्शन नहीं है। वास्तविक जीवन विशेषणातीत है। इसी लिये मुझे विशेषणों में कोई रुचि न होनी चाहिये। मुझे इस बात से सन्तोष हो सकता है कि 'स्वामी' एक आश्रमसूचक शब्द है, कोई उपाधि अथवा विशेषण नहीं। इसी विचार से मैं अपने लिये 'स्वामी' शब्द का प्रयोग स्वीकार करलूंगा। —विदेह

सविता-परिवार से

सविता का प्रत्येक पाठक वेदसंस्थान का दक्षिण हस्त है। वेदसंस्थान की योजना बहुत व्यापक है और उसकी साधना सर्वतः सर्वहितकारिणी है। सविता के ग्राहकों के सबल और सक्रिय सहयोग से वेदसंस्थान की साधना में तीव्र प्रगति हो सकती है।

आपसे यह छिपा नहीं है कि विदेहकृत वेदव्याख्याग्रन्थ अपूर्व रचनायें हैं, जिनका स्तवन समग्र कोटियों के उच्चतम विद्वान् बिना झिझक के मुक्त कण्ठ से कररहे हैं। इन ग्रन्थों के प्रथम और द्वितीय पुष्प प्रकाशित हो चुके हैं। आप इन पुष्पों की एक-एक प्रति मंगाकर अपने गृह में रखिये और अन्य अनेकों व्यक्तियों को इन पुष्पों का परिचय देकर उन्हें इन पुष्पों को मंगाने की सत्प्रेरणा कीजिये। ऐसा करके आप वेदसंस्थान की पुण्य साधना में हाथ बटाकर यश और पुण्य के भागी बनिये।

यह जानकर आपको प्रसन्नता न होगी कि "सविता" जैसा उपादेय मासिक पत्र ६० रुपये मासिक के घाटे पर चल रहा है। घाटापूर्ति के तीन विकल्प हैं—(१) मूल्य-वृद्धि, (२) मुखपृष्ठ हटाना, (३) ग्राहक बढ़ाना। प्रथम दो विकल्प संस्थान को रुचिकर नहीं हैं। ग्राहक-संख्या बढ़ाकर घाटापूर्ति करना ही सर्वथा वाञ्छनीय है। यह तो आप जानते ही हैं कि कोई भी प्रकाशन जितना कम छपता है, उसका मूल्य उतना ही अधिक पड़ता है। प्रकाशन जितनी अधिक संख्या में छपेगा, उतना ही वह सस्ता बैठेगा। यदि सविता का प्रत्येक ग्राहक प्रति मास सविता का कम से कम एक नवीन ग्राहक बनाने का नियम करले तो यह क़दम सविता की घाटापूर्ति में बहुत सहायक होगा। साथ ही वेदप्रचार बढ़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदव्याख्याग्रन्थ—द्वितीय पुष्प
गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान
महा मृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान

व्याकरणाचार्य परमपूज्य स्वामी वासुदेवानन्द जी महाराज, राजपुर [देहरा दून] से लिखते हैं—

तीनों ग्रन्थ भली भांति पढ़ने पर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ और मैंने यह अनुभव किया कि देहाध्यास के कुचक्र से निकले महा पुरुष ही ऐसी अलौकिक रचना कर सकते हैं। वेदमन्त्रों के दुरूह भावों को व्यक्त करना समाहित महा पुरुषों की मनीषा का ही कार्य है। आज के मानवों को ऐसे खोजपूर्ण एवं अनुभव की कसौटी पर परखे हुए सरल सरस भावपूर्ण भाषा के ग्रन्थ ही सन्मार्ग पर चला सकते हैं। मञ्चों के प्रचार की अपेक्षा ग्रन्थ द्वारा प्रचार स्थायी होता है। वर्तमान समय के मानवों के मस्तिष्क दुर्बल होने के कारण कठिन भाषा में लिखे गहन विचारों को ग्रहण करने में अशक्य से होगये हैं। इस युग के मानव बड़े बड़े ग्रन्थों को भी नहीं पढ़ना चाहते हैं। अतः श्री स्वामी विद्यानन्द विदेह-विरचित लघुकाय ये ग्रन्थरत्न अवश्य ही लोकहित साधक होंगे, ऐसा मेरा निश्चय है। इन अपूर्व ग्रन्थों के रचयिता आचार्य विदेह का हार्दिक धन्यवाद करता हुआ सर्वान्तर्यामी प्रभु से अभ्यर्थना करता हूं कि परोपकार-निरत आचार्य विदेह को सुस्वस्थ और चिरायु बनाये रखें, जिससे सर्वहितसाधक ऐसे ग्रन्थों की रचना होती रहे। हमारे देश के उत्तम भाग्य हैं, जो समय-समय पर महापुरुषों का आविर्भाव होता रहता है। वैयाकरण होने पर भी मैं शब्द-दारिद्र्य का अनुभव कररहा हूं, क्योंकि मुझे शब्द नहीं मिल रहे, जिनसे मैं ग्रन्थों की सराहना करता हुआ लेखक की गुण-गरिमा को व्यक्त कर सकूं।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त वैदिक वाङ्मय के प्रकाण्ड विद्वान् पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, एम. ए., प्रयाग से लिखते हैं—

वेदव्याख्याग्रन्थ का द्वितीय पुष्प पढ़कर जी को बड़ा सन्तोष हुआ। यजुर्वेद के द्वितीय अध्याय की ऐसी मनोरञ्जक व्याख्या पहले देखने में नहीं आई। "विदेह" की सूझ बूझ निराली और अद्भुत है और उसकी पुष्टि में वे जो व्याख्या करते हैं वह बड़ी हृदय ग्राहक होती है। जो पढ़ेगा उसे वेदों पर श्रद्धा होगी।

'गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान' और 'महा मृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान' भी रोचक और शिक्षाप्रद हैं। अनुष्ठान शब्द लोक-प्रसिद्ध भाषा में भ्रान्तियों से आवेष्टित होगया है। परन्तु इन पुस्तकों में जो व्याख्या की गयी है, वह इस दोष का निवारण करती है।

उपन्यास-सम्राट् श्री वृन्दावनलाल वर्मा, झांसी से लिखते हैं—

आपका कार्य समाज के लिये बहुत हितकारी है। जितनी भी सराहना की जाये, थोड़ी है। उत्तरोत्तर सफलता के लिये मेरी हार्दिक शुभ कामनायें।

पं० गंगाप्रसाद जी, एम. ए., एम. आर. ए. एस., भूतपूर्व प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, जयपुर से लिखते हैं—

दूसरा पुष्प वैसा ही उत्तम है, जैसा कि प्रथम पुष्प था। भाषा सरल व सुगम, व्याख्या सुस्पष्ट।

गायत्री मन्त्र तथा महामृत्युञ्जय मन्त्र के अनुष्ठान की विधियां एक सी उत्तम हैं।

वेदों के महान् विद्वान् डा० वासुदेवशरण अग्रवाल काशी से लिखते हैं—

गायत्री मन्त्र और महामृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान पुस्तिकायें देखकर चित्त प्रसन्न हुआ। इनकी सरल बुद्धि-गम्य शैली में वैदिक दृष्टिकोण की सर्वथा रक्षा हुई है और ये अतिशय प्रेरणात्मक ढंग से लिखी हुई हैं।

वेदभाष्य का दूसरा अंक प्रथमांक के समान ही विदेह जी की दीर्घकालीन वेदसाधना का परिचायक है। यह महती योजना है। भगवान् इसकी पूर्ति में आपके सहायक हों।

श्री रामचन्द्र प्रसाद, संचालक, आर्य साहित्य-सदन, अमरपुर, लिखते हैं—

वेदव्याख्याग्रन्थ का द्वितीय पुष्प प्राप्त हुआ। पूज्य 'विदेह' जी के द्वारा स्वामी दयानन्द का अधूरा काम पूरा हो, यह जगन्नियन्ता से प्रार्थना है। साथ ही 'विदेह' जी चिरायु हों, ताकि वे जनताजनार्दन में प्रेम और सद्भावना का मन्त्र भरते हुए सबको धर्म की ओर अग्रसर करें और विश्व में आर्यत्व की स्थापना हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ११ : अंक १ फ़रवरी १९५८ : माघ २०१४

स वि ता

[वेद-संस्थान का मासिक पत्र]

सम्पादक :
विश्वदेव शर्मा

वेदोदय

वेद की बारीकियां छांटने, वेद की दुरूहता की रट लगाने, वेद को लोहे के चने बताने, वेदाध्ययन पर कठोर शर्तें लगाने, अनेक जकड़नों से वेद को जकड़ने, वेदार्थ को अनेकार्थ से उलझाने, पाश्चात्य विद्वानों को खरी खोटी सुनाने और वेद की जय बोलने से वेदोदय नहीं होगा, नहीं होगा, कदापि नहीं होगा। इन बातों से वेद का विकास नहीं, संकोच होगा।

वेदार्थ और वेदव्याख्या को अतिशय सरल, सरस और सुबोध बनाकर वेद को देशान्तरों में जन-जन तक पहुंचाने से वेद की विश्वव्याप्ति होगी। वेद की शिक्षाओं को आचरण में लाने और वेदाचार को विश्व में स्थापन करने से वेदोदय होगा।

वेदांग, भाषाविज्ञान, पदार्थविद्या और विश्व की प्रत्येक भाषा और प्रत्येक वस्तु वेदार्थ और वेदव्याख्या में सहायक है, किन्तु वेदार्थ और वेदव्याख्या का अचूक और सर्वोपरि साधन है पवित्र जीवन, निर्विकार चिन्तन और शान्त अन्तःस्थिति। —विदेह

मूल्य :
देश में— वार्षिक ३) रु०
एक प्रति २५ नये पैसे
विदेश में—वार्षिक ६ शि०
एक प्रति ६ पेंस

पत्र-व्यवहार का पता :
व्यवस्थापक, वेद-संस्थान, अजमेर

वेद-संस्थान के लिये पं० विश्वदेव शर्मा द्वारा, आदित्य मुद्रणालय, बाबू मोहल्ला, अजमेर में, मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सविता

लेख-क्रम

वेद-शाखा	विदेह	३
सार्वभौम जीवन	,,	४
विरह में स्वागत	,,	६
कर्म-वीर	,,	७
अपने आप में अग्न्याधान	,,	८
गीता-योग [३४]	,,	८
साधना [३८]	,,	९
सुराज्य संघ	,,	१०
शिव-संकल्प	विष्णुदयाल	१३
ग्यारहवां वर्ष	चण्डक	१४
Real Wealth	Hajela	15
Serving the parents	Kishori Lal	15

मन्त्रानुक्रम

एते शमीभिः (ऋ० १०.२८.१२)	७
क्वेयथ क्वेदसि (ऋ० ८.१.७)	६
भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव (य० ३.५)	४
मयि गृह्णाम्यग्रे (१३.१)	८
यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च (य० २०.२५)	१०
यस्तित्याज (ऋ० १०.७१.६)	३

संस्थान-प्रकाशन

विदेह-विरचित

वेदव्याख्याग्रन्थ—प्रथम पुष्प	२.००
वेदव्याख्याग्रन्थ—द्वितीय पुष्प	१.५०
गायत्री—[द्वितीय संस्करण]	१.५०
गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान	०.२५
महामृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान	०.२५
सार्वभौम आर्य साम्राज्य	०.५०
वैदिक बालशिक्षा—प्रथम भाग [तृतीय संस्करण]	०.३७
वैदिक बालशिक्षा—द्वितीय भाग [द्वितीय संस्करण]	०.३७
वैदिक योग-पद्धति—[द्वितीय संस्करण]	०.३७
सन्ध्या-योग	०.२५
स्वस्तियाग	०.७५
यज्ञोपवीत-रहस्य—[चतुर्थ संस्करण]	०.०६
संस्कृत-शिक्षा—प्रथम भाग	०.१९
संस्कृत-शिक्षा—द्वितीय भाग	०.३७
सत्यनारायण की कथा—[द्वितीय संस्करण]	०.३७
सत्संग-गीतावली	०.३७
दिव्य-भावना	०.०६

सविता की जिल्दें,

वर्ष ४,५,६,८,९,१०. प्रति जिल्द ३.२५

—डाकख़र्च पृथक्

व्यवस्थापक, वेदसंस्थान, अजमेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ

[वेद-संस्थान अजमेर का मासिक पत्र]

वर्ष ११ || अजमेर, फ़रवरी १९५८, (तप:) माघ २०१४ || अङ्क १ पूर्णाङ्क १२१

वेद-सखा

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥

(ऋ० १०.७१.६)

य: तित्याज सचि-विदं सखायं, न तस्य वाचि अपि भाग: अस्ति ।
यत् ईं शृणोति अलकं शृणोति, नहि प्र-वेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥

(य:) जिसने (सचि-विदं) सत्य-विद वेदरूपी (सखायं) सखा को (तित्याज) त्याग दिया, (तस्य) उसकी (वाचि अपि) वाणी में भी (भाग: न अस्ति) सार नहीं होता है।

वेद के अतिरिक्त वह (यत् ईं) जो कुछ (शृणोति) सुनता है, सब (अलकं) व्यर्थ (शृणोति) सुनता है, क्योंकि वेद से अन्यत्र वह (सुकृतस्य पन्थां) सुकृत के मार्ग को (नहि प्र-वेद) नहीं जान पाता है ।

सत्यज्ञानयुत वेदसखा को जिसने त्यागा,
नहीं सार उसकी वाणी में कुछ रहता है ।
जो कुछ सुनता है, सुनता है व्यर्थ सभी वह,
पन्थ नहीं सुकृति का कहीं जान पाता है ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्वभौम जीवन

भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ (य० ३.५)

भूः भुवः स्वः द्यौः इव भूम्ना पृथिवी इव वरिम्णा । तस्याः ते पृथिवि देव-यजनि पृष्ठे अग्निं अन्न-अदं अन्न-अद्याय आ-दधे ॥

(भूः भुवः स्वः) सत् चित् आनन्द में (द्यौः इव भूम्ना) द्यौ के समान सम्पदा से युक्त [होकर], (पृथिवी इव वरिम्णा) पृथिवी के समान वरणीयता से युक्त [होकर], (देवयजनि पृथिवि) ! (तस्याः ते पृष्ठे) उस तेरी पृष्ठ पर (अन्न-अदं अग्निं) अन्न-अद अग्नि को (अन्न-अद्याय) अन्न-अदनार्थ (आ-दधे) आधानता हूं।

भूः भुवः और स्वः—ये तीन वैदिक व्याहृतियां हैं। ये तीन व्याहृतियां ही वैदिक व्याहृतियां हैं। ये तीन व्याहृतियां चतुष्काण्ड वेद का सार हैं। व्याहृति=वि+आ हृति, विविधतया+पूर्ण+हरण, विविधतया+पूर्ण+विलोडन, विशेषतया+सम्पूर्णतया+मन्थन। व्याहरण, विलोडन अथवा मन्थन के द्वारा जिसकी प्राप्ति होती है, उसे व्याहृति कहते हैं।

दही या दूध में डोरी से रई को निरन्तर घुमाते हुए जब दही या दूध का विलोडन किया जाता है, तब उस दही या दूध में से जो लौनी या मक्खन निकलता है, वह दही या दूध की व्याहृति है। वैसे ही 'भूः भुवः स्वः' चतुष्काण्ड वेद की व्याहृति हैं। ये व्याहृतियां वेद का मक्खन हैं, वेद का घृत हैं, वेद का प्रतिपाद्य हैं।

भू सत्तायाम्। भू धातु का अर्थ है सत्ता, सत्। सत्ता मात्र भूः है, अखिल सत्ता भूः है और अखिल सत्ता जिससे है और जिसमें है, वह भी भूः है। भूरिति भुवनपतिः, भूः नाम भुवनपति का है, ब्रह्माण्डपति का है। ब्रह्माण्ड भूः है। ब्रह्माण्ड में ओत प्रोत ब्रह्म भूः है। ब्रह्मसहित ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्डसहित ब्रह्म—दोनों की अपृथक्य एकीभाव सत्ता का नाम भूः है। ब्रह्म और भूः दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। ब्रह्माण्ड ब्रह्म का अण्ड है। ब्रह्माण्ड की अपेक्षा से परमात्मा की ब्रह्म संज्ञा है और ब्रह्म की अपेक्षा से सृष्टि का नाम ब्रह्माण्ड है। ब्रह्म से ब्रह्माण्ड कभी पृथक् नहीं होता है। ब्रह्माण्ड से ब्रह्म कभी पृथक् नहीं होता है। ब्रह्माण्ड के परमाणु-परमाणु में ब्रह्म है और ब्रह्माण्ड का परमाणु-परमाणु ब्रह्म में है। ब्रह्म और ब्रह्माण्ड की इस अभेद्य अपृथक्य एकीभूत अवस्था के द्योतन के लिये ही कहा गया था, 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म—निश्चय से यह सब ब्रह्म है अर्थात् ब्रह्ममय है'।

भूरिति सत्। भूः सत् है। ब्रह्म सत् है। प्रकृति सत् है। प्रकर्ता सत् है। प्रकृति की सम्पूर्ण सत्ता प्रकर्ता की सत्ता में सन्निहित है। प्रकर्ता की सत्ता प्रकृति की सत्ता में ओत-प्रोत है। उभय सत्ताओं की इस अभिन्न अपृथक्य एकीभूत सत्ता का नाम ही भूः है। स्थूल भाव से स्थूल शब्द में भूः का अर्थ सर्वाधार और सर्वव्यापक किया जा सकता है।

भुवो अवकल्पने। भुवः का अर्थ है अवकल्पन, अवचिन्तन, अवचेतना, चित्। भूः [ब्रह्म] चेतन है। भूः की सत्ता चेतन सत्ता है, ज्ञानमय सत्ता है। भूः [ब्रह्म] चेतन है, ज्ञानस्वरूप है, चित् है। उस चेतन सत्ता की चेतना से यह सब चेतनामय है। प्रकृति के कण-कण में, सृष्टि के परमाणु-परमाणु में, चेतन ब्रह्म की चेतना संव्याप्त है। यह सब चिन्मय भुवः की चेतना से सजीव संजीव है। जब परमाणु-परमाणु में चिन्मय की चेतना संव्याप्त है, तो इस अखिल सृष्टि का परमाणु-परमाणु चितिमय है, चित् की चेतना से चित् है। जड़ शब्द के तथाकथित अर्थ में जड़ और जड़ता नाम की कोई वस्तु नहीं है। भूः भुवः है। भूः चित् है। स्थूल भाव से स्थूल शब्द में भुवः का अर्थ है चेतन, सर्वज्ञ, ज्ञानस्वरूप, सर्वचेता।

अन्तो वै स्वः। अन्तः का नाम ही स्वः है। स्वः अन्तः का विषय है, बाहर का नहीं। स्वरिति आत्म नाम, स्वरिति ब्रह्म नाम, स्वरिति आनन्द नाम। स्वः का अर्थ है स्वयं, स्व-रूप, आत्म-आनन्द, आनन्द। भूः [ब्रह्म] न केवल सत् चित् है, स्वः [आनन्द] भी है। चित् ही स्वः हो सकता है। चेतना में ही आत्मानन्द है। ज्ञान में ही आनन्द का निवास है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा भूः [सत्], भुवः [चित्] स्वः [आनन्द] है, सत् चित् आनन्द है, सच्चिदानन्द है।

प्रकृति भी भूः है, सत् है, सत्तासत्त है, सत्ता से युक्त है। प्रकृति की सत्ता है, किन्तु उसमें अपनी चेतना नहीं है। उसमें जो चेतना है, भुवः की है, सर्वव्यापक चित्स्वरूप ब्रह्म की है। प्रकृति में उसका अपना आनन्द भी नहीं है। उसमें जो आनन्द है, वह सर्वव्यापक चेतन आनन्दस्वरूप ब्रह्म का है।

आत्मा भी भूः है, सत् है, सत्तासत्त है, सत्ता से युक्त है। आत्मा की सत्ता है। आत्मा चित् भी है। वह स्व-रूप से चित् है। उसमें उसकी अपनी चेतना है, किन्तु उसमें उसका अपना आनन्द नहीं है। आत्मा में जो चेतना है, वह आत्म-चेतना है आत्मा की निज चेतना है। आत्म-चेतना सीमित और सान्त है। ब्रह्म-चेतना अनन्त और असीम है। ससीम और सान्त चेतना में शान्ति और सन्तोष होता है, आनन्द नहीं। आनन्द तो ब्रह्म की असीम और अनन्त चेतना में है। आत्म-साधक जब अपनी इन्द्रिय-समिधाओं से अपने आत्मा के प्रति सुविचार, संज्ञान, शिवसंकल्पादि की हवियां और प्रबोधसाधनों की आहुतियां पहुंचाता है, तब उसका आत्मा अपने सुप्रदीप्त, संशुद्ध, जातवेद स्वरूप में संस्थित होकर ब्रह्म में समाहित होता है और ब्रह्म की अनन्त और असीम चेतना में प्रविष्ट होकर ब्रह्म से आनन्द प्राप्त करता है। अपनी उस ब्राह्मी स्थिति में आत्मा अपने आपको भूर्भुवःस्वः अथवा सच्चिदानन्द अनुभव करता है।

भूः [सत्-प्रकृति] का अंश होने के कारण शरीर भूः है। चेतन होने से आत्मा चित् है। जीवन सत् चित् [सच्चित्] है, भूः और भुवः का समुच्चय है। आत्म-साधना के द्वारा साधक ने ब्रह्म का आनन्द प्राप्त कर लिया है। वह सच्चिदानन्द बन गया है। अब वह ब्राह्मी सम्पदा से सम्पन्न होगया है। ब्राह्मी शक्ति से युक्त होकर अब वह शक्तिमान् बन गया है। ब्रह्मानन्द, ब्रह्मसम्पदा और ब्रह्मबल से युक्त होकर साधक कहता है—मैं भूर्भुवःस्वः होगया हूं, मैं सच्चिदानन्द बन गया हूं, मैंने ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करली है।

"आत्म-साधना के द्वारा सच्चिदानन्द बनकर मैं (द्यौः इव भूम्ना) द्यौ के समान सम्पदा से युक्त होगया हूं।" द्यौ की सम्पदा दिव्य सम्पदा है। द्यौ में दिव्य नक्षत्र जगमगाते हैं। "मेरे जीवन में दिव्य-गुण-रूपी नक्षत्र जगमगा रहे हैं। मेरा जीवन दिव्यताओं से द्योतित होरहा है। मेरा चिन्तन, मनन, दर्शन, श्रवण, वचन, वदन, गमन, कर्तृत्व—सब कुछ दिव्य होगया है। मैं दिव्य सम्पत्ति से, दैवी सम्पदा से, सुसम्पन्न होगया हूं। मैं सर्वस्व द्यौ बन गया हूं, दिव्य होगया हूं।"

"आत्म-साधना से सच्चिदानन्द बनकर मैं (पृथिवी इव वरिम्णा) पृथिवी के समान वरणीयता से युक्त होगया हूं।" पृथिवी अपने भीतर और अपने ऊपर अतुल भारों और अखिल प्राणियों को सहारती है, सबको सबका अन्न [भक्ष्य पेय] प्रदान करती है, सबका पालन पोषण करती है, सदा सर्वदा निरन्तर गतिरत कर्मरत रहती हुई सबको अपने पालने में झुलाती है। पृथिवी सबकी, प्राणी मात्र की, भूमि है। पृथिवी सार्वभौम है। पृथिवी में सर्वमयता है, संकोच नहीं है। यही पृथिवी की वरणीयता है। "मैं पृथिवि की वरणीयता से युक्त होगया हूं। मैं पृथिवी के समान सार्वभौम बन गया हूं। मेरा संकोच सर्वथा विलीन होगया है। मेरा 'मैं,' मेरा 'अहम्,' अब सबमें, सर्व में, व्याप गया है। मेरा ममत्व अब केवल मुझमें, मेरे परिवार में, किसी एक समाज या संस्था में, किसी प्रदेश या राष्ट्र-विशेष में, किसी विशिष्ट धर्म या सम्प्रदाय में, सीमित संकुचित नहीं है। अब तो—

मैं सबका हूँ सब मेरे हैं, सबकी सेवा मेरा धर्म।
इस जगती के सब जीवों का, हितसम्पादन मेरा कर्म॥"

अद भक्षणे। अद नाम भक्षण करने या खाने का है। जो कुछ खाया पिया जाता है, सब प्राणी जो कुछ खाते पीते हैं, वह सब अन्न है। सर्वं खल्विदं अन्नम्—यह सब अन्न है। समस्त भूमि भक्ष्य है। सकल पृथिवी अन्नमय है। पृथिवी में और पृथिवी पर जो कुछ है, जितने पदार्थ हैं, सब किसी न किसी का भोजन हैं। यह सारा संसार अदन [भक्षण] की बाड़ी है, भक्ष्य-वाटिका है। जन्मता प्राणी अदन [भक्षण] करता हुआ ही आता है और अन्त तक अदन करता हुआ ही जीता है।

मानव और मानवेतर प्रत्येक प्राणी शरीर और आत्मा का समुच्चय है। अन्न के दो प्रकार हैं—(१) शारीरिक अन्न, (२) आत्मिक अन्न। अन्नाद [अन्न-भक्षक] अग्नियां भी दो हैं—(१) शारीरिक अग्नि, जिसे जाठर कहते हैं, (२) आत्माग्नि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जठराग्नि के अन्न असंख्य हैं। विरूपं अन्नम्—जाठर के अन्न विविध प्रकार के हैं। शारीरिक या जठराग्नि के अन्नों से प्राप्त होता है सुख [सु=सुष्ठु, सुन्दर, स्वस्थ। ख=इन्द्रिय], शरीर और शरीरेन्द्रियों की स्वस्थता, सुष्ठुता, सुन्दरता। आत्मिक अन्न है केवल ब्रह्म, जिससे प्राप्त होता है आनन्द, आत्मानन्द, ब्रह्मानन्द।

पृथिवी को मन्त्र में देवयजनी कहा गया है। देवयजनी, दिव्य-यजनी, दिव्य यज्ञ करने वाली। यज्ञ के तीन पाद हैं—सत्कार, संगतिकरण और दान। पृथिवी यज्ञ के तीनों पादों से युक्त है। पृथिवी किसी का भी तिरस्कार नहीं करती है। वह तो सदा सर्वदा प्राणी मात्र का सत्कार करती है। उत्कृष्ट निकृष्ट समस्त प्राणियों को वह सप्रेम ससत्कार अपनी उपस्थ (गोद) में बिठाये रहती है। वह सब प्राणियों को अपने गर्भ तथा अपनी गोद में संगृहीत किये हुए है। वह सब प्राणियों को स्व सर्वस्व निरन्तर दान करती रहती है। निस्सन्देह पृथिवी देवयजनी है। वास्तव में तो पृथिवी ही सच्ची देवयजनी है और पृथिवी ही सच्चा देवयजन कर रही है।

साधक के अन्तःकरण में सत्प्रेरणा होती है, उद्‌बोध होता है, "देवयजनी पृथिवी की पृष्ठ पर स्थित होकर मैंने आत्मसाधना द्वारा ब्राह्मी स्थिति प्राप्त की है, मैं दैवी सम्पदा से सम्पन्न हुआ हूं, मैंने वरणीयता सम्पादन की है। मुझे चाहिये मैं इस देवयजनी पृथिवी माता की पृष्ठ पर देवयजन करूं।" और उसी क्षण उसे विचार आता है कि पृथिवी माता की सुसेवा से बढ़कर अन्य कोई देवयजन हो ही क्या सकता है और पृथिवी माता की सुसेवा इससे बढ़कर और क्या हो सकती है कि मैं पृथिवी माता को अन्न-सम्पदा से सम्पन्न करके उसकी सम्पूर्ण प्रजा के [जाठर व आत्मिक] अग्नि को चेताऊं और उन्हें उभयान्न से तृप्त सन्तृप्त करदूं। भौतिकान्न से, भौतिक सम्पदा से, उनकी शारीरिक समुन्नति करूं और आत्मिकान्न से, आध्यात्मिक सम्पदा से, उनका आत्मोत्थान और आत्मकल्याण करूं। मन्त्र के उत्तरांश में इसी भावना का व्यक्तीकरण करता हुआ आत्म-साधक कह उठा है—देवयजनि पृथिवि! (तस्याः ते पृष्ठे) उस तेरी पृष्ठ पर, तेरी प्रजा के (अन्न-अद्याय) भौतिक और आत्मिक अन्न-भक्षणार्थ (अन्न-अदं अग्निं) अन्न-भक्षक अग्नि को (आ-दधे) आधान करता हूं, प्रस्थापन करता हूं।

अन्न-भक्षण के लिये अग्नि का आधान होना चाहिये, जठराग्नि-प्रज्वलित होना चाहिये, क्षुधा तीव्र होनी चाहिये। अग्नि का प्रयोग तीव्रेच्छा, उत्कट कामना, के अर्थ में हुआ है। प्रथम प्रचार द्वारा प्रजा में शारीरिक और आत्मिक उन्नति की ज्वाला प्रज्वलित की जाती है। ज्वाला के प्रज्वलित हो जाने पर साधनोपायरूपी यज्ञान्न स्वयमेव उपलब्ध होजाता है। "देवयजनि पृथिवि! तेरी पृष्ठ पर साधना करके जिस अन्न [सुखानन्द] को मैंने प्राप्त किया है, उस अन्न के सेवन की अग्नि [कामना] को मैं तेरी पृष्ठ पर, समस्त भूमि पर, व्याप दूं। उस सुखानन्दान्न का रसास्वादन में तेरी उपस्थ में स्थित सारी प्रजा को करादूं। देशी परदेशी प्रजा में से कोई भी उससे वंचित न रहे।"

मैं सच्चिदानन्द-युत होकर,
द्यौ इव दैवी सम्पत्ति से,
पृथिवी इव वरणीय सुधन से,
होकर युक्त सुयुक्त।
करता हूं आधान पृष्ठ पर,
तेरी पृथिवि देवयजनि मैं,
अग्निमन्नादमन्नाद्याय॥

विरह में स्वागत

क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः।
अलर्षि युध्म खजकृत्पुरंदर प्र गायत्रा अगासिषुः॥ (ऋ० ८.१.७)

क्व इयथ क्व इत् असि पुरु-त्रा चित् हि ते मनः। अलर्षि युध्म खज-कृत् पुरं-दर प्र गायत्राः अगासिषुः॥

(युध्म) निष्ठुर! (खज-कृत्) जीवन की भूला में भुलानेवाले! (पुरंदर) मेरी हस्ती को मिटानेवाले! तू (क्व इयथ) कहां चला गया?

तू (क्व इत् असि) कहीं भी है, किन्तु, (पुरु-त्रा) ऐ हरजाई! मेरा (मनः) मन (ते चित् हि) तेरे लिये ही तड़प रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे तेरे आगमन के सन्देश मिल रहे हैं। तू (अर्लाष) आरहा है। मेरे (गायत्राः) अन्तःगायकों ने (प्र अगासिषुः) स्वागत-गान गाने प्रारम्भ कर दिये हैं।

निष्ठुर !
जीवन की झूला में,
मुझे झुलानेवाले !
बना-बना कर मेरी हस्ती,
स्वयं मिटानेवाले !
चला गया तू कहां,
हरण करके मेरा मन।

ऐ हरजाई !
जहां कहीं भी है तू,
स्मरण रहे तुझे यह,
तड़प रहा है मेरा मन,
तेरे ही लिये।

मुझे मिल रहे हैं,
सन्देश तेरे आने के,
गायक गाने लगे,
तेरे स्वागत के गाने॥

कर्म-वीर

एते शमीभिः सुशमी अभूवन् ये हिन्विरे तन्वः सोम उक्थैः।
नृवद्वदन्नुप नो माहि वाजान्दिवि श्रवो दधिषे नाम वीरः॥ (ऋ० १०.२८.१२)

एते शमीभिः सु-शमी अभूवन्,
ये हिन्विरे तन्वः सोम उक्थैः।
नृ-वत् वदन् उप नः माहि वाजान्,
दिवि श्रवः दधिषे नाम वीरः॥

१) (सोमे) संसार में (ये) जो (तन्वः) जीवनों को (उक्थैः) आत्म-वचनों से (हिन्विरे) बढ़ाया करते हैं, (एते) ये (शमीभिः) कर्मसाधनाओं से (सु-शमी) सुकर्मसाधक (अभूवन्) हुए थे।

२) (वीरः) वीर तू (नृ-वत् वदन्) नर-वत् बोलता हुआ (नः वाजान्) हमारे वाजों को (उप माहि) तोल और (दिवि) दिव में (श्रवः नाम) यश और नमनीयता (दधिषे) स्थापन कर।

अपने वचनों का, आत्म-वचनों का, अपने जीवन पर जो और जितना प्रभाव पड़ता है, दूसरों के वचनों का अपने जीवन पर वह और उतना प्रभाव नहीं पड़ता है। इस संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस (सोमे) संसार में (ये) जो लोग अपने (तन्वः) जीवनों को (उक्थैः) आत्मवचनों से, आत्मशंसनों से (हिन्विरे) प्रेरित किया करते थे, ऊंचा उठाया करते थे, (एते) ये ही लोग, ऐसे ही लोग (शमीभिः) शान्त कर्मसाधनाओं के द्वारा (सु-शमी अभूवन्) सुकर्मसाधक सिद्ध हुए थे।

जिनके अपने आत्मवचनों से सतत सन्तत निरन्तर उमंग, उत्साह और आत्मविश्वास की धारा बहा करती थी, उन्होंने ही संसार में अपनी कर्मसाधनाओं से समुदात्त और सुमहान् कर्मसाधनाओं को संसिद्ध करके दिखाया था; वे ही सुकर्मसाधक सिद्ध हुए थे और उन्होंने ही जगती में अपने और अपने राष्ट्र के लिये अमिट यश और अमित मान सम्पादन किया था।

तू भी (वीरः) वीर सुकर्मसाधक बनकर उठ और (नृ-वत् वदन्) नर-नाहर के समान बोलता हुआ, नरोचित आत्म-वचन उच्चारता हुआ (नः) हमारे (वाजान्) वीर्यों, बलों, पराक्रमों को (उप माहि) तोल और हमारा सुनेतृत्व करके (दिवि) बृहत् आकाश में, सुविशाल संसार में, हमारा (श्रवः) यश और हसारे प्रति संसार की (नाम) नमनीयता, श्रद्धा (दधिषे) स्थापन कर।

यह युग की पुकार है। क्या कोई नर-नाहर है, जो इस पुकार को सुनेगा ?

हुए थे ये तभी सुकर्मा सु-कर्मों से,
जिन्होंने जगती में अपने ही वचनों से,
किया था उत्थान स्वयं अपने जीवन का।
बनकर वीर अरे उठ तोल हमारा पौरुष,
यश और नाम हमारा करदे इस जगती में॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने आप में अग्न्याधान

मयि गृह्णाम्यग्रे अग्निं रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ।
मामु देवताः सचन्ताम् ॥ (य० १३.१)

मयि गृह्णामि अग्रे अग्निं रायःपोषाय सु-प्रजाःत्वाय सु-वीर्याय । मां उ देवताः सचन्ताम् ॥

शमा [मोमबत्ती] प्रथम अपने आप में अग्नि का आधान करती है, प्रथम अपने आप में आग लगाकर स्वयं जलती है, तदनन्तर रौनक़े महफ़िल [सदन की शोभा] बनकर महफ़िल को रोशन करती है।

दीप प्रथम अपने शिर में अग्नि का आधान करके स्वयं जलता है, तदुपरान्त ही वह प्राणियों को ठोकरों से बचाता है।

मैं इस राज़ को जानता हूं। मैं इस रहस्य को समझता हूं। राष्ट्र और विश्व के (रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय) ऐश्वर्य की वृद्धि, सुप्रजात्व और सुवीर्य के लिये, मैं (अग्रे) प्रथम (मयि) मुझमें, अपने आप में (अग्निं) अग्नि को (गृह्णामि) ग्रहण-स्थापन करता हूं। अपने आप में अग्नि जलाने पर (उ) ही (मां) मुझे (देवताः) देवता (सचन्तां) संगत करें।

इस प्रजातन्त्र में सुप्रजात्व के जगाने के लिये, प्रजा के सुखैश्वर्य की वृद्धि के लिये और प्रजा में सुवीर्य संबल की स्थापना के लिये, मैं आज अपने आप में आग जलाकर ज्वाला धधकाता हूं। मेरे जीवन से वह शौला उठेगा, मेरे जीवन से वह ज्वाला भड़केगी, कि ३७ करोड़ राष्ट्र-देवता और तीन अरब विश्व-देवता मुझे संगत करेंगे, मुझे अपनायेंगे, मेरा साथ देंगे, मेरे साथ होंगे।

प्रजातन्त्र में सुप्रजात्व के, सुखैश्वर्य के,
और सुवीर्य के सम्पादन के लिये आज मैं,
प्रथम आग लगाता हूं लो अपने इस प्यारे जीवन में,
मुझे देवता अपनायेंगे, देंगे मेरा साथ ॥

गीता—योग

—३४—

[तीसरा अध्याय]

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥२६

(विद्वान्) विवेकी (युक्तः) युक्त होकर (सं-आचरन्) सम्यक् आचरता हुआ (सर्वकर्माणि) सब कर्मों को (जोषयेत्) प्रीतिपूर्वक सेवन करे, (अज्ञानां कर्मसंगिनां) अविवेकी कर्मासक्तों में (बुद्धि-भेदं न जनयेत्) बुद्धिभेद न उत्पन्न करे।

युक्त शब्द यहां बड़ा महत्त्वपूर्ण है। युक्त, योगयुक्त, आत्म-अवस्थित, समाहित, ब्रह्मस्थ-ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। इन सब शब्दों में योग की अनासक्त स्थिति का भाव अन्तर्निहित है। जो युक्त होता है, वह ही अनासक्त होता है। जो अनासक्त होता है, वह ही युक्त होता है। युक्त और अनासक्त वह ही हो सकता है, जिसने ज्ञान, विवेक अथवा विद्या का दीप प्रकाशित कर लिया हो। ज्ञान, विवेक, विद्या—ये शब्द भी पर्यायवाची हैं। इन तीन शब्दों में तत्त्व-ज्ञान का भाव सन्निहित है। ज्ञानी, तत्त्वज्ञानी, विद्वान्, विवेकी—एक ही बात है। बहुत पढ़े लिखे को विद्वान् नहीं कहते हैं। बहुत पढ़े लिखे को तो बहुपठित कहना चाहिये। विद्वान् नाम तो विद्-वान् का है, ज्ञान-वान् का है, विवेकी का है। जिसने विद्, विवेक या ज्ञान का चिराग़ नहीं जलाया है, वह न युक्त हो सकता है, न अनासक्त।

सूर्य के प्रकाश में जिस प्रकार अन्धकार का नाश होजाता है, उसी प्रकार विवेक के प्रकाश में आसक्ति विनष्ट होजाती है। आसक्ति के विनष्ट होने पर उस विवेकख्याति का उदय होता है, जिसमें आत्मा अपने स्वरूप में स्थित और युक्त होजाता है। विवेक की साधना परम साधना है। विवेक की सिद्धि होने पर आत्मा स्वयमेव युक्त और अनासक्त होजाता है।

प्रकाश में जो कार्य किया जाता है, वह ठीक ठीक किया जाता है। अंधेरे में किया काम ठीक नहीं किया जाता है। विवेक के प्रकाश में जो कर्म किया जाता है, वह ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथावत् किया जाता है। प्रकाश में भी कर्म यथावत् नहीं किया जा सकता, यदि कर्ता की स्थिति स्थिर न हो। प्रकाश के होने तथा स्थिति के स्थिर होने पर भी कर्म यथावत् नहीं किया जा सकता, यदि कर्ता निर्बद्ध [खुला हुआ] न हो। दिन है, सूर्य का प्रकाश है, घोड़ा स्वस्थ और स्थिर है, किन्तु रस्सी के द्वारा वृक्ष से बंधा हुआ है। वह न चल सकता है, न दौड़ सकता है। जब उसे निर्बद्ध कर दिया जाता है, खोल दिया जाता है, तब वह यथावत् गति करता है।

यथावत् कर्म तब ही किया जाता है, जब कर्ता विवेक के प्रकाश में कर्म करता है, जब कर्ता की स्थिति स्थिर [युक्त] होती है, जब कर्ता निर्बद्ध [अनासक्त] होता है। युक्त और अनासक्त होने पर विवेकी सक्षम होजाता है, उसमें कर्मक्षमता आजाती है। सक्षम होकर, कर्मक्षमता से युक्त होकर, चाहिये कि (विद्वान्) विवेकी (युक्तः) युक्त-समाहित होकर (सं-आचरन्) सम्यक् व्यवहार करता हुआ, अनासक्ति के साथ वर्तता हुआ (सर्वकर्माणि जोषयेत्) सब कर्मों को प्रीतिपूर्वक सेवे, सस्नेह सब कर्मों का यथावत् सम्पादन करे।

जो ऐसा समझे या कहे कि युक्त और अनासक्त होने पर कर्मों का त्याग कर देना चाहिये, वह विवेकी नहीं है अविवेकी है, वह विद्वान् नहीं है अविद्वान् है, वह ज्ञानी नहीं है अज्ञानी है। जो ऐसा समझता, कहता और करता है, वह पूर्व श्लोक में उपदिष्ट इस तत्त्व को नहीं समझ पाया कि "अविद्वान् आसक्त होकर जिस तत्परता के साथ कर्म करते हैं, लोकसंग्रह को दृष्टि में रखते हुए विद्वानों को उसी तत्परता के साथ कर्तव्य कर्मों का निर्वहन करना चाहिये।"

ऐसा समझने, कहने और करने से जनसाधारण में बुद्धि-भेद उत्पन्न होता है। बुद्धि-भेद से प्रमाद की वृद्धि होती है। प्रमाद की वृद्धि होने पर कर्महीनता व्यापती है। कर्महीनता का परिणाम यह होता है कि आसक्ति होने पर भी लोग कर्म नहीं करते और अपनी कर्महीनता को वे अनासक्ति समझने लगते हैं। अनासक्ति के नाम पर वे अकर्मण्य हो जाते हैं। युक्त अनासक्त विवेकी जन को चाहिये कि वह अपने आचार व्यवहार से (अज्ञानां कर्मसंगिनां) अविवेकी कर्मासक्तों में (बुद्धि-भेदं न जनयेत्) बुद्धि-भेद पैदा न करे, अन्यथा समाज में भयंकर कर्मसंकरता फैल जाती है।

बुद्धिभेद नहीं फैलाये अज्ञों कर्मासक्तों में।
सब कर्मों को करे प्रेम से ज्ञानी युक्त हुआ साचार ॥

साधना

—३८—

[संकल्प का शमन : विचार का स्तम्भन]

सब विकल्पों, चिन्तनों और विचारों का मूल संकल्प है। संकल्प का शमन होने पर विकल्पों का शमन होजाता है। विकल्पों का शमन होने पर चिन्तनों का शमन होजाता है। चिन्तनों का शमन होने पर विचारों का शमन होजाता है। साधक को अपने विकल्पों, चिन्तनों और विचारों से संघर्ष नहीं करना है, अपने संकल्पों का शमन करना है। मूलस्रोत का शमन होने पर स्रोत से प्रवाहित होनेवाली धाराओं का स्तम्भन स्वयमेव होजाता है।

संकल्प मन का स्वाभाविक धर्म है। मन से संकल्प का निर्मूलन कदापि नहीं किया जा सकता, उसका केवल शमन किया जा सकता है। मन और मन के संकल्प जागृति और स्वप्न की अवस्थाओं में निरन्तर कार्य करते रहते हैं। अत एव इन दोनों अवस्थाओं में विकल्पों, चिन्तनों और विचारों का निरन्तर तांता लगा रहता है।

सुषुप्ति [सु-सुप्ति, Sound Sleep] की अवस्था में मन सुषुप्त [सु-सुप्त] होजाता है। सुषुप्ति में जब तक मन सुषुप्त रहता है, तब तक मन के संकल्प भी सुषुप्त रहते हैं। सुषुप्ति में मन के सुषुप्त रहने के कारण मन के संकल्प सुषुप्त रहते हैं। मन की इस अवस्था का नाम संकल्प-सुषुप्ति है।

सुषुप्ति के कारण जो संकल्प-शमन होता है, उस अवस्था में आत्मा चिन्मय कोश में आत्म-धृत आत्म-रत रहता है। मन के संकल्पों से उत्पन्न होनेवाले विकल्पों, चिन्तनों और विचारों का अनायास ही पूर्ण स्तम्भन होजाता है। इन्द्रियां सर्वथा निश्चेष्ट होजाती हैं।

सुषुप्ति एक प्रकार की समाधि है। इसीलिये योगियों की भाषा में सुषुप्ति का एक नाम जड़-समाधि है। जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगी आसनस्थ होकर मनोनिग्रह करके अपनी आत्मधारणा से अपने ध्यान को स्थिर समाहित करता है, तो उसकी उस स्थिरता अथवा समाहिति का नाम योगसमाधि है। सुषुप्ति जड़-समाधि है। योगसमाधि चेतन-समाधि है। सोनेवाला जब निद्रा में लीन होता हुआ स्वप्नावस्था को पार करके सुषुप्ति में सुषुप्त होता है, तो मन और मन के संकल्प सुषुप्त होजाते हैं। उसी प्रकार जब आसनस्थ योगी अपनी आत्मधारणा के द्वारा शरीरेन्द्रियों को निश्चेष्ट करके अपनी वृत्तियों को ध्यानवृत्त पर टिकाकर अपने ध्यान को स्थिर करता है, तो मन और मन के संकल्पों का उसी प्रकार शमन होजाता है, जिस प्रकार सुषुप्ति में होता है।

संकल्प-सुषुप्ति और संकल्प-शमन में केवल एक अन्तर है। संकल्प-सुषुप्ति में मन का आत्म-चेतना से सम्बन्ध कटा रहता है। संकल्प-शमन में मन आत्म-चेतना से आविष्ट रहता है। ध्यानावस्था में संकल्प-शमन की सिद्धि होने पर ध्यानावस्था में विकल्प सर्वथा निरुद्ध रहते हैं। विकल्पों के निरुद्ध रहते हुए चिन्तनों में उत्तेजना नहीं होती। चिन्तनों के अनुत्तेजित रहने से विचार उद्‌बुद्ध नहीं होते। यही विचारों का स्तम्भन है।

संकल्प का शमन होने पर विचार का स्तम्भन स्वयमेव होजाता है। संकल्प-शमन का अभ्यास किस प्रकार किया जाता है, यह यथाप्रकरण बताया जायेगा।

सुराज्य संघ

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तँल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥ (य० २०.२५)

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्र-ज्ञेषं यत्र देवाः सह अग्निना ॥

१) (यत्र) जहां, जिस राष्ट्र में (ब्रह्म च क्षत्रं च) ब्रह्म और क्षत्र (सम्यञ्चौ) संयुक्त होकर (सह) साथ-साथ (चरतः) विचरते-चलते हैं।

२) (यत्र) जहां, जिस राष्ट्र में (देवाः) नागरिक-देव (अग्निना सह) अग्नि के साथ विचरते हैं।

३) मैं (तं) उस राष्ट्र को (पुण्यं लोकं) पुण्य लोक (प्र-ज्ञेषं) समझता हूं।

ब्रह्म प्रतीक है अध्यात्म का। क्षत्र प्रतीक है राज का, अधिराज का। जो कुछ अधि-आत्म है, आत्मा को अधिकाधिक उन्नत करनेवाला है, वह सब ब्रह्म है। जो कुछ अधिराज है, क्षमता दक्षता श्री और शोभा को बढ़ानेवाला है, वह सब क्षत्र है।

पवित्र विचार, शुद्ध आचार, निर्मल भावना, धवल चरित्र, आस्तिक्य, कर्तव्यनिष्ठा, तप और संयम सामान्यतः ब्रह्म की परिधि में आते हैं। सत्य, न्याय और धर्म पर आश्रित सम्पूर्ण भौतिक उन्नतियां क्षत्र में सम्मिलित हैं।

देवाः से तात्पर्य है देवत्व से युक्त देवतातुल्य नागरिक। अग्नि का प्रयोग राष्ट्रीयता की अग्नि के लिये हुआ है।

जिस राष्ट्र में ब्रह्म और क्षत्र परस्पर समान मात्रा में सम रूप से चलते हैं, जिस राष्ट्र के नागरिक देवत्व से युक्त होते हैं, जिस राष्ट्र के देवत्व से युक्त दिव्य नागरिक अपने हृदयों में राष्ट्रोन्नति की अग्नि को प्रज्वलित किये हुए सर्वत्र विचरते हैं, मैं उसी राष्ट्र को पुण्य लोक अथवा पावन और भाग्यशाली राष्ट्र समझता हूं।

ब्रह्म और क्षत्र राष्ट्ररथ के दो चक्र [पहिये] हैं। जिस राष्ट्ररथ के उभय पार्श्व में ये दो चक्र निर्बाधता के साथ साथ-साथ घूमते हैं, वही राष्ट्ररथ अखिल दैवी सम्पदा से सम्पन्न होता है और उसी राष्ट्ररथ में संस्थित नागरिक राष्ट्रोन्नति की अग्नि [मशाल] को निरन्तर प्रज्वलित रखते हैं। जिस राष्ट्र में ऐसा होता है, वह राष्ट्र ही पुण्य राष्ट्र है, वह राष्ट्र ही आदर्श राष्ट्र है, वह राष्ट्र ही पुण्य लोक है और उसी राष्ट्र में सुख और आनन्द आप्लावित होता है। वही राष्ट्र दैवी राष्ट्र है।

जिस रथ में दोनों पार्श्व के दोनों चक्र सम्यक् गति करते हैं, वह रथ ही प्रगति-पथ पर चलता हुआ अभीष्ट स्थान पर पहुंचाता है। जिस रथ का एक चक्र टूट गया हो, उस रथ की दुर्गति का क्या ठिकाना। और जिस रथ के दोनों ही चक्र टूट गये हों, वह रथ तो बिलकुल ही बेकार है।

जिस राष्ट्ररथ का ब्रह्म-चक्र नष्ट हो जाता है, या क्षत्र-चक्र टूट जाता है, उस राष्ट्र की भारी दुर्गति निश्चित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचक्रविहीन राष्ट्र असुरत्व से आच्छन्न होकर भोग विलास की ज्वाला में भस्म होता है, तो क्षत्रचक्रविहीन राष्ट्र दीन, हीन और पराधीन होकर रौरव नरक में पड़ता है।

१५ अगस्त १९४७ को जो तथाकथित स्वराज्य आया, उसके दावेदारों और सूत्रसंचालकों ने धर्मनिरपेक्षता के नाम पर उसके ब्रह्मचक्र को निकाल बाहर कर दिया। स्वराज्यरथ को वे केवल एक क्षत्र-चक्र पर घसीट रहे हैं। क्षत्र-चक्र भी सत्य, न्याय और धर्म पर आश्रित न होकर छल, कपट, पक्षपात और स्वार्थ पर आश्रित होकर जैसे तैसे घिसटता हुआ राष्ट्र को सर्वनाश के गर्त में गिराये जारहा है। स्वराज्य के नाम पर प्रस्थापित प्रजातन्त्र ने भारत को त्रस्त और भारतीयता को ध्वस्त कर दिया है। सदाचार रो रहा है। दुराचार अट्टहास कररहा है। मानवता उजड़ रही है। दानवता फलफूलरही है। समूचे राष्ट्र में आसुरी माया छा गयी है। दैवी सम्पदा समूल नष्ट की जारही है। इन पंक्तियों को लिखते हुए भारत की दुर्दशा का भयानक चित्र मेरी आंखों के सामने उपस्थित है, जिसका चित्रण करने में मेरी लेखनी लज्जा के मारे रुकी जारही है। अयाँ रा च बयाँ—प्रत्यक्ष के कथन की आवश्यक्ता भी क्या है। जो चित्र जन-जन की आंखों के सामने चित्रित है, उसका क्या चित्रण करूं।

स्वराज्य को सुराज्य में कैसे परिणत किया जाये, आज भारत की जनता के सामने यह एक धधकता हुआ ज्वलन्त प्रश्न है। सब धर्मों का परम धर्म राजनीति है। यथा राजतन्त्र तथा प्रजातन्त्र—मेरी इस उक्ति में लेशमात्र भी संशय करने की आवश्यकता नहीं है। राजतन्त्र के भ्रष्टाचार ने ही प्रजातन्त्र को भ्रष्ट किया है। राजतन्त्र के संशोधन से प्रजातन्त्र का संशोधन स्वयमेव होजायेगा। राजनीति के सुधरने पर राष्ट्ररथ के ब्रह्म और क्षत्र रूपी उभय चक्र प्रगतिपथ पर तीव्र गति से घूमने लगेंगे। राजनीति का सुधार तब ही हो सकेगा जब भारत के शासन का सूत्र ऋषियों, मनीषियों, यतियों, सच्चे संन्यासियों और त्यागी तपस्वी सुयोग्य सदाचारी व्यक्तियों के हाथों में आयेगा और भारत का शासन भारतीय आधारों पर चलाया जायेगा। ऐसा हो कैसे ?

वर्तमान अवस्थाओं में आज जनतन्त्रीय पद्धति से ही राजतन्त्र में परिवर्तन और संशोधन किया जा सकता है। यह निर्विवाद सत्य है कि प्रजातन्त्र में एकदलीय शासन का नैरन्तर्य सबसे बड़ा अभिशाप सिद्ध होता है और महा अनर्थकारी होता है। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद, उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन, प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू तथा अन्यान्य राजनीतिज्ञ समय-समय पर इस विषय में बड़ी चिन्ता व्यक्त कर चुके हैं। उन्होंने कई बार कहा है कि प्रजातन्त्र के स्वस्थ विकास के लिये देश में कांग्रेस के मुक़ाबिले कोई दूसरा शक्तिशाली दल होना चाहिये। अभी पिछले दिनों डा० जोह्न मथाई ने कहा था, "एक राष्ट्रतन्त्र देश में प्रजातन्त्र के समुचित संचालन के लिये एक सुसंगठित राजनीतिक विरोधी दल का होना नितान्त आवश्यक है। इसके बिना प्रजातन्त्र स्वतन्त्रता के सार को गंवा देगा और एकदलीय शासनाधिकार का एक निमित्त-मात्र बन जायेगा।" उपर्युक्त उद्धरण में मैं 'सुसंगठित शब्द से पूर्व 'चरित्रवान्' शब्द जोड़ना पसन्द करूंगा और यह भी कहूंगा कि प्रजातन्त्र के सुचारु संचालनार्थ एक स्वतन्त्र राष्ट्र में दो से अधिक राजनीतिक दल कदापि न होने चाहियें।

हमें स्वराज्य को सुराज्य में परिणत करना है। इसके लिये एक सर्वदेशीय 'सुराज्य संघ' का संगठन किया जाना चाहिये। जनता आज इस स्वराज्य से तंग आकर सुराज्य के लिये तरस रही है। 'सुराज्य संघ' नाम जनता के हृदय को अपनी ओर खींचेगा। नाम का महत्त्व प्रत्यक्ष है। हिन्दु महा सभा, भारतीय जनसंघ और रामराज्य परिषद् तीनों को सुराज्य संघ' में विलीन होकर एक महासागर का रूप धारण करना चाहिये। तीनों के ही आदर्श और उद्देश्य लगभग समान हैं। साम्यवादी, समाजवादी और प्रजासमाजवादी दलों को 'स्वराज्य संघ' में खींच लाना चाहिये। सभी वादों का एक वाद सुराज्यवाद है। वाद समय के साथ बदलते रहते हैं। लक्ष्य अक्षुण्ण है। सुराज्य शब्द के गर्भ में सब शुभ निहित है। सुराज्य में सारे वाद समा सकते हैं। वाद में सुराज्य नहीं समा सकता। सुराज्य में ही ब्रह्म और क्षत्र का निर्बाध सहचार सम्भव होगा। ब्रह्म और क्षत्र के सहचार से ही राष्ट्रदेवों के हृदयों में राष्ट्राग्नि का सतत प्रज्वलन शक्य हो सकेगा। राष्ट्र-पावक में निखर कर और कुन्दन बनकर हमारा राष्ट्र पुण्य लोक बनेगा। भारत राष्ट्र के पुण्य लोक बन जाने पर ही यह सारा भूमण्डल स्वर्गोपम आर्यधाम बनेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सुराज्य संघ' की सुस्पष्ट योजना मेरे मस्तिष्क में है। इस संघ की योजना में ब्रह्म और क्षत्र के अन्तर्गत साम्यवाद और समाजवाद की आर्थिक व्यवस्था का यथानुपात समावेश हो सकता है। इसमें सर्वोदय के सिद्धान्तों को पूर्णतया समाविष्ट किया जा सकता है। इसमें सभी वर्ण और वर्ग के लिये पूरी गुंजाइश है। इसमें सभी धर्मसम्प्रदाय पच सकते हैं। जिन्हें भी सुराज्य अभीष्ट है, वे सभी इसमें सम्मिलित होंगे। भला कौन है जो आज सुराज्य नहीं चाहता है और कल सुराज्य नहीं चाहेगा। मैं इस निमित्त यथाशक्ति और यथामति प्रयत्न करूंगा। मैं सविनय और साग्रह सबके सहयोग की याचना करता हूं।

पुरुषोत्तमदास टण्डन, अलगूराय शास्त्री, घनश्यामसिंह गुप्त, जैसे व्यक्तित्व इस कार्य को अपने हाथों में लेसकें तो यह कठिन कार्य सरलता से हो सकेगा। कांग्रेस के वे पुराने नेता हैं। संस्था का मोह और उससे प्राप्त लाभ वे त्याग सकें तो जहे किस्मत, बड़ा सौभाग्य। और क्या ही अच्छा हो कि राजनीति से संन्यस्त दो महान् व्यक्तित्व विनोबा तथा जयप्रकाशनारायण इस कार्य को अपने वरिष्ठ और बलिष्ठ हाथों में लेलें।

देश और राष्ट्र का आज परम हित इसी में है कि कांग्रेसेतर सब राजनीतिक दल तथा सर्वोदय समाज अविलम्ब एक अखिल भारतवर्षीय 'सुराज्य संघ' में परिणत होजायें। साम्यवादी दल, प्रजासमाजवादी दल, समाजवादी दल, हिन्दु महा सभा, भारतीय जन संघ, रामराज्य परिषद्, तथा सर्वोदय समाज के सुमहान् नेता चाहेंगे तो उनके प्रभूत प्रभाव से यह सर्वाभीष्ट कार्य अवश्य होजायेगा। यदि ऐसा न किया गया तो भारत का नहीं तो भारतीयता का समूल विनाश निश्चित है। भारतीयता के बिना भारत का मूल्य ही क्या ?

समय की मांग नये-नये दलों में विभक्त होना नहीं है। युग की पुकार सब दलों के मिलकर एक होजाने की है। सयुक्त होकर आप बिगड़ी को बना सकेंगे। विभक्त रहकर आप भारत की बिगड़ी को और अधिक बिगाड़ लेंगे।

जहां ब्रह्म और क्षत्र परस्पर दोनों मिलकर चलते हैं,
जहां विचरते देव नागरिक अग्नि धारे हृदय में,
उसी राष्ट्र को पुण्य लोक में तो बस समझा करता हूं।

शिव-संकल्प

[प्रा० बा० विष्णुदयाल, एम. ए.]

यह ठीक ही कहा है कि शिवप्रिय सर्प आदि जहरीले जन्तु शिव के स्पर्श से अपने विष को न जाने कैसे त्याग देते हैं। शिव की कथा पढ़कर हम भारत में भारतीयता को क़ायम रखने का रास्ता शीघ्र ढूंढ लेते हैं।

भारत ने ऐसा वातावरण सुरक्षित रखा है, जो कल्याण करने और कराने में सहायक हो। भारत के महत् ग्रन्थ, वेद ने शिव संकल्प करने को कहकर विनाश लाने की प्रवृत्ति को जड़ से ही उखाड़ फेंकने का उपाय बताया है।

आजकल परमाणु से काम लिया जारहा है। परमाणु अति सूक्ष्म है। भारतीय ऋषियों ने आज से सहस्रों वर्ष पूर्व परमाणु का नाम लेकर बताया कि ईश्वर उससे भी सूक्ष्म है; परन्तु इस सूक्ष्मता ने उसकी शक्ति को घटाया नहीं। जापान पर परमाणु-बम फेंककर अमेरिका ने दर्शाया कि सूक्ष्म परमाणु में कैसी शक्ति है। जो वादविवाद अणु-शक्ति के प्रयोग से सम्बन्धित है, वह हमारी आंखों को खोल रहा है। शान्तिप्रिय विद्वान् एक पक्ष ग्रहण करके कहरहे हैं कि इस शक्ति से हम लाभ उठायें, जैसे बिजली या वाष्प से हमने लाभ उठाया।

विद्वानों की बहस भौतिक दिशा तक ही सीमित है। एक पक्ष नाश लाने पर उद्यत है दूसरा अणु शक्ति का उपयोग करने पर। नाश से बचना और अणु-शक्ति का उपयोग करना तब आयेगा, जब हम यजुर्वेद के निम्न मन्त्रो की ओर ध्यान देंगे—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः
शिवसंकल्पमस्तु ॥

"जो क्या जागृत अवस्था में, क्या सुप्त अवस्था में, दूर-दूर भागता है, वह दूरगामी इन्द्रियों का प्रकाशक मेरा मन शिव संकल्प वाला हो"।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

"जिस मन से बुद्धिमान् जन, सत्यकर्मनिष्ठ लोग, यज्ञादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक कामों में और वैज्ञानिक एवं युद्धादि व्यवहारों में इष्ट कर्मों को करते है, जो प्रजाओं का अन्तःस्वरूप मन अद्भुत है, उनका यक्ष यानी पूज्य बन जाता है, मेरा वह मन भले विचारों वाला होवे"।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।

"जो मन ज्ञान, चिन्तन, शक्ति और धैर्य का उपकरण है, जो प्रजाओं के बीच चिर काल तक रहनेवाली भीतरी ज्योति है, जिसके बिना कोई भी काम नहीं किया जा सकता है, वह मेरा मन परमात्मा सम्बन्धी भावों वाला हो"।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।

"जिस अमृतरूप मन ने बीता हुआ, वर्तमान में जो होता है, आगे होनेवाला—यह सब पकड़ रखा है, जिससे सात होताओं वाला यज्ञ फैलाया जाता है, वह मेरा मन शुभ विचार करने वाला होवे"।

यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिँश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।

"जिसमें ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद रथ की नाभि में अरों के समान स्थिर होगये हैं, सब प्रजाओं का चित्त जिसमें निहित है, वह मेरा मन शुद्ध संकल्प वाला हो"।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।

"जिस भांति उत्तम सारथि वेगवान् घोड़ों को चलाता है, उस भांति जो मनुष्यों के इन्द्रियरूपी घोड़ों को लगामों से स्वाधीन रखकर विचलित नहीं होने देता, वह मेरा मन शुभ सामर्थ्यों वाला हो"।

यजुर्वेद को यज्ञों की प्रेरणा देनेवाला वेद कहा गया है। आधुनिक संसार को यज्ञ के लिये ज़रा भी फुर्सत नहीं है। कार्यव्यस्त संसार को चिन्तन करना तो पड़ता है। कितना अच्छा हो कि यज्ञकर्ता के मुख से इन मन्त्रों को श्रवण करके जन-जन इनके गम्भीर अर्थों पर विचार करे। इनसे एक ध्वनि निकलती है, जो वेदानुयायियों के दृष्टिकोण को जताती है।

मनुष्य शरीर की आवभगत करता है। उसे अभी ज्ञात ही नहीं कि शरीर का स्वामी है कहां। शरीर या ठठरी इन्द्रियसहित मन की चेरी है। सेवा सुश्रुषा करनी ही है तो स्वामी की करनी चाहिये। शरीर जागृतावस्था में एक तरह की चाल चलता है और सुषुप्ति-अवस्था में दूसरी तरह की। प्रथम अवस्था में यह कर्म करके थक जाता है और दूसरी अवस्था में वह आराम पाता है।

मन अहर्निश काम करता रहता है। वह दिन रात दौड़ता रहता है। सोने की दशा में वह लम्बी यात्रा करता है। जागते में भी न जाने कहां कहां चला जाता है। उसमें अद्भुत शक्ति विद्यमान है। इस शक्ति को सुकर्म कराने में लगाना चाहिये। कर्म तो शरीर द्वारा होगा ही। सुकर्म न हो पाया तो कुकर्म होजायेगा। मन इन्द्रियों का प्रकाशक है। उसे प्रकाश प्रदान करने में ही लगाना चाहिये। जिस प्रकार वह क्षण में बना सकता है, उसी प्रकार वह क्षण मात्र में बिगाड़ भी सकता है। मन ही कर्म करानेवाला है। मन में ब्राह्म बल है। वह ज्ञान है, ज्योति है। वही समझ पाता है कि भूत, वर्तमान और भविष्य में क्या होता है। भूत काल वर्तमान के कर्मों का आधार है और वर्तमान में भविष्य का बीज है। मन चंगा रहा तो जीवन बिगड़ेगा नहीं, जैसे राम की उपस्थिति से मुनियों का यज्ञ न बिगड़ा था। मन ही वेद धारण करनेवाला है। चारों वेद मन में ही धारण किये जाते हैं।

इतने गुणों से सम्पन्न मन को शुभ संकल्प से भरना चाहिये। यह स्थित तो है हृदय में, किन्तु हवा से बातें करनेवाले घोड़ों से, अतिशय गमनशील रेल-गाड़ियों से, तथा मोटर-गाड़ियों से भी अधिक वेगवान् है। मन शुभ संकल्प से युक्त न हो तो वह शरीर को अन्ध कूप में लेजाकर ढकेल देगा। मन ठीक न होगा तो मनुष्य का जीवन-जहाज बड़ी चट्टानों से टकराकर तत्काल नष्ट होजायेगा। मन अश्वों को अपने पथ पर रखता है। इन्द्रियां अश्व हैं। सत्पथ पर चलनेवाली इन्द्रियां सदश्व हैं और कुपथ पर चलनेवाली दुष्टाश्व।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल अणुशक्ति से विनाश लाने की सम्भावना पर विचार करते ही हम कांप उठते हैं। जो संहार से बचना चाहे, उसे शान्तिदाता प्रभु से प्रार्थना करते रहना चाहिये, ताकि उसका संकल्प शुभ हो। संकल्प ही हमें सम्भावित विनाश की ओर जाने से रोक सकता है। हम शरीर, मन और आत्मा में से केवल एक की सत्ता को मानते हैं। स्थूल नेत्रों से जो ग्राह्य है, हम उसी का होना मानते हैं। कुछ दशकों से मनोविज्ञान प्रगति अवश्य कर रहा है, जिससे पश्चिम में अवगत होरहा है कि मन भी शरीर के साथ रहता है। मन को शरीर के समान नापने और तोलने के प्रयत्न में बड़े बड़े पण्डित लगे हुए हैं। उन्हें बोध होजाये कि मन शरीर और आत्मा के बीच की कड़ी है; जो रेल-गाड़ी के एंजिन और डिब्बों के मध्य पायी जाने-वाली जंजीर की भांति है, तो वेद के एक महान् सन्देश को समझ जायें।

ग्यारहवां वर्ष

धन्यवाद : इस अंक के साथ वेदसंस्थान और सविता अपनी आयु के दश वर्ष समाप्त करके ग्यारहवें वर्ष में प्रविष्ट होरहे हैं। यद्यपि लक्ष्य अभी बहुत दूर है, वेदसंस्थान और सविता ने लक्ष्य की ओर बढ़ने में पर्याप्त प्रगति की है। प्रभु के चरणों में नतमस्तक होकर हम उसका कोटिशः धन्यवाद करते हैं।

उन देवों और देवियों के प्रति, जिन्होंने दान, सहानुभूति, सुझाव, प्रोत्साहन आदि से संस्थान की सहायता की है, हम अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। सविता के ग्राहकों के भी हम आभारी हैं, जिन्होंने संस्थान के श्रम को अपनाया।

कार्य जितना शुभ और महान् होता है, उसका विरोध भी उतने ही उग्र रूप में होता है। ऐसा सदा से होता आया है और सदा होता रहेगा। विरोधियों ने विरोध भी गत दश वर्षों में खुलकर किया है। हमारे मन में उनके प्रति कोई दुर्भाव नहीं है। विरोध साधक का संशोधन और उसका मार्ग प्रशस्त करता है। विरोध न हुआ होता तो हमारे कार्य में इतनी तत्परता न आई होती। इस रूप में विरोधियों ने हमारा जो उपकार किया है, तदर्थ हम सचमुच उनके आभारी हैं। मंगलमय भगवान् उनका सब प्रकार मंगल करें।

योगशिविर : वेदसंस्थान के संस्थापक श्री विदेह की योगसाधना का सुफल साधकों को योगशिविरों में जिस मनोहरता के साथ मिलता रहा है, वह अनुभव और अनुभूति का विषय है। अजमेर, पटियाला, बटाला, फ़तेहगढ़, आदि स्थानों के योगशिविरों में जो साधक-साधिकायें सम्मिलित हुए, वे जानते मानते हैं कि श्री विदेह की योग पद्धति कितनी सुकर है। श्री विदेह जिस प्रकार कठिन से कठिन वेदमन्त्र की व्याख्या ऐसे ढंग से करते हैं कि अपठित व्यक्ति भी उसे सहजतया हृदयंगम कर लेता है, वैसे ही वह योग की क्रियाओं को ऐसे सरल ढंग से सिखाते हैं और योग के रहस्यों को ऐसी सुगमता से समझाते हैं कि साधक अनायास ही सब कुछ सीख समझ जाते हैं।

साहित्य-रचना : विदेह-रचित वेदविषयक जो साहित्य अब तक वेदसंस्थान ने प्रकाशित किया है, उसका विद्वानों व साधारण जनों ने मुक्त कण्ठ से स्तवन और हृदय से स्वागत किया है। उसके लिये हम बहुत कृतज्ञ हैं।

वेदव्याख्याग्रन्थों के पुष्पों का प्रकाशन न जाने अभी कब तक विचार का ही विषय बना रहता, यदि देवी क्षमकुमारी हजेला और श्री बृजभूषण हजेला ने उनके प्रकाशन के लिये श्रद्धापूर्ण आग्रह न किया होता और प्रचुर साधन अर्पित न किये होते। इस वेदप्राण दम्पती की श्रद्धा से वेद-प्रकाशन का जो कार्य प्रारम्भ हुआ है, वह निरन्तर चलता रहेगा—यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है।

कम से कम : जिन वेदों के माननेवाले करोड़ों की संख्या में हैं, उनकी विश्व-व्याप्ति के लिये प्रत्येक वेदानुयायी को अधिक से अधिक क्या करना चाहिये, यह प्रत्येक की निष्ठा और साधनों पर निर्भर है। **कम से कम** जो प्रत्येक को करना ही चाहिये, वह यह है कि कोई गृह और पुस्तकालय ऐसा न रहे जिसमें "सविता" और वेदसंस्थान का सम्पूर्ण साहित्य न हो।

—चाँदमल चंडक, मन्त्री, वेदसंस्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

REAL WEALTH

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे ।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ (Rig. 1-1-3)

Wealth, real wealth is that, which serves to invigorate us. That alone is wealth, which advances spiritual and physical powers. Wealth is only that getting which a man feels happy. True wealth is veritably that, which makes the individual, the society, the nation and the world physically strong and spiritually invincible.

Real wealth is earned by treading on the righteous path of life and in the welfare of the world itself is it rightly spent. What excites immoral emotions, arouses lust, entangles in revelry, promotes luxury and disease and stimulates selfishness and exploitation is no wealth at all. Plainly enough, it is a sin, a curse, a hell-like thing, a thing to be wholly discarded.

O Lord of wealth, give us that wealth alone, which is nourishing, glorifying and highly invigorating.

Getting wealth may we not fall a prey to worldly enjoyments and licentiousness, but may enhance our spiritual powers. Flourishing in prosperity may we so build ourselves that every individual of our society be thoroughly able and efficient, wise and talented, high-souled and vigorous, resolute and powerful, benevolent and polite.

Wealth without power serves others' ends, not one's own. The wealth of the powerless proves an axe to cut at his own roots.

O Fire Divine, grant us only such wealth as is accompanied with both, physical power as well as soul-force. Make us all wise, make our bodies invulnerable and give the strength of steel to our nerves.

Man अश्नवत् should secure दिवे-दिवे everyday अग्निना from Fire Divine, एव only पोषं nutritious, यशसं glorifying and वीरवत्तमं highly heroic रयिं wealth.

[Translated from Hindi by Brij Bhushan Hajela]

SERVING THE PARENTS

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु ॥

(Atharva. 1-31-4)

Dear Children,

This portion of the Vedic hymn tells us, 'Let there be joy and happiness to our parents.'

Every righteous child must always dutifully keep his or her parents happy and contented. He or she must never do such an act, even by mistake, as may pain or grieve them.

When you get up early in the morning, you must, first of all, say Namastey [Good Morning] to your parents, obtain their blessings and then set about your business. Similarly, before going to bed at night, bow to your parents, have their blessings and fall asleep.

Consider it to be your great good luck to serve and act according to their bidding. Always try to be in the seek of finding an occasion to serve your parents. Whenever they assign a certain work to be done by you, do it with no small pleasure, care, faith and devotion.

The greatest peace and happiness that the parents derive is from the good name and reputation of their progeny. Shape your habits and behaviour in such a way as may bring fame and good name to yourself from all quarters, near and abroad.

How lucky and fortunate are the boys and girls who always keep their parents happy and contented.

अस्तु Let there be स्वस्ति well-being नः मात्रे उत पित्रे for our mother and father.

Parents may get ever joy.
So should behave every girl and boy.

[The word Namestey carries the sense of paying due respects to the individual accosted.]

[From *Vedic Bala Shiksha* by Videh; Translated from Hindi by Kishori Lal, M.A.]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदव्याख्याग्रन्थ

वेद की व्याख्या करना साधारण काम नहीं। असाधारण प्रतिभावान् व्यक्ति ही इस प्राचीनतम ज्ञान की व्याख्या करने की चेष्टा करते हैं। सम्भवतः व्याख्या में अपने-जाने विद्वानों को सफलता मिल गयी हो, पर वह विश्लेषण ऐसी ग्रन्थियां अवश्य छोड़ जाता है, जिनके कारण जन साधारण के पल्ले कुछ नहीं पड़ता। वेद-ज्ञान के प्रेमियों का यह सौभाग्य है कि आचार्य विद्यानन्द विदेह ने वर्तमान काल की स्थिति को पहचान कर वेदव्याख्या का कार्य आरम्भ कर दिया है। जनसाधारण को दृष्टि में रखकर लिखी गयी आचार्य विदेह की व्याख्या में ज्ञान और भावना का श्रेष्ठ सामंजस्य है। न उनमें कोरी शुष्कता है और न कोरी भावना की उड़ान। इस व्याख्या से जान पड़ता है कि वैदिक ज्ञान आज भी हमारे लिये अति लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। बस देखनेवालों की कमी है।

देश विदेश के ग्रन्थालयों और शिक्षा-संस्थाओं के पुस्तक-संग्रहों की शोभा बढ़ाने योग्य इस ग्रन्थमाला के जितने वेदज्ञानप्रेमी स्थायी ग्राहक बनें उतना उत्तम होगा। प्रत्येक आर्य के लिये यह संग्रहणीय अनुपम रत्न भावी सन्तानों के लिये श्रेष्ठ सम्पत्ति सिद्ध होगा। **—नव-भारत टाइम्स**

यदि वेद की स्वतन्त्रता से व्याख्या करना आज के युग को वेदार्थ अभिमत है, तो मैं कहूँगा कि श्री विदेह जी आज के वेदव्याख्याताओं से बाज़ी मार ले गये हैं। ऐसी सरस और सुन्दर व्याख्यायें बहुत कम देखने में आती हैं। मैं आश्चर्य से देखता हूं कि यजुर्वेद के द्वितीयाध्याय से "गृहस्थाश्रम की सुव्यवस्था" बड़े अच्छे ढंग से दुही गयी है। व्याख्या का प्रकार बहुत अच्छा है। पहले व्याख्या में मन्त्र के वही के वही शब्द रख दिये गये हैं। फिर उनको सुगम किया गया है, फिर स्पष्ट; फिर व्याख्या। फिर उन्हें कविता में दिया जाता है। अर्थ की भाषा हृदयग्राही है। सनातन-धर्म के दृष्टिकोण से मेरा अर्थों में पूर्णमतभेद है, पर तटस्थ दृष्टिकोण को क्यों छिपाया जाये। मुद्रण तथा प्रकाशन तो अनुपम है ही। य० २/२२ में यज्ञ का वैज्ञानिक रहस्य अच्छी शैली में बताया है। व्याख्या में भावपूर्णता अतिशयित परिमाण में है।

—दीनानाथ शर्मा शास्त्री सारस्वत,
श्रीसनातनधर्मालोक-प्रणेता

प्रथम पुष्प की भांति द्वितीय पुष्प भी आध्यात्मिक आगार वेदों की सुमधुर सुरभि को लेकर जन-साधारण तक पहुँचाने में अपना सानी नहीं रखता।

पूज्यपाद श्री विद्यानन्द जी विदेह के अथक एवं स्तुत्य प्रयास ने भारतीय संस्कृति के मूल ग्रन्थ वेदों को आधुनिक युग-प्रवाह के अनुकूल तथा जनता के लिये सुग्राह्य बनाने में महती सफलता प्राप्त की है। द्वितीय पुष्प में गृहस्थाश्रम सम्बन्धी सांस्कृतिक तत्त्वों का सुन्दर समावेश है, जिनके आचरण के द्वारा हर गृह वैकुण्ठ के रूप में परिणत किया जा सकता है। ग्रन्थ सचित्र है, आकर्षक कवर।

—स्वामी ज्योतिर्मयानन्द सरस्वती,
सम्पादक, "योग-वेदान्त", ऋषिकेश

स्वामी विद्यानन्द विदेह जी के वेदव्याख्याग्रन्थ के प्रथम दो पुष्प मैंने देखे। व्याख्या विशद और सुबोध है और सामान्य पाठक भी उसे हृदयंगम कर सकता है। स्वामी जी की शैली रोचक और प्रभावोत्पादक है। आशा है वेदप्रेमी संसार इसका स्वागत करेगा और इसके प्रकाशन में यथाशक्ति मदद करेगा।

—डा० बाबूराम सक्सेना

गायत्री-मन्त्र का अनुष्ठान

हिन्दू जनता के लिये एक महत्त्वपूर्ण देन है। इसकी व्याख्या शास्त्रीय, सरल, सुबोध एवं सुग्राह्य है। इसके द्वारा जन-जीवन अपनी दुर्बलताओं को दूर कर शौर्य, वीर्य, मेधा तथा विवेक से सम्पन्न हो ब्रह्मसूर्य से विभासित होसकेगा।

—स्वामी ज्योतिर्मयानन्द सरस्वती

महामृत्युञ्जय-मन्त्र का अनुष्ठान

"महामृत्युञ्जय-मन्त्र का अनुष्ठान" तो आजके युग के लिये अमृत ही है। यह मन्त्र आये-दिन की सब प्रकार की दुर्घटनाओं से जीवन की रक्षा करता है तथा मोक्षदायक है। यह दीर्घायु, शान्ति, धन, सम्पत्ति देनेवाला है। पूज्य श्री आचार्य जी की व्याख्या निश्चय ही इस विषय पर अद्वितीय है।

—स्वामी ज्योतिर्मयानन्द सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ११ : अंक २

मार्च १९५८ : फाल्गुन २०१४

स वि ता

[वेद-संस्थान का मासिक पत्र]

सम्पादक :
विश्वदेव शर्मा

वेद संस्थान
ओ३म्
अजमेर

मूल्य :

देश में— वार्षिक ३) रु०
एक प्रति २५ नये पैसे
विदेश में—वार्षिक ६ शि०
एक प्रति ६ पेंस

पत्र-व्यवहार का पता :
व्यवस्थापक, वेद-संस्थान, अजमेर

चिन्ता की बात

यदि तुझे कोई नहीं जानता पहचानता है, तो चिन्ता की कोई बात नहीं है। यदि तू स्वयं अपने आपको नहीं जानता पहचानता है, तो यह बड़ी चिन्ता की बात है।

यदि संसार तेरा अहित करता है, तो चिन्ता की कोई बात नहीं है। यदि तू स्वयं संसार में किसी का अहित सोचता या करता है, तो यह बड़ी चिन्ता की बात है।

यदि संसार तेरी सेवा नहीं करता है, तो चिन्ता की कोई बात नहीं है। यदि तू स्वयं संसार की सुसेवा नहीं करता है, तो यह बड़ी चिन्ता की बात है।

यदि सारा संसार भ्रष्ट होगया है, तो चिन्ता की कोई बात नहीं है। यदि तू स्वयं भ्रष्ट होगया है, तो यह बड़ी चिन्ता की बात है। —विदेह

वेद-संस्थान के लिये पं० विश्वदेव शर्मा द्वारा, आदित्य मुद्रणालय, बाबू मोहल्ला, अजमेर में, मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सविता

लेख-क्रम

साधना-सोपान	विदेह	१९
तुरीय ब्रह्म	,,	२०
सोम-पान	,,	२१
राजा	,,	२२
कोई विरला	,,	२३
गीता-योग [३५]	,,	२४
साधना [३६]	,,	२५
अध्यापक [१२]	,,	२६
विद्यार्थी [१२]	,,	२७
पारिवारिक संशोधन और सामाजिक परिष्कार	,,	२७
मानव-धर्म [६]	,,	२८
कला के नाम पर	,,	२८
ब्राह्मण और संन्यासी	,,	२९
एक नज़र	,,	२९
मन [गीत]	,,	२९
हृदय की तलाश	,,	२९
सविता-परिवार से	चण्डक	२९
अन्दर बाहर	विदेह	३०
मेरा स्वभाव	,,	३०
सावधान	,,	३०
Life Divine	Hajela	31
Speaking the Truth	Kishori Lal	31

मन्त्रानुक्रम

अध्वर्यो द्रावया (ऋ० ८.४.११)	२१
को अस्य वीरः (ऋ० ४.२३.२)	२३
देवो न यः (ऋ० १.७३.३)	२२
धीती वा ये (अ० ७.१.१)	२०
सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म (य० ८.५२)	१९
स वेद पुत्रः (अ० ७.१.२)	२०

संस्थान-प्रकाशन

विदेह-विरचित

वेदव्याख्याग्रन्थ—प्रथम पुष्प	२.००
वेदव्याख्याग्रन्थ—द्वितीय पुष्प	१.५०
गायत्री—[द्वितीय संस्करण]	१.५०
गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान	०.२५
महामृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान	०.२५
सार्वभौम आर्य साम्राज्य	०.५०
वैदिक बालशिक्षा—प्रथम भाग [तृतीय संस्करण]	०.३७
वैदिक बालशिक्षा—द्वितीय भाग [द्वितीय संस्करण]	०.३७
वैदिक योग-पद्धति—[द्वितीय संस्करण]	०.३७
सन्ध्या-योग	०.२५
स्वस्तियाग	०.७५
यज्ञोपवीत-रहस्य—[चतुर्थ संस्करण]	०.०६
संस्कृत-शिक्षा—प्रथम भाग	०.१९
संस्कृत-शिक्षा—द्वितीय भाग	०.३७
सत्यनारायण की कथा—[द्वितीय संस्करण]	०.३७
सत्संग-गीतावली	०.३७
दिव्य-भावना	०.०६

सविता की जिल्दें, वर्ष ४,५,६,८,९,१०.

प्रति जिल्द ३.२५

—डाकव्यय पृथक्

व्यवस्थापक, वेद-संस्थान, अजमेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

सविता

[वेद-संस्थान अजमेर का मासिक पत्र]

वर्ष ११	अजमेर, मार्च १९५८, (तपस्यः) फाल्गुन २०१४	अङ्क २ पूर्णाङ्क १२२

साधना-सोपान

सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृता अभूम ।
दिवं पृथिव्या अध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः ॥

(य० ८.५२)

सत्रस्य ऋद्धिः असि अगन्म ज्योतिः अमृताः अभूम ।
दिवं पृथिव्याः अधि आ अरुहाम अविदाम देवान् स्वः ज्योतिः ॥

साधने ! तू (सत्रस्य) भक्तिमूलक सतत कर्म की (ऋद्धिः असि) सिद्धि समृद्धि है । तेरे आश्रय से हमने (ज्योतिः अगन्म) ज्योति प्राप्त करली है, हम (अमृताः अभूम) विषरहित होगये हैं, हम (पृथिव्याः अधि) पृथिवी के ऊपर उठकर (दिवं) द्यौ पर (आ अरुहाम) चढ़ गये हैं, हमने (देवान् स्वः ज्योतिः) दिव्यतायें, आनन्द और ज्योति (अविदाम) प्राप्त करली हैं ।

सत्र की सिद्धि है तू एक,
साधने पा तेरा अवलम्ब,
प्राप्त करली है हमने ज्योति ॥ १

होगये हैं हम अमृत और,
पृथिवी से ऊपर चढ़ गये,
द्यौ पर, पा तेरा अवलम्ब ॥ २

दिव्यतायें ज्योति आनन्द,
होगये हैं हमको सम्प्राप्त,
साधने तेरा कर अवलम्ब ॥ ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुरीय ब्रह्म

धीती वा ये अनयन्वाचो अग्रं मनसा वा येऽवदन्नृतानि ।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः ॥
स वेद पुत्रः पितरं स मातरं स सूनुर्भुवत्स भुवत्पुनर्मघः ।
स द्यामौर्णोदन्तरिक्षं स्वः स इदं विश्वमभवत्स आभवत् ॥
(अ० ७.१.१,२)

धीती वा ये अनयन् वाचः अग्रं,
मनसा वा ये अवदन् ऋतानि ।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानाः,
तुरीयेण अमन्वत नाम धेनोः ॥ १
सः वेद पुत्रः पितरं सः मातरं,
सः सूनुः भुवत् सः भुवत् पुनः मघः ।
सः द्यां और्णोत् अन्तरिक्षं स्वः,
सः इदं विश्वं अभवत् सः आ अभवत् ॥ २

जिससे दुहा जाता है, उसे धेनु कहते हैं। आपो वै धेनवः, जल निश्चय से धेनु हैं; उनसे रस दुहा जाता है। माता धेनुः, माता धेनु है, उसके स्तनों से शिशु पेय [दुग्ध] का दोहन [पान] करता है। पिता धेनुः, पिता धेनु है, उससे संरक्षण और पालन पोषण का दोहन होता है। गुरुर्धेनुः, गुरु धेनु है, उससे विद्या और ज्ञान का दोहन होता है। इयं पृथिवी वै धेनुः, यह पृथिवी निस्सन्देह धेनु है, उससे वे सब पदार्थ दुहे जाते हैं, जिनका सब प्राणी सेवन करते हैं। वाग्वै धेनुः, वाणी निस्सन्देह धेनु है, उससे शब्दों का दोहन होता है। आत्मा वै धेनुः, आत्मा निश्चय से धेनु है, जिससे जीवन के सब रसों का दोहन होता है। विश्वात्मा वै धेनुः, विश्व-आत्मा [परमात्मा] धेनु है, जिससे इस सबका और इस सबमें निहित आनन्द का दोहन होता है।

ब्रह्म शब्द का प्रयोग मन्त्र में ज्ञानसाधन के लिये हुआ है। जिसके द्वारा ब्रह्म की गवेषणा की जाती है, जिसके द्वारा ब्रह्म को जाना जाता है, उसे भी ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म [ब्रह्मज्ञान के साधन] चार हैं—धीतिर्वै ब्रह्म, मनो ब्रह्म, चित्तं वै ब्रह्म, आत्मा वै ब्रह्म—बुद्धि प्रथम ब्रह्म है, मन दूसरा ब्रह्म है, चित्त तीसरा ब्रह्म है, आत्मा चौथा ब्रह्म है।

देवों ने सृष्टि का विलोडन किया, सृष्टि में संसृष्ट सकल योनियों और पदार्थों का विश्लेषण किया। उन्हें सबमें सर्वत्र आनन्द ओत-प्रोत मिला। देवों को जिज्ञासा हुई, वह कौनसी धेनु है, जिससे इस सबका दोहन हुआ है, जिसमें से ये सब आनन्दामृत का दोहन कररहे हैं? वे उस धेनु की खोज करने लगे।

(ये) जिन्होंने (वा) तो (धीती) धीत्या, धीति—बुद्धि के आश्रय से उस धेनु की खोज की, वे (वाचः अग्रं) वाणी के अग्र को (अनयन्) लेगये। जिन देवों ने उस धेनु की खोज का आधार बुद्धि को बनाया, वे केवल वाणी के अग्र भाग को ले गये, उन्हें वाणी का अग्र भाग प्राप्त हुआ। तर्को वै वाचः अग्रम्—तर्क ही वाणी का अग्र है। जिन्होंने धीति को उस धेनु की खोज का साधन बनाया, तर्क ही उनके पल्ले पड़ा। वे तर्क-वितर्क में उलझ गये। वह धेनु ऐसी होगी वैसी होगी, वह धेनु ऐसी होनी चाहिये वैसी होनी चाहिये, वे इस प्रकार की बौद्धिक उड़ानों में उलझ गये। वे दार्शनिक [तार्किक, Philosopher] बन गये, किन्तु वे उस धेनु को न जान पाये। बुद्धि की दौड़ तर्क तक ही है। तर्क से आगे धीति की गति ही कहां है!

(ये वा) जिन्होंने तो (मनसा) मन के अवलम्ब से उस धेनु की खोज की, वे (ऋतानि अवदन्) ऋतों को बोलने लगे। ऋत नाम प्राकृत सत्यों अथवा नियमों का है। मनो वा ऋतम्। मन की गति ऋत तक ही है। ऋत से आगे वह जा ही नहीं सकता। जिन देवों ने धीति से आगे बढ़कर मन के द्वारा धेनु की खोज की, उन्हें प्रकृति में और प्राकृत नियमों में उस धेनु की सत्ता की कुछ झलक-सी दिखाई पड़ी, पर उस धेनु का साक्षात्कार न हुआ।

जिन्होंने तो तृतीय ब्रह्म चित्त के द्वारा उस धेनु की खोज की, वे प्रचेतना से प्रचेतित होकर तत्त्वज्ञानी बन गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें उस धेनु की प्रतीति तो हुई, पर उसका साक्षात् संदर्शन न हुआ।

जो तो (तृतीयेन ब्रह्मणा) तृतीय ब्रह्म से (वावृधानाः) संवृद्ध होते हुए, तृतीय ब्रह्म को पार करके आगे बढ़े, उन्होंने (तुरीयेण) चतुर्थ ब्रह्म आत्मा के द्वारा (धेनोः नाम) धेनु का नाम (अमन्वत) जाना। नाम से तात्पर्य है यहां नाम से नामित साक्षात् सत्ता। वचन, वदन और प्रचेतना से आगे बढ़कर जब देवों ने आत्म-अवस्थिति प्राप्त की, तब उन्होंने धेनु नाम से वाच्य उस परम सत्ता का अवबोध और साक्षात्कार किया।

धीति, मन और चित्त—तीनों ही भौतिक ब्रह्म हैं। इनके द्वारा अभौतिक धेनु का ज्ञान और साक्षात्कार कैसे हो सकता है। आत्मा अभौतिक ब्रह्म है। आत्मा के द्वारा ही अभौतिक धेनु का संज्ञान और साक्षात्कार होता है।

धीति से धेनु का चिन्तन होता है। मन से धेनु का मनन होता है। चित्त से धेनु के विषय में संचेतना होती है। आत्मा धेनु में संस्थित होकर धेनु से संजुष्ट होता है और धेनु का स्तन पान करता है। देवों ने जब आत्मा को धेनु में समाहित किया, तो उन्हें धेनु नाम से वाच्य सत्ता का संदर्शन हुआ, संज्ञान हुआ। संदर्शन होने पर ही संज्ञान होता है।

परमात्म-धेनु आत्मा का पिता है। परमात्म-धेनु आत्मा की माता है। आत्मा परमात्म-धेनु का पुत्र है। आत्मा परमात्म-धेनु का वत्स है। वत्स तो धेनु के साक्षात् संदर्शन में रहता है और धेनु के मघ [दुग्धैश्वर्य] का पान करता है। धीति, मन और चित्त के आवरणों को छिन्न-भिन्न करके आत्म-वत्स रम्भाता हुआ ब्रह्म धेनु के निकट पहुंचता है, (सः पुत्रः) वह पुत्र, वह आत्मपुत्र (पितरं) पितर को, पिता को, पितृधेनु को (वेद) जानता है, साक्षात् करता है, (सः) वह आत्म-वत्स (मातरं) माता को, मातृ-धेनु को (वेद) जानता है, साक्षात् करता है। आत्म-पुत्र ने जब धेनु का साक्षात्कार किया तो (सः) वह (सूनुः भुवत्) शिशु होगया, बछड़ा बन गया और (पुनः) पश्चात् (सः) वह (मघः) मघपेयी, दुग्धैश्वर्यपेयी, आनन्दपेयी (भुवत्) होगया। साक्षात् मघ बनकर उसने देखा कि (सः) उस धेनुब्रह्म ने (द्यां अन्तरिक्षं स्वः) द्यौ, अन्तरिक्ष और लोकान्तर को (और्णोत्) ओढ़ा हुआ है, (सः इदं विश्वं अभवत्) वह यह अखिल विश्व हुआ हुआ है, (सः आ अभवत्) वह सर्वस्व हुआ हुआ है। यह सर्वस्व और इस सर्वस्व में उसे वह धेनुब्रह्म ही दिखाई देरही है।

सूनु गाने लगा गीत,
"वह सजा खड़ा है,
द्यौ अन्तरिक्ष और लोकों की,
पहने हुए धवल पोषाक।
वह ही वह सर्वस्व,
सूनु सब निहित ममाहित,
उसकी ही प्यारी गोदों में॥"

शब्दों के ऊपर मत तैरिये। गहराई में जाइये और भेद पाइये। बुद्धि, मन और चित्त के परदों को चीरकर आत्म-ज्योति के प्रज्वलित प्रकाश में देखिये। तब ही उसका साक्षात्कार होगा।

खोजा धीति से देवों ने,
उलझ गये वाणी-विलास में,
खोजा जब मन से देवों ने,
लगे ऋतों का वर्णन करने।
बढ़कर जब तृतीय ब्रह्म से,
खोजा देवों ने तुरीय से,
सद्यः दर्शन हुआ उसका,
धेनु जिसका नाम।
है वह पुत्र, जानता है वह,
सूनु वह, होगया पुनः मघ,
द्यौ अन्तरिक्षादि वसन वह,
पहने हुए सजा खड़ा है।
हुआ हुआ है अखिल विश्व वह,
वह ही यह सर्वस्व,
सूनु हैं सब निहित समाहित,
उसकी ही गोदी में।

सोम-पान

अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति।
उप नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा॥ (ऋ० ८.४.११)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्वर्यो द्रावया त्वं सोमं इन्द्रः पिपासति ।
उप नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्र-हा ।।

भक्त का प्रियतम उपास्य देव वृत्र-हा है, वृत्र-नाशक है। वृत्र नाम रात्रि के अंधेरे का है, काली घटा का है। अंधेरी रात में जब काली घटा डेरा डालती है तो घटाटोप अंधेरा छा जाता है। प्रियतम का विछोह वह वृत्र है, जो भक्त की जीवन-रात्रि में घनघोर घटा और निपट अंधेरा छा देता है। विरह-सन्ताप में सन्तप्त होता हुआ जब भक्त प्रियतम की सम्प्राप्ति के साधनोपायों में संलग्न रहता चला जाता है, तो उसका वह प्रियतम देव उसके हृदयाकाश में पूर्ण चन्द्रवत् उदित होकर अन्धकार का हनन करता है और उसके जीवन में प्रकाश और सौन्दर्य की वृष्टि करता हुआ उसके इन्द्र [आत्मा] को सोम [आनन्द] का पान कराता है। उस समय उसका वही वृत्र-हा उपास्य देव सोम पान करानेवाला सोमी [साक़ी] बन जाता है।

मिलन की सुन्दर वेला में भक्त कहता है— मेरा (वृत्र-हा) अन्धकारनाशक प्रियतम देव (वृषणा हरी युयुजे) उभय वर्षणशील हरियों को जोड़े हुए, हर्षवर्षक ज्योति और सौन्दर्य-रूपी दो हरियों [हरणशीलताओं] को अपने रथ में जोड़े हुए, (नूनं) निश्चय से (उप आ च जगाम) समीप आ गया है, मेरे पहलू में समुपस्थित होगया है। मिलन के इस मुबारिक क्षण में मेरा (इन्द्रः) आत्मा (पिपासति) पान करना चाहता है। मेरे (अध्वर्यो) अविनश्वर सोमी ! (त्वं) तू स्वयं (सोमं) सोम (द्रावया) द्रवय, उंडेल।

आकाशस्थ चन्द्र की चन्द्रिका से भक्त की जीवन-रात्रि में उजाला नहीं होता। उसकी जीवन-रात्रियां तो तभी उजाली होती हैं, जब उसका प्रियतम दिव्य चन्द्र अपनी अखिल ज्योतियों और कलाओं सहित, अपनी सम्पूर्ण आभाओं और अपने अखिल सौन्दर्यों के साथ समुदित होकर भक्त के हृदय-पार्श्व में आ विराजता है।

अंधेरी रात और फिर अकेला ! ऐसी अवस्था में सोम की उपलब्धि कैसी और सोम का पान कैसा ? वह किसी और का, और किसी और के हाथ का, सोम पान करना भी नहीं चाहता। किसी और के पास सोम है भी कहां और कोई और सोम पिलायेगा भी क्या !

वृत्र-विनाशक देव आगया,
जोड़े हुए मनोहर रथ में,
ज्योति सौन्दर्य दो हरियां।
उपागमन से मिटा अंधेरा,
शुभागमन से हुआ उजाला,
मेरे जीवन की रजनी में।
सुमिलन की सुन्दर वेला में,
इन्द्र चाहता है अब पीना,
सोम उसी के सुन्दर कर से।
सोमी, अपने सुन्दर कर से,
मेरी इस हृदय-प्याली में,
दे भर-भर कर सोम सुनहला।
सोमी, तू शोभित पहलू में,
उजियाली है जीवन-रजनी,
अब तो पीने दे जी भर कर।
सोमी, सोम उंडेले जा तू,
रुच-रुच कर मैं पीता जाऊं,
सन्तत संगत रहकर तुझसे।

राजा

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ।। (ऋ० १.७३.३)

देवः न यः पृथिवीं विश्व-धाया उप-क्षेति हित-मित्रः न राजा। पुरःसदः शर्म-सदः न वीराः अन्-अवद्या पति-जुष्टा इव नारी ।।

जो राज्य का रंजन करता है, वही राजा है। राज्य के संचालन करनेवाले का नाम राजा है। जिसके हाथ में राज्य की बागडोर रहती है, उसे राजा कहते हैं। राज्य और राजा सदा से हैं और सदा रहेंगे। प्रजातन्त्र में भी राजा तो रहता ही है। प्रजातन्त्र में जो भी राज्यतन्त्र का सूत्रधार नेता होता है, वह राजा है। एकतन्त्र राज्य में राजा वंश-परम्परा के साथ चलता है और वंशानुवंश राज-घराना जारी रहता है। प्रजातन्त्र में अवधि-विशेष के उपरान्त राजा का चुनाव होता है। प्रत्येक अवस्था में राज्यनेता का नाम ही राजा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी तन्त्रप्रणाली का राजा क्यों न हो, जो राजा इस मन्त्र में वर्णित गुणों से युक्त होता है, वह ही इस वसुन्धरा को उपनिवासता है, वह ही भूमि को बसानेवाला है, वही राजश्री को सुशोभित करता है।

(यः राजा) जो राजा—

१) (देवः न विश्व-धाया) देव के समान सर्व-धारक,

२) (हित-मित्रः न पुरःसदः) हितैषी मित्र के समान पुर-स्थित,

३) (वीराः न शर्म-सदः) वीरों के समान शर्म-स्थित,

४) (पति-जुष्टा अनु-अवद्या नारी इव) पति-परायणा अनिन्द्या नारी के समान, होता है।

वह ही (पृथिवीं) पृथिवी को (उप-क्षेति) बसाता है।

सच्चे राजा अथवा राज्यनेता का प्रथम गुण है देव के समान सर्व-धारक होना। प्रत्यक्षतः सर्वधारक देव से तात्पर्य यहां परमात्मदेव से है। जिस प्रकार परमात्मदेव प्राणी-मात्र के प्रति निष्पक्ष रहता है और न्यायपूर्वक प्राणी-मात्र का धारण पोषण करता है, उसी प्रकार एक सच्चा राजा अपने राज्य के सब प्रजाजनों के साथ बिना पक्षपात समता से बर्ताव करता है और सबका समान रूप से पालन, पोषण और समृद्धिकरण करता है। अच्छे राजा का प्रथम लक्षण यह है कि वह अखिल जनता का बिना किसी भेदभाव के सुखधारण और दुःखनिवारण करता है।

आदर्श राजा अथवा राज्यनेता हितैषी मित्र के समान पुर-स्थित होता है। पुर का प्रयोग यहां राज्यरूपी पुर के लिये हुआ है अथवा जनतारूपी पुर के लिये हुआ है। राज्यपुर में स्थित रहने से तात्पर्य है राज्य की जनता के निकट सम्पर्क में रहना। एक आदर्श राजा अथवा एक आदर्श राज्यनेता सदा जनता के मध्य में निवास करता है और जनता के साथ सदा निकट सम्पर्क स्थापित रखता है। जनसम्पर्क से ही जन-सेवा होती है। ऐसा राजा या राज्यनेता भूमि पर सुवास करता है और भूवासियों का सुख में निवास कराता है।

एक उत्तम राजा या राज्यनेता वीरों के समान शर्म-स्थित रहता है। वैदिक वाङ्मय में शर्म-सदः का अर्थ है जितेन्द्रिय। वैसे शर्म का अर्थ है गृह और सुख, तथा सदः का अर्थ है स्थित रहनेवाला। शर्म शब्द के गृह और सुख, दोनों अर्थ एक दूसरे के पूरक हैं। गृह ही सुख का स्थान है। मनुष्य जितना सुख अपने गृह में अनुभव करता है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं करता है। शरीर ही मानव का अपना निज का घर है। शरीर-गृह में स्थित होने का अर्थ है शरीरेन्द्रियों पर अधिकार या संयम रखना। तद्विपरीत स्थिति का नाम है शरीर-गृह से बाहर होना। जितेन्द्रियता परम वीरता है। वीर ही जितेन्द्रिय होता है। जितेन्द्रिय ही परम वीर होता है। जो राजा या राज्यनेता अपने शरीर-गृह में निवास करता है, अपनी इन्द्रियों पर संयम रखता है, सर्वथा जितेन्द्रिय होता है, वह ही इस वसुन्धरा पर सुख शान्ति की बस्तियां बसाता है।

एक अच्छा राजा या राज्यनेता पतिपरायणा अनिन्द्या नारी के समान स्वभार्यापरायण होता है। जैसे एक पति-परायणा पतिव्रता नारी अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष के शरीर का स्पर्श नहीं करती है, वैसे ही एक सच्चा राजा अथवा राज्यनेता अपनी भार्या के अतिरिक्त अन्य किसी नारी के शरीर का स्पर्श नहीं करता है। दाम्पत्य-पवित्रता एक अच्छे राजा या राज्यनेता का अनिवार्य गुण है। जिस राजा या राज्यनेता का दाम्पत्य अंग अपवित्र होता है, वह नितान्त निकृष्ट और भ्रष्ट होता है। जो राजा या राज्यनेता पत्नीपरायण रहता हुआ, न तो अयुक्त दृष्टि से पर नारी की ओर देखता है और न ही पर नारी के शरीर के किसी भी अंग का स्पर्श करता है, वही राजा या राज्यनेता भूनिवासिनी जनता में सदाचार की स्थापना करके वसुधा को पावनस्थली बनाता है।

देव समान सर्व का धारक,
मित्र-हितैषी सम जन-सेवी,
वीरों के समान इन्द्रिय जित,
पतिजुष्टा अनिन्द्य नारी सम,
होता जो राजा, सुधन्य वह।
वही बसाता है धरणी को,
धरणी पर सुधन्य वह राजा॥

कोई विरला

को अस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अस्य।
कदस्य चित्रं चिकिते कदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः॥ (ऋ० ४.२३.२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कः अस्य वीरः सधमादं आप सं-आनंश सुमतिभिः
कः अस्य । कत् अस्य चित्रं चिकिते कत् ऊती वृधे
भुवत् शशमानस्य यज्योः ॥

(कः) कौन है ऐसा (वीरः) वीर, जिसने (अस्य) इसके (सध-मादं) सध-माद को (आप) प्राप्त किया है । सध-माद का अर्थ है सह-आनन्द, साथ-साथ रहने का आनन्द । परस्पर मिलकर आनन्द भोगने का नाम सध-माद है । कोई किसी के साथ किलोल कररहा है तो कोई किसी के साथ । (कः) कोई विरला ही है ऐसा (वीरः) वीर आत्मा, जिसने (अस्य) इस प्रियतम आत्म-सखा का (सध-मादं आप) सध-माद प्राप्त किया है ।

(कः) कौन है ऐसा (वीरः) वीर, जिसने (सुमतिभिः) सुमतियों द्वारा (अस्य) इसकी (सं-आनंश) संगति की है । उसका सधमाद उसी को तो प्राप्त होगा, जिसने उसकी संगति प्राप्त की हो, जो उससे संगत हुआ हो । वधू वर से संगत होरही है । मित्र मित्र से संगत होरहा है । सखी सखी से संगत होरही है । (कः) कोई विरला ही है ऐसा (वीरः) वीर, जिसने (सुमतिभिः) प्रिय चिन्तनों द्वारा (अस्य) इसकी (सं-आनंश) संगति करली है ।

किस वीर ने (कत्) कदा, कब (अस्य) इसके (चित्रं) चित्र को, वैचित्र्य को (चिकिते) जाना है । वह चित्र है । वह अद्भुत है । उसकी विचित्र लीला का पार किसने पाया है । कोई विरला ही है ऐसा वीर साधक, जिसने (कत्) कभी (अस्य चित्रं) इसकी विचित्र लीला को (चिकिते) जाना पहचाना है ।

कौन वीर (कत्) कब (ऊती वृधे) रक्षा और वृद्धि के लिये, इस (शशमानस्य यज्योः) प्रशस्त संगाती का (भुवत्) हुआ है । आत्मरक्षा और आत्मवृद्धि के लिये कोई किसी का होरहा है तो कोई किसी को अपना रहा है । कोई विरला ही वीर साधक है, जो (कत्) कभी (ऊती वृधे) रक्षा और उन्नति के लिये, इस (शशमानस्य यज्योः भुवत्) स्तुत्य संगाती का होगया है ।

ऐसा वीर कोई विरला है,
पाया इसका सह-आनन्द ।
विरला कोई सु-मतियों से,
इससे संगत हो पाया है ।
किसी विरल ने कभी कदा ही,
जानी इसकी अद्भुत लीला ।
कोई विरल ही कभी कदा ही,
इसका हुआ वृद्धि-रक्षा-हित ।

गीता—योग

—३५—

[तीसरा अध्याय]

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ २७

(कर्माणि) कर्म (सर्वशः) सब प्रकार से (प्रकृतेः गुणैः क्रियमाणानि) प्रकृति के गुणों से क्रियमाण हैं । (अहंकार-विमूढ-आत्मा) अहंकार से मोहित आत्मा (इति मन्यते) ऐसा समझता है कि (अहं कर्ता) मैं करनेवाला हूं ।

प्रकृति से तात्पर्य यहां त्रि-गुणात्मक प्रकृति से नहीं है, अपि तु स्वभाव-संस्कारजन्य प्रकृति से है । जन्म-जन्मान्तर और इस जन्म के स्वभाव संस्कार के अतिरिक्त माता पिता और समाज के स्वभाव संस्कार का भी प्रभाव मानव की प्रकृति में अन्तर्निहित रहता है । स्व, पैत्रिक तथा सामाजिक स्वभाव संस्कार से मानव की जैसी प्रकृति बन जाती है, उसमें उसी प्रकार के गुणों का समावेश होता रहता है । उसमें जैसे गुणों का समावेश रहता है, वह सर्वशः और सर्वतः उसी प्रकार के कर्म करता है ।

विषय के स्पष्टीकरण के लिये यहां एक दो उदाहरण देना उपादेय होगा ।

स्वभाव संस्कार से एक मनुष्य की क्रोधी प्रकृति बन गयी है । क्रोधी प्रकृति के कारण उसमें कटुता, उग्रता, चिड़चिड़ापन, असहनशीलता आदि क्रोधजन्य गुण समाविष्ट हैं । क्रोधी मनुष्य की सारी चेष्टायें और उसके सारे कर्म इन गुणों से प्रेरित और प्रभावित रहते हैं ।

एक दूसरा मनुष्य है । स्वभाव संस्कार से उसकी साधु प्रकृति बन गयी है । साधु प्रकृति के कारण उसमें मृदुता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुशीलता, सोम्यता, सहनशीलता, विनम्रता, सौजन्य, शालीनता आदि गुणों का समावेश है। किसी भी अवस्था और परिस्थिति में उसकी सारी चेष्टायें और उसके सारे कर्म इन गुणों से प्रेरित और प्रभावित रहते हैं।

क्रोधी मनुष्य को प्रायः अपनी कृतियों पर पश्चात्ताप हुआ करता है और वह चाहा करता है कि भविष्य में वह अपनी क्रोधी प्रकृति के प्राकृत गुणों से अभिभूत न होने पाये, किन्तु अवसर आने पर वह पुनः पुनः उन गुणों से अभिभूत होता रहता है। इस प्रकार वह उन गुणों से अपने को सर्वशः वशीभूत और लाचार पाता है और अपने प्राकृत गुणों के अनुसार कर्म कर बैठता है।

एवमेव साधु मनुष्य को जब संसार सताता और अपमानित करता है तो कभी कभी उसमें उबाल आया करता है और वह चाहा करता है कि वह अपने सतानेवालों और अपमानकर्ताओं को उन्हीं के सिक्कों में अदायगी करे, किन्तु अवसर आने पर वह अपने प्रकृतिजन्य गुणों से अपने को सर्वशः प्रेरित और प्रभावित पाता है और अपने प्राकृत गुणों के अनुसार ही व्यवहार करता है।

कहने को तो अर्जुन ने कह दिया था कि मुझे राज्य लेकर क्या करना है, मैं युद्ध नहीं करूंगा, इत्यादि। किन्तु उसकी वे बातें कहने-मात्र की ही थीं। क्षणिक वैराग्य का नशा उतर जाने पर वह फिर कौरवों के प्रति अवश्यमेव उत्तेजित होता और शस्त्रास्त्र संभालता। उसकी प्रकृति उग्र प्रकृति थी और तज्जन्य शौर्य, वीर्य आदि गुण भी उसमें विद्यमान थे ही। अतः यह हो ही नहीं सकता था कि अर्जुन अपनी प्रकृति के गुणों के विपरीत कार्य कर सकता। युद्ध तो वह करता ही।

किये जानेवाले कर्म क्रियमाण कर्म कहलाते हैं। जो कर्म किये जाते हैं, वे प्रकृति के गुणों के अनुसार ही किये जायेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अतः अर्जुन का कहना कि मैं यह नहीं करूंगा, मैं वह नहीं करूंगा, मैं यह करूंगा मैं वह करूंगा—ये सब बेकार बातें थीं।

क्रोधी प्रकृति वाला मनुष्य साधना द्वारा जब तक अपने स्वभाव संस्कार को शोधकर अपनी प्रकृति को साधु प्रकृति नहीं बनायेगा, तब तक वह न साधु गुणों से युक्त हो सकता है, न साधु कर्म कर सकता है। एवमेव साधु प्रकृति वाला मनुष्य जब तक अपनी साधु प्रकृति को बदल कर असाधु प्रकृति नहीं बनाता है और असाधु गुणों से युक्त नहीं होता है, तब तक वह असाधु कर्म नहीं कर सकता है।

कर्म तो स्व प्रकृति के गुण कराते हैं, आत्म-अहंकार से कुछ बनता-बनाता नहीं है। जब तक आत्मा अपनी प्रकृति को आत्मिक अथवा दैवी नहीं बना लेता है, तब तक वह अपने प्राकृत गुणों के सामने अपने को निरुपाय पाता है। इसी भाव का द्योतन भगवान् कृष्ण इन शब्दों में कर रहे हैं—

प्रकृति के गुणों से किये जाते हैं कर्म सर्वशः।
अहंकार से मोहित आत्मा मानता कर्ता स्वयं को ॥

साधना

—३९—

[संकल्प-शमन का अभ्यास]

संकल्प की आवश्यकता केवल बाह्य चेष्टाओं के लिये है। बहिर्मुख होकर बाह्य कर्म करने के लिये ही संकल्प का उपयोग है। वृत्ति के बाह्य होने पर ही संकल्प उत्तेजित होकर विकल्पों, चिन्तनों और विचारों की सृष्टियां रचता है। वृत्ति के अन्तःस्थ होने पर संकल्प का शमन होता है, संकल्प अनुद्बुद्ध रहता है। बाह्य के लिये ही संकल्प की आवश्यकता है, अन्तः के लिये नहीं।

जागृति और स्वप्न—इन दो अवस्थाओं में संकल्प सक्रिय रहता है। सुषुप्ति अवस्था में संकल्प मनसहित सुषुप्त होजाता है। सुषुप्ति-अवस्था में चित्त, मन, बुद्धि आदि सूक्ष्म इन्द्रियों तथा ज्ञान-कर्म-इन्द्रियों सहित सारा शरीर सुषुप्त होजाता है। परिणामस्वरूप संकल्प, विकल्प, मनन, चिन्तन और गति—सब सुषुप्त और निश्चेष्ट होजाते हैं। जब सुषुप्ति समाप्त होती है, तो प्रथम सूक्ष्मेन्द्रियां सचेत होती हैं और उनके सचेत होते ही मन में संकल्प उठने प्रारम्भ होते हैं। संकल्पों के उद्बुद्ध होते ही सारी इन्द्रियां सचेत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जागृत होकर विविध प्रकार की गति और चेष्टा करने लगती हैं।

संकल्प-शमन का अभ्यास प्रारम्भ करने से पूर्व साधकों को जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओं का साक्षात्कार कर लेना चाहिये। इन तीनों अवस्थाओं का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने के लिये इच्छा-शक्ति का प्रयोग करना होगा। यह समझ लेना चाहिये कि इच्छा-शक्ति आत्मा की उस निष्क्रमक शक्ति का नाम है, जिसके द्वारा वह अपनी सूक्ष्म स्थूल अथवा अन्तः बाह्य इन्द्रियों द्वारा विश्व के मनोमय जगत् में कार्य करती है।

त्रि-अवस्थाओं का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करने की सरल विधि यह है। आप जब भी सोयें, तब ही, प्रथम अपने बिस्तर पर, पुरुष बांयी करवट से और स्त्री दायीं करवट से, नेत्र बन्द करके लेट जायें। फिर अपनी इच्छाशक्ति द्वारा स्वप्न-क्षेत्र को पार करके सुषुप्ति में प्रवेश करने का उपक्रम करें। ऐसा करते हुए आप अपनी इच्छाशक्ति और चित्त की वृत्ति को पूर्णतया यह अनुभव करने में लगायें कि आपकी जागृतावस्था किस प्रकार स्वप्नावस्था में लीन होती है और स्वप्नावस्था किस प्रकार सुषुप्ति में विलीन होती है। इसका नित्य निरन्तर अभ्यास करते करते कुछ काल में आपको प्रत्यक्ष यह अनुभव होजायेगा कि जागृति क्या वस्तु है, जागृति और स्वप्न की सन्धि में क्या स्थिति होती है, स्वप्न क्या वस्तु है, स्वप्न और सुषुप्ति की सन्धि में क्या स्थिति होती है और सुषुप्ति क्या वस्तु है तथा उसकी क्या स्थिति है।

जब सुषुप्ति में प्रवेश करके उसमें स्थित रहने तक का प्रत्यक्ष अनुभव होजाये, तब यह साक्षात् करने का अभ्यास कीजिये कि सुषुप्ति से जागृति में किस प्रकार वापस आया जाता है। इसका अभ्यास बहुत सरल है। जब आप सोने लगें तो अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से यह निर्णय करके सोयें कि सुषुप्ति से जागृति की ओर लौटने पर मुझे यह साफ़ मालूम होना चाहिये कि सुषुप्ति से लौटते हुए सुषुप्ति और स्वप्न की सन्धि पर कैसी स्थिति होती है और स्वप्न और जागृति की सन्धि पर कैसी।

जागृति से सुषुप्ति और सुषुप्ति से जागृति, दोनों प्रकार के अभ्यासों में आप अपनी इच्छाशक्ति और चित्तवृत्ति को यह अनुभव करने पर केन्द्रित रखिये कि प्रत्येक अवस्था और स्थिति में संकल्प की क्या क्या स्थिति रहती है और क्या क्या रूप रहता है।

अध्यापक

[१२]

अध्यापन–कला

आदरणीय अध्यापको,

अध्यापन-कार्य एक पावन कला है और अध्यापक है एक पुनीत कलाकार—प्रत्येक अध्यापक का यह आदर्श-वाक्य [मोटो] होना चाहिये।

अध्यापन में क्रम और पद्धति का सर्वोपरि स्थान है। अपने विषय के पाठ को पढ़ाने से पूर्व अध्यापक के मस्तिष्क में यह चित्र स्पष्टतया खिचा होना चाहिये कि उस पाठ को किस क्रम और किस पद्धति से पढ़ाया जाना है। पढ़ाने का क्रम वैज्ञानिक और पढ़ाने की पद्धति बहुत रोचक होनी चाहिये। साथ ही क्रम ऐसा स्वाभाविक और पद्धति ऐसी सुबोध हो कि निम्नतम कोटि का विद्यार्थी भी उसे पूर्णतया समझ जाये। क्रम और पद्धति मन्द-बुद्धि विद्यार्थियों को दृष्टि में रखकर व्यवस्थित करनी चाहिये।

अध्यापक को यह स्मरण रहना चाहिये कि प्रसन्न और आतंकरहित वातावरण में विद्यार्थी किसी भी विषय को बड़ी सरलता से समझ लेते हैं। आतंक और विषाद के वातावरण में विद्यार्थियों के मस्तिष्क और हृदय में ऐसी प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न होती है कि वे पठित और स्मृत विषय में भी गड़बड़ा जाते हैं।

अध्यापन में व्यवधान बड़ा हानिकारक होता है। शिक्षा-विभाग में सर्वाधिक छुट्टियां होती हैं। अध्यापकों को अपने सब कार्य छुट्टियों में कर लेने चाहियें। अध्यापन-सत्र में अध्यापकों को कभी एक दिन के लिये भी अनुपस्थित न होना चाहिये।

अध्यापक का सारा प्रयत्न अपने विद्यार्थियों में योग्यता का सम्पादन करके शिक्षा के स्तर को ऊंचा करने की दिशा में होना चाहिये, पूछे जाने योग्य प्रश्नों के उत्तर रटाकर पास कराने की दिशा में नहीं। जैसे तैसे पास करादेने की प्रवृत्ति से शिक्षा का स्तर गिर जाता है।

—विदेह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थी

[१२]

अध्ययन–कला

पुत्रियो और पुत्रो,

अध्ययन एक ऐसी कला है, जिसमें निष्णात होने पर तुम उभय लोकों की सम्पदा से युक्त होजाओगे।

सर्वप्रथम तुम्हें अध्ययनशील बनना चाहिये। सुनो तो अध्ययनात्मक भावना से सुनो। देखो तो अध्ययनात्मक दृष्टि से देखो। करो तो अध्ययनात्मक पद्धति से करो। पढ़ो तो अध्ययनात्मक वृत्ति से पढ़ो।

तुम्हें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि केवल क्लास का कमरा ही तुम्हारी अध्ययनशाला नहीं है। तुम जहां कहीं भी हो, वहीं तुम्हारी अध्ययनशाला है।

अध्ययन-कला का प्रथम अंग है घड़ी की सुई से बंधा हुआ नियमित जीवन। तुम्हारे दैनिक क्रम में एक-एक सैकिण्ड का निश्चित कार्यक्रम होना चाहिये। तुम्हारा जीवन घड़ी की तीनों [घण्टा, मिनट, सैकिण्ड, की] सुइयों की नोक पर घूमनेवाला होना चाहिये।

अध्ययन-कला का दूसरा अंग है मस्तिष्क की पवित्रता और एकाग्रता। जहां जब जिस विषय का अध्ययन करो, जहां जब जो कार्य करो, विचारों की पवित्रता और चिन्तन की एकाग्रता से करो।

अध्ययन-कला का तीसरा अंग है निरलस और मित-भाषी होना। आलस्य और बकवास से दूर रहोगे तो अध्ययन के लिये पर्याप्त समय मिल सकता है।

अध्ययन-कला का चौथा अंग है पूर्ण संयम और कठोर अनुशासन। अपने नेत्रों व श्रोत्रों पर कठोरता के साथ नियन्त्रण और अपने आप पर कठोर अनुशासन रखो। कभी भी आंखों व कानों को इधर उधर मत भटकाओ और कभी भी आपे से बाहर मत होओ। —विदेह

पारिवारिक संशोधन और सामाजिक परिष्कार

'सविता' के दिसम्बर १९५७ के अंक में "गृहस्थाश्रम" प्रकरण में मैंने लिखा था कि "पारिवारिक संशोधन और सामाजिक परिष्कार" के आयोजन की रूपरेखा पर मैं प्रकाश डालूंगा।

समाज और परिवार एक दूसरे से इसी प्रकार गुथे हुए हैं, जिस प्रकार शरीर में इन्द्रियां और माला में मनके। प्रत्यक्षतः यह आवश्यक है कि गृहसंशोधन और सामाजिक परिष्कार की योजना का सहसंचालन हो।

जिन बुराइयों से आप अपने परिवार को मुक्त रखना चाहते हैं, उन बुराइयों से आप अपने समाज को भी मुक्त कीजिये। आप चाहते हैं कि आपके बच्चे अपशब्द [गालियां] न सीखें। माना कि आपके घर में कोई भी व्यक्ति अपशब्दों का प्रयोग नहीं करता है। पर आपके अड़ोस पड़ोस में लोग अपशब्दों का प्रयोग करते हैं। आपके बच्चे वहीं से गालियां देना सीख जाते हैं। बड़े होने पर आपके बच्चे स्कूल में पढ़ने जाते हैं। वहां अध्यापक और विद्यार्थी गालियों का प्रयोग करते हैं। आपके बच्चे वहां से गालियां सीखते हैं।

यह ठीक है कि आपके घर में कुचेष्टायें नहीं की जाती हैं। फिर भी आपके बच्चे कुचेष्टायें करते हैं, क्योंकि वे चारों तरफ़ होनेवाली कुचेष्टाओं को देख-देख कर वैसा करना सीख गये हैं।

आपके घर में कोई भी व्यसनी नहीं है। फिर भी आपके बच्चे व्यसनी बन रहे हैं, क्योंकि उनके साथी संगाती व्यसन-ग्रस्त हैं।

माता पिता के परम आस्तिक और सदाचारी होने पर भी उनकी सन्तान सामाजिक प्रभाव से नास्तिक और दुराचारी होती चली जारही है।

पारिवारिक और सामाजिक जीवन का ह्रास अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका है। यदि समय रहते उपाय न किया गया तो राष्ट्र और देश की महती विनष्टि होगी। योजनाबद्ध और सुसंगठित रूप से दीर्घ काल तक निरन्तर कार्य करते रहने पर ही संकट का निवारण होगा। इसके लिये गली-गली और मोहल्ले-मोहल्ले में "समाज-सेवा-समितियों" का सुगठन करना होगा। तब ही इस लेखमाला की सार्थकता सिद्ध होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-धर्म

[६]

सविता के अगस्त १९५७ के अंक तक 'मानव-धर्म' लेखमाला के पांच लेख प्रकाशित होने पाये थे कि वह लेखमाला कतिपय कारणों से चालू न रह सकी। अब उसे पुनः प्रारम्भ किया जाता है।

मानव-धर्म के विकास में सबसे बड़ी बाधा सम्प्रदायवाद की है। जल और अग्नि का समन्वय हो सकता है, पर धर्म और सम्प्रदाय का समन्वय कदापि नहीं हो सकता। सम्प्रदायवाद ने मानव जाति को जितना विभक्त किया है, उतना अन्य किसी ने नहीं किया है। सम्प्रदायवाद आज भी भयंकरता के साथ मानव जाति को विभक्त करता चला जा रहा है। साथ ही सम्प्रदायवाद ने मानव जाति की अपार हानि भी की है, मानवता की जड़ों पर कुठाराघात भी किया है और मानव की बुद्धि पर जड़ता और अन्धविश्वासों का परदा भी डाला है।

प्रत्येक सम्प्रदाय किसी एक व्यक्ति के व्यक्तित्व के चारों ओर उसी प्रकार फैला हुआ है, जिस प्रकार मकड़ी के चारों ओर उसका अपना जाला पूरा हुआ होता है और एक राजनीतिज्ञ के चारों ओर उसकी कूटनीतियों का जाल बिछा हुआ होता है। प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रवर्तक का जीवन हीं उस सम्प्रदाय के अनुयायियों का धर्म होरहा है। और मजा यह है कि सम्प्रदायवादी लोग एक ओर तो अपने सम्प्रदाय के प्रवर्तक के एक एक शब्द, उसकी प्रत्येक कृति को प्रमाण मानते हैं और दूसरी ओर उन पर तनिक भी आचरण न करते हुए भी वे बड़े धर्मात्मा माने जाते हैं।

सम्प्रदायवाद ने अनेक कट्टर वर्गों की ऐसी सृष्टियां रच दी हैं कि प्रत्येक वर्ग दूसरे वर्ग को असभ्य और अधार्मिक समझता है। सम्प्रदाय ने मनुष्यों की आकृति, खान पान, रहन सहन और वेश भूषा तक को जकड़ दिया है, मन और बुद्धि को कुण्ठित कर दिया है, उदारता और सौजन्य पर कठोर चोट की है, घृणा और विलगता को बढ़ावा दिया है।

सम्प्रदाय मनुष्यों को तत्त्व की खोज और सत्य का अन्वेषण करने से रोकता है। रूढ़ियों, रीतिरिवाजों और अतात्त्विक कर्मकाण्डों में जकड़ कर सम्प्रदाय मनुष्यों को मानसिक दासता में जकड़ता है। सम्प्रदायों ने मानवीय विकास की निर्बाधता को निरुद्ध करके एक ऐसा दुर्गन्धित वातावरण उत्पन्न कर रखा है, जिसने मानव को मानवता के सुगन्धित उद्यान में प्रवेश पाने से हठात् रोक रखा है।

साम्प्रदायिकता की संकुचित कोठरियों के निवासी जब तथाकथित सर्वधर्म-सम्मेलन करते हैं, तो विचारवानों को हंसी आती है। धर्म के साथ सर्व शब्द का प्रयोग कैसा? धर्म तो मानव जाति का एक ही है और वह है मानव-धर्म अथवा मानवता। मानव-धर्म की स्थापना के समर्थकों को चाहिये कि वे अपने आपको साम्प्रदायिकता से मुक्त करें, अपने अपने सम्प्रदाय से अपना पिण्ड छुड़ायें और साम्प्रदायिक चिह्नों का परित्याग करदें। "मैं ईसाई हूं। मैं बौद्ध हूं। मैं मुसलमान हूं। मैं जैन हूं। मैं पारसी हूं। मैं सिख हूं", ऐसा कहना बन्द करके, "मैं मानव हूं" ऐसा कहना प्रारम्भ करदें। "मेरा पारसी धर्म है। मेरा इस्लाम धर्म है। मेरा ईसाई धर्म है", इस प्रकार की उक्तियां बन्द करके, "मेरा धर्म मानव-धर्म है। मेरा धर्म मानवता है", ऐसी उक्तियां बोलें।

मैं मानव हूं।

मेरा धर्म मानव-धर्म है।

मेरा धर्म मानवता है।

सस्नेह मानव की सेवा मेरा कर्मकाण्ड है।

कला के नाम पर

त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी (य० ३२.५)—तीन ज्योतियों से युक्त होने पर सोलह कलाओं का विकास होता है। तीन ज्योतियों से शून्य रहते हुए कलायें अश्लील अभिशाप बन जाती हैं।

बुद्धि, मन और आत्मा—ये तीन जब ज्योतिष्मान होजाते हैं, तब ही व्यक्ति, जाति और राष्ट्र सोलहों कलाओं से कलान्वित होते हैं। अन्यथा तो कलायें व्यक्ति, जाति और राष्ट्र के अधःपतन का कारण होती हैं।

कला के नाम पर आज भारत राष्ट्र में जो कुछ होरहा है, वह सर्वथा अवाञ्छनीय है। उससे पाठशालाओं, स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में कामुकता और स्त्रैणता फैल रही है। विद्यार्थी-अवस्था हमारे कुमार कुमारियों का एक अपरिपक्व और सुकोमल सवन है। इस सवन में उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृत्य, वाद और विलासिता में न रंग कर शौर्य, वीर्य, संयम और सात्विकता में ढाला जाना चाहिये, न कि रसिकता और कामाचार में आसक्त करना।

राष्ट्र जिन परिस्थितियों में से गुज़र रहा है, उनमें तो अभी नृत्य, वाद और विलास के लिये कोई समय और स्थान न होना चाहिये। सांस्कृतिक आयोजनों के रूप में देश-विदेशों में जो कुछ किया जाता रहा है, उससे भारतीयता बहुत लज्जित और कलंकित हुई है।

शासन और जनता दोनों को ही गम्भीरतापूर्वक विचार करके इस भयंकर भूल का सद्यः सुधार करना चाहिये। ऐसा न किया गया तो भारत की भावी सन्तान का भाग्य तो बिगड़ेगा ही, भारत का भाग्य भी फूट जायेगा।

ब्राह्मण और संन्यासी

राज्याश्रय से ब्राह्मण और संन्यासी का सम्पूर्ण तप, तेज और ओज नष्ट हो जाता है। जिस संन्यासी को और जिस ब्राह्मण को अपने तप, तेज और ओज की रक्षा करनी है, उसे राज्याश्रय से उसी प्रकार दूर रहना चाहिये, जिस प्रकार पतिव्रता नारी पर-पुरुष से दूर रहती है।

राज्यकृपा से ब्राह्मण और संन्यासी का आत्मबल, ब्राह्मबल और मनोबल—तीनों प्रकार का बल नष्ट होजाता है। जो संन्यासी और जो ब्राह्मण अपने इन तीनों बलों को अक्षुण्ण रखना चाहे, उसे राज्यकृपा से उसी प्रकार दूर रहना चाहिये, जिस प्रकार धर्मात्मा अधर्म से दूर रहता है।

एक नज़र

तुमने मुझे एक नजर देखा और मैं कमल-पुष्प के समान माया-सलिल से ऊपर उठ गया। मैं वासनारहित और निर्विकार होगया। इच्छाओं का जाल छिन्न भिन्न होगया। अब न कोई इच्छा है न कामना। अब न कोई अभिलाषा है न एषणा। तुम्हारी एक नज़र ने वह काम कर दिया, जिसे मेरी युग-युग की साधना न कर सकी।

ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्।
ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्॥
जीऊं में चिरकाल तुम्हारी संदृष्टि में।
युग-युग देखूं तुम्हें तुम्हारी संसृष्टि में॥
करो न ओझल मुझे प्रिय दृष्टि से अपनी।
करूं न ओझल तुम्हें प्रिय दृष्टि से अपनी॥

मन

॥ मन तू हरि में मन अटका रे॥
माया की मृग-तृष्णाओं में,
मन को मत भटका रे॥
हरि से हरि को मांग अरे मन,
सकल मोह छिटका रे॥
टूट जायें मन भव के बन्धन,
दे ऐसा झटका रे॥
मनसा त्याग अरे मन मन की,
रहे न कुछ खटका रे॥ —विदेह

हृदय की तलाश

जला शरीर जहां, जल गया वहीं हृदय।
'विदेह' राख में मेरी, वह ढूंढ़ते क्या हैं॥

सविता—परिवार से

बहिनो और भाइयो,

युग की दौड़ में हम बहुत पिछड़ रहे हैं। पारिवारिक भावना से सुसंगठित होकर कार्य करने से ही हम वेद की पावन दिव्य शिक्षाओं को व्याप सकेंगे। ज़रा विचार तो कीजिये कि विश्व-व्याप्ति की दृष्टि से आज संसार में वेद की स्थिति क्या है। क्या इस स्थिति से आप सन्तुष्ट हैं? नहीं, कदापि नहीं। तो फिर अपने कर्तव्य के पालन में आप अधिक सचेष्ट और जागृत होजाइये।

सहयोग और साधनों के अभाव में भी हमने वेदज्ञान की विश्वव्याप्ति की दिशा में जो जौहर किया है, वह आपसे छिपा नहीं है। यह स्मरण रखिये कि इस युग में सहयोग और साधनों के बिना कोई व्यापक और विशाल कार्य होसकना न शक्य है, न सम्भव। इस दिशा में आप नित्य निरन्तर अपना चिन्तन और प्रयत्न जारी रखिये।

एक कार्य जो आपको निरन्तर करते रहना है, वह है सविता व संस्थान-साहित्य का जनता में अधिकाधिक परिचय कराना और खपाना।

आपके शुभ सहयोग का अभिलाषी,
चांदमल चंडक,
मन्त्री, वेदसंस्थान, अजमेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर बाहर

बाहर से आसक्तवत् कर्मरत रहो। अन्दर से नितान्त अनासक्त जीवनमुक्त विदेह रहो।

—विदेह

मेरा स्वभाव

शुभारम्भ करके जीवन के अन्तिम क्षण तक तदर्थ साधना करते रहना और एकाकी भी अदम्यता के साथ जौहर पर जौहर करते हुए आगे बढ़ते रहना मेरा स्वभाव है।

—विदेह

सावधान

भारत के कतिपय प्रदेशों में ऐसी प्रथा है कि विवाह के अवसर पर संस्कार प्रारम्भ करने से पूर्व पुरोहित वर वधू को तीन बार सावधान करता है। दो जीवनों की सन्धि में दोनों को सावधान करदेना युक्तियुक्त ही है।

प्रत्येक सन्धि में सावधानता की उपादेयता प्रत्यक्ष है। दो ऋतुओं की सन्धि में यदि सावधानी नहीं वर्ती जाती है तो प्रायः मनुष्य रोगग्रस्त होजाते हैं।

हमारे राष्ट्र की यह सन्धिवेला है। मैं अपने राष्ट्र को तीन बातों से सावधान करदेना चाहता हूं। वह है सभ्यता, संस्कृति और आचार के विषय में।

भारत एक प्राचीन राष्ट्र है। वह सदा से संसार को संस्कृति, सभ्यता और आचार की शिक्षा देता चला आया है। उसकी संस्कृति, सभ्यता और आचार जीवन के सनातन मूल्यों पर संस्थित और समंकित हैं।

भारत की संस्कृति सुसंस्कारों पर आश्रित है। भारत की सभ्यता अन्तःकरण की निर्मलता से संशोधित है। भारत का आचार जीवन की गहन गहराइयों में संप्रविष्ट है।

भारतेतर संस्कृतियां विकार-वासनाओं से विकृत हैं। अन्य सभ्यतायें बाह्य आडम्बर से आच्छन्न हैं। अन्यो के आचार आचारहीनता से संसिक्त हैं।

भारत के इस त्रित के विषय में "जीवन के आधुनिक मूल्यों—Modern values of life" का नारा सर्वथा अशोभनीय है। भारत के विषय में "जीवन के सनातन मूल्यों—Ancient values of life" का नारा ही शोभनीय है। जीवन के सनातन मूल्य ही आधुनिक युग की पीड़ाओं का उपचार कर सकेंगे। जीवन के आधुनिक मूल्यों ने समस्याओं को जटिलतर बनाकर उन्हें ऐसा उलझा दिया है कि वे जीवन के सनातन मूल्यों के द्वारा ही सुलझायी जा सकेंगी।

आधुनिकता की होड़ में हम सनातन मूल्यों से विमुख होते चले जारहे हैं। यह वैसा ही है जैसे कोई हीरों को फेंककर काच के टुकड़ों को संजोता है।

भौतिक ऐश्वर्यों और वैज्ञानिक साधनों के साथ यदि हमने अपनी संस्कृति, सभ्यता और आचार को गंवा दिया तो बड़ी भारी हानि होगी। बड़े बड़े भवनों और कल कारखानों से सम्पन्न होकर यदि हमने अपनी शाश्वत निधि को खो दिया, तो हम विश्व में सुपूजित कैसे होंगे?

मैं अपने राष्ट्र को और राष्ट्रनायकों को पुनः-पुनः सावधान करता हुआ कहता हूं कि यह मत कहो कि Old order changeth yielding place to the new—पुरानी व्यवस्था बदले, स्थान रिक्त करती हुई नयी व्यवस्था के लिये। यह कहो कि New order changeth yielding place to the old—नयी व्यवस्था बदले, स्थान रिक्त करती हुई सनातन व्यवस्था के लिये।

महिलाओं से मैं कहता हूं,
"देवी बनो बनो मत लेडी"।
पुरुषों से मैं यह कहता हूं,
"बनो देव तुम बनो न मिस्टर"।

वेद—संस्थान के प्रकाशन

वेदव्याख्याग्रन्थ के पुष्प तथा अन्य सब प्रकाशन निम्न स्थानों पर भी मिलते हैं—

[१] श्री वंशीलाल जी आर्य,
दयानन्द वाटिका, राम बाग़,
सब्जी मण्डी, दिल्ली—६

[२] श्री सुरेन्द्रनाथ जी तिवारी,
१४, तुलाराम बाग़,
इलाहाबाद—६

[३] श्री बृजमोहन जी शर्मा,
साधना-मण्डल, लाखेरी (राजस्थान)

[४] देव-प्रकाशन, अजमेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

From Videh's Gayatri

LIFE DIVINE

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि ।
स इद्देवेषु गच्छति ॥ (Rig. 1.1.4)

For every yajna [Purifying Sacrificial Fire] pure and fragrant substances, cleaned and purified butter and dry twigs are necessary-nay indispensable.

Damp pieces of wood do not burn up in the sacred fire-vessel. Oblations on hardly-and-slowly-smouldering twigs increase smoke and cause pain.

Oblations of fragrant substances and butter are best offered in a yajna, in which well-hewed, well-purified and well-dried woods kindle. Such a yajna alone fills the water, the air, the heaven, the earth, the grain, the herbs and everything else with spiritual fragance. Inflamed twigs alone carry the brilliance of the sacred fire to the gods.

O Fire Divine! We too wish to make our lives yajna-like. We have made our sense-twigs chaste and brilliant. We have made our thought-substances pure, pious and non-violent. We have boiled and cleansed our butter of love to make it lustless and all-embracing.

Dear Divine Fire! No yajna bears divine fruits without Thy Immanence. No yajna, in which Thou art not Immanant, can bring us happiness and bliss.

Lovely Fire! Come and get absolved into the sacrifice of our life-yajna. Inflame our sense-twigs. Fill and spread over our burnt-in-life sacrifice, thought-oblations and the butter of love, with all its fragrance, spreading through the whole world.

अग्ने O Divine Fire! सः इत् अध्वरं यज्ञं Only that sinless life-yajna, यं विश्वतः परि-भूः असि which Thou completely absorbeth, देवेषु गच्छति bears Divine fruits.

[Translated by Shri B. B. Hajela]

Youngester's Column

SPEAKING THE TRUTH

सत्येनोर्ध्वस्तपति (Ath. 10.8.19)

Noble-minded sons and daughters,

By means of this maxim Veda preaches truth-speaking.

Truth is the part and parcel of character and good conduct. नहि सत्यात्परो धर्मः, No virtue is nobler and more righteous than truth speaking. Truth believing, truth speaking and truthful doing must be inculcated into the very nature of Arya (righteous) boys and girls.

The truthful are everywhere honoured and believed in. The knowledge, wealth and property of the truthful continually keep on increasing. Believe in it and do what is right and truthful.

Never tell a lie, even by mistake, to conceal your short comings. Nor do take refuge in falsehood for the sake of escaping punishment and dishonour.

All noble qualities reside in the truthful. Being united by the brilliance of knowledge and effulgence of spirituality, a truth-loving person becomes self-effulgent.

Just as, in the sky, the sun shines and gives light to various heavenly bodies, similarly on this globe of ours, a truthful person shines with his brilliance and rises to be the leader and guide of mankind.

Dear children, do not tell a lie even in forgetfulness. Do'nt utter what is false even in jest or sport. Speak the truth to whomsoever you have to speak—father, mother, brother, sister, teacher, classfellow, playmate or servant. By so doing all will love you the most. God is possible to be visualised only in the innerself of the truthful. It is the truth-speaker who proves successful and victorious here and hereafter.

सत्येन By truth, man तपति blazes and shines ऊर्ध्वः high up in the sky.

By truth we rise high,
By truth we get God's nigh.

[Videh's *Vedic Bal Shikha*
Translated by Shri Kishorilal Gupta]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदव्याख्याग्रन्थ

वेदव्याख्याग्रन्थ के द्वितीय पुष्प का एक एक अक्षर ध्यानपूर्वक और बड़े मनोयोग द्वारा पढ़ा। प्रथम पुष्प से भी अधिक रोचक और कल्याणकृत जंचा। विदेह जी शायद कभी अध्यापक नहीं रहे। उनके जीवन का अधिक भाग पुलिस सर्विस में व्यतीत हुआ। तथापि पढ़नेवाले को, और कम से कम मुझे तो अवश्य ही, अनुभव हुआ कि विदेह जी बोर्न टीचर हैं। वेद की गहन से गहन गुत्थियां ऐसी सरल और स्पष्ट भाषा में सुलझाई गई हैं कि कोई दक्ष से दक्ष और शिक्षाविशारद ट्रेण्ड टीचर भी क्या समझायेगा। मुझे तो ऐसा लगा कि देव दयानन्द के अतिरिक्त किसी अन्य भाष्यकार को वेद का गुह्य ज्ञान इतने स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं हुआ जितना विदेह जी को। अपने चालीस वर्ष के वेदाध्ययन के उपरान्त में यह कहने का साहस कररहा हूं। किसी की ठकुरसुहाती करते रहने का मेरा स्वभाव नहीं है। फिर विदेह जी तो मेरे शिष्य रह चुके हैं। उन्होंने अंग्रेज़ी के साथ उर्दू और पर्शियन पढ़ी थी। हिन्दी और अंग्रेज़ी के इतने प्रखर और वेदोदधि के इतने पारंगत पाण्डित्य का श्रेय उनकी अपनी सतत साधना का ही मधुर फल है। अथवा देव दयानन्द की अन्तिम अभिलाषा ही विदेह जी की आत्मा के अन्दर गुप्त रूप से आ प्रविष्ट हुई है।

प्रकाशित हो गया !

स्वामी 'विदेह'—कृत

राम-चरित

* वाल्मीकि रामायण के आधार पर धारावाही कथा के रूप में भगवान् राम का चरित
* अलौकिक और असम्भव प्रतीत होने वाली घटनाओं का बुद्धिसंगत समाधान
* राम-चरित के प्रति सही दृष्टिकोण का निर्देशन।
* अत्यन्त शुद्ध, कलात्मक, आकर्षक मुद्रण
* तिरंगा, आफसैट-मुद्रित आर्ट कवर।

मूल्य रु० १.५०

प्रकाशक: **देव प्रकाशन, अजमेर**

विदेह-भाष्य की गौरव गरिमा का भास विश्व को तब होगा, जब उसका अनुवाद उचित रूप से अंग्रेज़ी, रशन और जर्मन भाषाओं में होगा। कृपालु परमेश्वर वह दिन शीघ्र दिखाने की कृपा करें।

—प्रि० श्री किशोरीलाल गुप्त, इलाहाबाद

वेदव्याख्या बहुत विस्तृत, सुबोध और रोचक है। लेखनशैली बहुत आकर्षक। जनता को इस भाष्य से बहुत लाभ पहुंचेगा। ईश्वर आपको इसी प्रकार सम्पूर्ण चारों वेदों की उत्तम व सुगम व्याख्या करने के पवित्र कार्य में सफल करें।

—योगीराज परमहंस ओमानन्द तीर्थ, पुष्कर

गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान

साधकों के लिये एक अमूल्य निधि है और साधारण जनों के लिये वेदकालीन एक अनुभूतिसिद्ध सन्मार्ग।

—श्री आशुराम पुरोहित, अम्बाला

स्वामी विद्यानन्द विदेह ने "गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान" में मन्त्र की व्याख्या बहुत सुन्दर रूप से की है। अनुष्ठान-विधि भी बहुत उत्तम रूप से बताई गई है। एक विचित्रता यह है कि जहां साधारणतया गायत्री के अर्थों की पहले भावना करके मन्त्र का जाप बताया जाता है, वहां विदेह जी ने मन्त्र की भावना पर ही जोर दिया है; जाप का सर्वथा निषेध बतलाया है। दूसरी नवीनता यह है कि अभी तक सारे आचार्य ओंकार और महाव्याहृतियों सहित गायत्री का अनुष्ठान और जाप करना बताते चले आरहे हैं, वहां इस अनुष्ठान में केवल त्रिपदा सावित्री को ही लिया गया है। कारण यह कि वेदों में छः स्थानों में से पांच स्थानों में व्याहृतिरहित त्रिपदा सावित्री का पाठ है।

—योगीराज परमहंस ओमानन्द तीर्थ

महामृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान

मन्त्र की व्याख्या अत्यन्त सरल एवं सरस शब्दों में की गई है। इस पुस्तिका को लिखकर स्वामी जी ने मुमुक्षुओं को उत्तम सामग्री प्रदान की है और मन्त्रानुष्ठान के वैदिक मार्ग को प्रशस्त किया है।

—महात्मा वेदव्रत, शेरकोट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ११ : अंक ८ सितम्बर १९५८ : भाद्रपद २०१५

स वि ता

[वेद-संस्थान का मासिक पत्र]

पंजाब सरकार द्वारा पंजाब के स्कूलों व कॉलिजों के लिये स्वीकृत

सम्पादक :
विश्वदेव शर्मा

वैदिक अर्थ

वेदों की महिमा वेदों के वैदिक अर्थों से प्रकाशित होगी, रूढ़ और पण्डिताऊ अर्थों से नहीं।

और वेदों का वैदिक अर्थ प्रकाशित होगा अन्तस्साधना द्वारा वेदमय होकर वेदों में पैठने से।

वेदों का वैदिक अर्थ प्रकाशित होने पर ही जन्दावस्था, उपनिषद्, गीता, जैन साहित्य, धम्मपद, पुराण, बाइबिल, क़ुरान, आदि ग्रन्थों के सही अर्थ निर्धारित किये जा सकेंगे, क्योंकि वेद समस्त धर्मों के आदिस्रोत हैं।

साधनाशील विद्वानों की सम्पूर्ण शक्ति वेदार्थ के प्रकाशन में लगनी चाहिये। वेदों के सही अर्थों के समझे जाने पर अन्य सब कुछ ठीक ठीक समझा जा सकेगा॥

—विदेह

मूल्य :
देश में— वार्षिक ३) रु०
एक प्रति २५ नये पैसे
विदेश में—वार्षिक ६ शि०
एक प्रति ६ पेंस

पत्र-व्यवहार का पता :
व्यवस्थापक, वेद-संस्थान, अजमेर

वेद-संस्थान के लिये पं० विश्वदेव शर्मा द्वारा, आदित्य मुद्रणालय, बाबू मोहल्ला, अजमेर में मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सविता

लेख-क्रम

देवों का धर्म	विदेह	११५
वैदिक दाम्पत्य	"	११६
वर्ण-व्यवस्था	विष्णुदयाल	११८
उद्बोध	विदेह	११९
साधना [४५]	"	१२०
गीता-योग [४१]	"	१२१
अध्यापक [१७]	"	१२२
विद्यार्थी [१७]	"	१२३
वेदोद्धार	"	१२४
राष्ट्रोद्धार	"	१२४
परीक्षास्थल	"	१२५
याद और फ़र्याद [कविता]	"	१२५
An Illustration of Non-attachment	Scott	126
Prayer [8]	Hajela	127
Clean Teeth	Kishori Lal	127

मन्त्रानुक्रम

अमाजुरश्चिद् (ऋ० १०.३९.३)	११६
अस्माकं देवा (ऋ० १० ३७.११)	११५
उद्बुध्यस्वाग्ने (य० १५/५४)	११९
ब्राह्मणोऽस्य (ऋ० १०.९०.१२, (य० ३१/११, अ० १९.६.६)	११८

नोट करलें

"साधना" के छप जाने पर "साधना" तथा "राम-चरित" की एक एक प्रति होता सदस्यों तथा कर्तृसमिति के सदस्यों को निःशुल्क भेजी जायेंगी। —मन्त्री

संस्थान-प्रकाशन

विदेह-विरचित

❀वेदव्याख्याग्रन्थ—प्रथम पुष्प	२.००
❀वेदव्याख्याग्रन्थ—द्वितीय पुष्प	१.५०
गायत्री—[द्वितीय संस्करण]	१.५०
गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान	०.२५
महामृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान	०.२५
सार्वभौम आर्य साम्राज्य	०.५०
❀वैदिक बालशिक्षा—प्रथम भाग [तृतीय संस्करण]	०.३७
❀वैदिक बालशिक्षा—द्वितीय भाग [द्वितीय संस्करण]	०.३७
वैदिक योग-पद्धति—[द्वितीय संस्करण]	०.३७
सन्ध्या-योग [द्वितीय संस्करण]	०.२५
स्वस्तियाग	०.७५
यज्ञोपवीत-रहस्य—[चतुर्थ संस्करण]	०.०६
संस्कृत-शिक्षा—प्रथम भाग [द्वि०संस्करण]	०.१९
संस्कृत-शिक्षा—द्वितीय भाग [द्वि०संस्करण]	०.३७
सत्यनारायण की कथा—[द्वितीय संस्करण]	०.३७
सत्संग-गीतावली	०.३७
दिव्य-भावना	०.०६
राम-चरित	१.५०
साधना	छप रही है

सविता की जिल्दें, वर्ष ४,५,६,८,९,१०
प्रति जिल्द ३.२५

❀ पंजाब शासन द्वारा राज्य की शिक्षण-संस्थाओं के लिये स्वीकृत

डाकव्यय पृथक्

वेद-संस्थान, अजमेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

[वेद-संस्थान अजमेर का मासिक पत्र]

वर्ष ११	अजमेर, सितम्बर १९५८, (नभस्यः) भाद्रपद २०१५	अङ्क ८ पूर्णाङ्क १२८

देवों का धर्म

अस्माकं देवा उभयाय जन्मने शर्म यच्छत द्विपदे चतुष्पदे ।
अदत् पिबदूर्जयमानमाशितं तदस्मे शं योररपो दधातन ॥

(ऋ० १०-३७-११)

अस्माकं देवाः उभयाय जन्मने शर्म यच्छत द्वि-पदे चतुःपदे ।
अदत् पिबत् ऊर्जयमानं आशितं तत् अस्मे शं योः अरपः दधातन ॥

(देवाः) दिव्य जनो ! (उभयाय जन्मने) उभय जन्म के लिये—

१. (अस्माकं द्विपदे चतुष्पदे) हमारे दोपाये [मनुष्य] और चौपाये [पशु] के लिये (शर्म) सुख (यच्छत) प्रदान करो ।

२. हमारा (अदत् पिबत् आशितं) खाया, पिया, खिलाया—(तत्) वह सब (ऊर्जयमानं) बलोत्पादक हो ।

३. (अस्मे) हममें (शं) शान्ति, (योः) दुःखविनाश और (अरपः) निमलता (दधातन) स्थापन करो ॥

दिव्य जनो !
प्रदान करो सुख मानव पशु के लिये हमारे ।
हो बलकारक वह सब खाया पिया खिलाया ।
करो स्थापन हममें शं और दुखविनाश निर्मलता ।
उभय जन्म की साध हमारी होजाये सम्पादित ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक दाम्पत्य

अमाजुरश्चिद्भवथो युवं भगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित् ।
अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित् ॥
(ऋ० १०.३९.३)

अमा-जुरः चित् भवथः युवं भगः अनाशोः चित् अवितारा अपमस्य चित् ।
अन्धस्य चित् नासत्या कृशस्य चित् युवां इत् आहुः भिषजा रुतस्य चित् ॥

वेदमाता का दम्पती को यह एक बड़ा ही सुन्दर उपदेश है। इसे सुनकर प्रत्यक्ष होगा कि दाम्पत्य जीवन एक साधनामय [मिशनरी] जीवन का नाम है और दम्पती का गृह है एक पुनीत साधनास्थल [मिशन]। यदि सारे समाज का दाम्पत्य जीवन इस मन्त्र में उल्लिखित आधारों पर संस्थित होजाये, तो प्रत्येक गृह एक साधनास्थल बन जाये और वैदिक शिक्षाओं के साचार प्रचार के लिये पृथक् केन्द्रों की स्थापना की आवश्यकता न रहे।

दम्पती को यहां नासत्या [नासत्यौ] शब्द से सम्बोधित किया गया है। यह शब्द द्वि-वचन है। इसका एकवचन है नासत्य। नासत्य = न + असत्य। जिसके जीवन में लेशमात्र असत्य न हो, उसे नासत्य कहते हैं। नासत्या = न + असत्या। वे पत्नी और पति, जिनके जीवन में असत्य न हो, उन्हें नासत्या अथवा नासत्यौ कहते हैं। दम्पती को "नासत्या" शब्द से सम्बोधन करके वेदमाता ने दाम्पत्य जीवन के एक आधारभूत आदर्श का संकेत किया है। प्रत्येक दम्पती को नासत्या होना चाहिये। उनका सम्पूर्ण व्यवहार सत्य पर आश्रित होना चाहिये।

मन्त्र में दम्पती के लिये छः आदर्श शिक्षायें हैं—

१) नासत्या ! (युवं) तुम दोनों (अमाजुरः) अमा-जुर के लिये (चित्) भी (भगः) सौभाग्य (भवथः) होते हो, होओ।

अमा नाम घर का है। जुरः का अर्थ है जीर्ण। घर में अथवा घरों में निवास करनेवाले वृद्ध-वृद्धाओं के लिये अमाजुर शब्द का प्रयोग हुआ है। भग शब्द का प्रसिद्ध अर्थ सौभाग्य है। धन और ऐश्वर्य के अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग होता है।

अपने गृह में अपि च समाज में निवास करनेवाले वृद्ध जनों की सेवा करके उन्हें सुखी करना एक कर्तव्यनिष्ठ दम्पती का परम कर्तव्य है। दम्पती की सेवा से सुखी होने पर वृद्ध जन कहते हैं, "हम बड़े सौभाग्यशाली हैं कि हमारा पुत्र सेवाभावी और सुखयिता है। हमारा सौभाग्य है कि हमारी पुत्रवधू सेवाकारिणी और दुःखनिवारिणी है"। दम्पती के दुर्व्यवहार से दुखी होने पर वृद्ध जन कहते हैं, "हमारे घर में यह ऐसी वधू आयी कि इसने हमारे पुत्र को भी कपूत बना दिया। हमारा पुत्र और हमारी पुत्र-वधू हमारा दुर्भाग्य बन गये हैं"।

प्रत्येक दम्पती को वेदमाता के इन दिव्य वचनों को सदा स्मरण रखना चाहिये, "नासत्या ! तुम दोनों वृद्ध जनों का सौभाग्य बनना, दुर्भाग्य न बनना"। स्वयं दम्पती के लिये भी वृद्धोपसेवी होना उनके अपने सौभाग्य को बढ़ानेवाला है। माता पिता, दादा दादी, आदि, अमाजुरों का ऋण चुकाना तो दूर, ब्याज भी नहीं चुका सकते। वधू को स्मरण रखना चाहिये कि अमाजुरों ने ही उसके पति के जीवन का निर्माण किया है। अमाजुरों की श्रद्धापूर्वक सुसेवा करके दम्पती उनके सौभाग्य का कारण बनें, दुर्भाग्य का नहीं।

नासत्यौ सौभाग्य बनो तुम अमाजुरों का ।
कभी भूलकर भी उनका दुर्भाग्य न बनना ॥

२) नासत्या ! (युवं) तुम दोनों (अनाशोः चित्) भूखे के भी (अवितारा) रक्षक (भवथः) होते हो, होओ।

भूखे से तात्पर्य यहां भूखे प्यासे आजीविका-विहीन लोगों से है। भूखों के मुंह में दो ग्रास अन्न के डालना मानव और मानवता की पीड़ा की अनुभूति का द्योतक है। भूखे की भूख की ज्वाला को न बुझानेवाला दम्पती [जोड़ा] जो कुछ खाता है, पाप खाता है। भूख की पीड़ा कितनी दुःखदायिनी होती है, इसका अनुभव सम्प्राप्त रखने के लिये ही उपवास रखना पुण्य माना गया है।

भूखे को खिलाकर खाने में जो रस है, वह अन्यथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहां । सन्त अनाम के सामने भोजन का थाल आया ही था कि भूख से तड़पता हुआ एक भूखा सामने आ खड़ा हुआ । भूखे के हाथ पैर धुलाकर अनाम ने अपने थाल का आधा भोजन उसे खिलाया और आधा स्वयं खाया। भोजन करके भूखा दुआयें देता हुआ चला गया और सन्त अनाम के हृदयाकाश में भगवान् बोले, "अनाम, तेरे इस व्यवहार से तीनों लोकों में वह सुख शान्ति हुई है, जो बड़े से बड़े होम हवन और यज्ञ याग से भी नहीं होती। अनाम, अपने इस यज्ञ से तूने मेरा परम प्रसाद प्राप्त कर लिया है"। भूखे की जठराग्नि में भोजन न होमकर जो दम्पती हज़ारों रुपयों का घृत हवि यज्ञाग्नि में होमते हैं, ऐसे निष्ठुर दम्पतियों का सारा होम हवन पैशाच्य कृत्य के समान है। यज्ञ याग उन्हीं का सार्थक है, जो यज्ञाग्नि की अपेक्षा भूखों की उदराग्नि में कहीं अधिक हवि होमते हैं ।

युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था। दुर्वासा ऋषि जानबूझ कर सम्मिलित नहीं हुये थे। छः मास पश्चात् दुर्वासा उधर आ निकले। युधिष्ठिर बोले, "ऋषे, जो राजसूय यज्ञ मैंने किया था, उसकी यज्ञवेदियों में से अब भी सुगन्धित धूम चारों ओर व्याप रहा है। करोड़ों रुपये के सुगन्धित द्रव्य उसमें होमे गये थे और थाल भर भर कर रत्न जवाहरात ऋषियों को दक्षिणा के रूप में भेंट किये गये थे"।

दुर्वासा ने कहा, "युधिष्ठिर, तेरा राजसूय यज्ञ उस यज्ञ के सामने कुछ भी नहीं है, जो एक समय एक भूखे ब्राह्मण परिवार ने किया था"।

खिन्न मन से युधिष्ठिर ने निवेदन किया, "ऋषे, मुझे उसका हाल सुनाइये"।

ऋषि बोले, "राजन्, एक समय उत्तराखण्ड में ऐसा अकाल पड़ा कि अन्न के अभाव में लोग वृक्षों की छाल और पत्ते तक खा गये। छाल और पत्तों से रहित पीपल के एक नग्न वृक्ष के नीचे एक वृद्ध ब्राह्मण, उसकी पत्नी, उसका एकलौता पुत्र और पुत्रवधू बैठे हुये भूख के मारे अपने जीवन की अन्तिम घड़ियां गिन रहे थे कि एक साहूकार उधर से निकला और उस भूखे ब्राह्मण परिवार को एक पाव सत्तू दे गया। बराबर बराबर बांटकर वे खाना प्रारम्भ करने को ही थे कि एक भूखा यति उनके सामने आ खड़ा हुआ। चारों प्राणियों ने अपने प्राणों को संकट में डालकर अपना अपना भाग उस यति को देकर उसके प्राणों की रक्षा की। उस ब्राह्मण का वह सत्तू-याग कहीं अधिक बढ़कर था तेरे उस राजसूय यज्ञ से, जिसमें इतना विपुल द्रव्य वृथा ही फूंका गया"।

नासत्यौ भूखों के भी तारक बन जाना ।
भूखों को कुछ भोजन देकर ही तुम खाना ॥

३) नासत्या ! (युवं) तुम दोनों (अपमस्य चित्) पतित के भी (अवितारा) रक्षक (भवथः) होते हो, होओ।

प्रत्येक समाज में ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो परिस्थितियों से परास्त होकर पतित हो जाते हैं और पतन के पथ पर चलने को मजबूर होजाते हैं। वातावरण और अवस्था विशेष में बड़े से बड़े और अच्छे से अच्छे व्यक्तियों का पतन हुआ है और हो सकता है। दम्पती को चाहिये कि पतितों से घृणा न करके उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करें, पतितपावन बनकर पतितों का उद्धार करें।

नासत्यौ मलिनों के तुम साबन बन जाना ।
पतितों के संशुद्ध पतितपावन बन जाना ॥

४) नासत्या ! (युवं) तुम दोनों (अन्धस्य चित्) अन्धे के भी (अवितारा भवथः) रक्षक होते हो, रक्षक होओ।

अन्धे दो प्रकार के होते हैं, **आंख से अन्धे और ज्ञान से** अन्धे। एक वे जो नेत्रविहीन होने के कारण देख नहीं पाते हैं। दूसरे वे जो आंखें रखते हुये भी विवेकहीन होने के कारण देखकर भी नहीं देखते हैं। **दम्पती को दोनों ही** प्रकार के अन्धों का सहारा बनना चाहिये। आदर्श दम्पती नेत्रहीनों की सेवा सुशिक्षा में और विवेकहीनों को विवेक प्राप्त कराने में सदा अग्रसर रहें। नेत्र के बिना मानव उतना दुखी नहीं होता है, जितना ज्ञाननेत्र के बिना। नेत्र खोकर भी ज्ञान और विवेक के नेत्रों से सनेत्र होकर मानव अपना समुत्थान और विश्व का कल्याण कर सकता है, किन्तु दोनों नेत्र रखते हुए भी ज्ञान और विवेक के नेत्रों से विहीन मानव अपना सर्वनाश और विश्व का अहित करता है। दोनों ही प्रकार के अन्धों की ज्योति बनकर धर्मात्मा दम्पती को उनका परित्राण करना चाहिये।

नासत्यौ अन्धों का भी प्रकाश बनो तुम ।
घोर निराशों की भी सुन्दर आश बनो तुम ॥

५) नासत्या ! (युवं) तुम दोनों (कृशस्य चित्) दुर्बल के भी (अवितारा भवथः) रक्षक होते हो, रक्षक होओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्बल की रक्षा करना परम धर्म है। दम्पती कभी भूलकर भी किसी दुर्बल को न सताये। निर्धन का धन और निर्बल का बल बनने में ही दम्पती की शोभा है। जो निर्बल का बल और निर्धन का धन बनता है, वही राम है। सुने री हमने निर्बल के बल राम। सुने री हमने निर्धन के धन राम। लोकगीत की इन दो पंक्तियों में जिस गहरी भावना का जो गहन मर्म निहित है, उसे पुनीत दम्पती समझें और निर्धन और निर्बल की सदा रक्षा और सुखसाधना करें।

सावधान ऐ सुन्दर दम्पति,
निर्धन निर्बल को न सताना।
लेना सदा आशिषें उनकी,
निर्बल को न कदापि रुलाना॥

दम्पती के दुर्व्यवहार से कभी किसी निर्धन निर्बल के हृदय से आहें और उसकी आंखों से आंसू न निकलें, इसका सदा ध्यान रखना चाहिये।

नासत्यौ दुर्बल के भी तुम रक्षक रहना।
कष्ट किसी निर्बल निर्धन को कभी न देना॥

६) नासत्या! लोग (युवां इत्) तुम दोनों को ही (रुतस्य चित्) रोगी के भी (भिषजा) उपचारक [मुआलिज], वैद्य (आहुः) कहते हैं।

रोगियों की सेवा करना भी धर्मप्राण दम्पती का परम धर्म है। रोग तीन प्रकार के होते हैं—शारीरिक, मानसिक और सामाजिक। दम्पती को तीनों ही प्रकार के रोगियों का आत्मना उपचार करना चाहिये। उपचार से नीरोग और स्वस्थ होकर तीनों ही प्रकार के रोगी सुखी और सुप्रसन्न होते हैं। शारीरिक रोगों से कहीं अधिक भयंकर मानसिक रोग होते हैं। एक नीरोग और स्वस्थ समाज में ही सब मनुष्य शरीरेण तथा आत्मना नीरोग और स्वस्थ रह सकते हैं। प्रत्येक वैदिक दम्पती को तीनों प्रकार के रोगों का निराकरण करके मानव समाज को सुख और शान्ति का रसास्वादन कराना चाहिये।

नासत्यौ तुमको ही कहते हैं, उपचारक रोगी का भी।
नासत्यौ तुमको ही कहते हैं, उपशामक भोगी का भी॥

वर्ण-व्यवस्था

[प्राध्यापक वा० विष्णु दयाल]

परतन्त्र भारत में ऐसे विद्वानों की संख्या न्यून न थी, जो भारतीय होने पर भी अंग्रेज़ गुरुओं के विचारों को सहर्ष अपनाते थे। लोगों को पूरी आशा थी कि स्वतन्त्र भारत में ऐसों की संख्या उचित मात्रा में घटेगी। यह परिवर्तन न होते देख हमें अपने भाग्य को कोसना पड़ता है।

अभी हाल ही में लन्दन विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करनेवाले भारतीय विद्वान् श्री भाषम् ने एक मोटा ग्रन्थ रचा है, जिसका रोचक नाम है, "चकित करनेवाला प्राचीन भारत"। पुस्तक आंग्ल भाषा में लिखी गयी है और वहीं मुद्रित हुयी है। आश्चर्य की सीमा न रही, जब हमने देखा कि इन दिनों में भी श्री भाषम् योरोपियों के इस मत को दुहरा रहे हैं कि यद्यपि वेदों में गौ को न मारने के योग्य बताया गया है, वैदिक काल में गोवध होता रहा। वह युक्ति यह देते हैं कि आर्थिक कारणों से वेद में यह कहा गया होगा।

आज भी वे योरोपियों के इस मत को भी अपनाते देखे जारहे हैं कि वर्ण का अर्थ रङ्ग है। क्या श्री भाषम् ने नहीं पढ़ा है कि वेदों में जो वर्ण-व्यवस्था सम्बन्धी सुन्दर मन्त्र हैं, वे इस परिणाम पर नहीं पहुंचाते हैं कि रूप रङ्ग को देखकर मानव को ब्राह्मण आदि कहा जाता था।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
(ऋ० १०-९०-१२, य० ३१/११; अ० १९-६-६)

मानव समाज का मुख ब्राह्मण है, भुजायें क्षत्रिय हैं, मध्य-स्थान वैश्य है, पैरों के लिये शूद्र है।

इस मन्त्र की व्याख्या करते हुये वेदों के विद्वान् बताते हैं कि यहां स्पष्ट बताया गया है कि यदि मनुष्य समाज की तुलना मानव शरीर से की जाये तो ब्राह्मण या ज्ञानी वर्ग को शिर मानना होगा। शिर सबसे ऊंचा रहता है। इसी प्रकार ज्ञानी समाज में शिरमौर है। स्वयं कष्ट झेलकर ब्राह्मण समाज को सुख पहुंचाता है। जब कभी कोई बीमारी होती है, शिर को पीड़ा होती है। बीमारी किसी भी अंग में हो, मुख औषधि-पान करता है। मुख महान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्यागी है। मुख ही है, जो सदैव वस्त्रहीन रहता है। ब्राह्मण नेत्रों के समान देखता रहता है, कर्णों की तरह सुनता रहता है, मुंह के समान बोलता रहता है, मस्तिष्क की भांति सोचता रहता है।

क्षत्रिय वर्ग पर रक्षा का भार है। वे भुजाओं का काम करते हैं। पांव में कंटक धंस गया हो तो हाथ उसे निकालता है। जिस पीठ को नेत्र देख नहीं पाते, वहां रक्षार्थ हाथ पहुंच जाता है। शरीर गिरने लगता है तो हाथ ही जमीन को छूकर शरीर की रक्षा करता है।

शरीर के मध्य भाग में मुंह द्वारा चबाया गया भोजन पहुंचता है, जहां से वह सूक्ष्म होकर रस रूप में नसों में पहुंचता है। वाणिज्य करनेवाले के पास ही देश का सम्पूर्ण धन रहता है। वैश्य का कर्तव्य है कि वह अपने धन का राष्ट्रतन्त्र में यथावत् वितरण करे।

चतुर्थ वर्ग श्रमिकों का है, जो पादस्थानीय है। पांव पर सारे शरीर का भार रहता है। वह खुशी खुशी सबको ढोता है। श्रम करके सारे देश की सेवा का आदर्श वह हमारे सामने रखता है।

चारों वर्ण राष्ट्र-कार्य में संलग्न हैं। ब्राह्मण बुद्धि से देश का मार्गदर्शन करता है, क्षत्रिय शारीरिक बल से देश की रक्षा करता है, व्यापारी व्यापार द्वारा देश को समृद्ध बनाता है और शूद्र अन्य तीनों वर्णों की आधारशिला बना हुआ है।

यह व्यवस्था स्वाभाविक है। जहां यह है वहां मानव समाज सुख से रहता है। यही कारण है कि निष्पक्ष चिन्तक अभारतीय होने पर भी इसकी प्रशंसा में लेख लिखने लगे हैं। रूस में उस्पेंस्की और इंग्लेण्ड में जेरल हर्ड वर्ण-व्यवस्था का समर्थन कररहे हैं। इन दोनों में से किसी ने भी वर्ण का अर्थ रङ्ग नहीं किया है। इंग्लेण्ड की सुप्रसिद्ध पत्रिका "कंटेम्पोरेरी रिव्यू" में अभी एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें उपर्युक्त मन्त्र की इसी प्रकार व्याख्या की गयी है और वर्ण का अर्थ "सिलेक्शन-वर्गीकरण" किया गया है।

इस पत्रिका में उच्च कोटि के लेखकों के लेख होते हैं। इसे श्री भाषम् पढ़ते होंगे। श्री भाषम् को वहां भारतीय विचारों की सही व्याख्या करनी चाहिये। वेद के मन्तव्यों की व्याख्या करते हुये वेद के सच्चे विद्वानों के दृष्टिकोण को पुष्ट करने का उनमें साहस होना चाहिये। वह इस तरह सेवा करेंगे तो भारत की प्रतिष्ठा को धक्का न लगेगा। ऋषियों के विमल ज्ञान को सच्चा न मानकर आजकल भारतीय शासक तक देश के विद्वानों से इसलिये विद्रोह कररहे हैं कि लोग उन्हें कट्टरपन्थी न बतायें। संसार को ऋषियों के ज्ञान से वास्तविक लाभ हो सकता है। शासक बन जाने से कोई इतना बड़ा नहीं होजाता है कि उसे ऋषियों का नाम लेने में संकोच हो।

उद्बोध

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते संसृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥

(य० १५/५४)

उत्-बुध्यस्व अग्ने प्रति-जागृहि त्वं इष्टापूर्ते संसृजेथां अयं च।
अस्मिन् सध-स्थे अधि उत्-तरस्मिन् विश्वे देवाः यजमानः च सीदत॥

(अग्ने) आत्माग्ने! (उत्-बुध्यस्व) उद्बुद्ध हो, सचेत रह, (प्रति-जागृहि) प्रति-जाग, प्रति क्षण प्रत्येक घटना से शिक्षा ग्रहण कर।

प्रिय आत्मन्! विवेक-दीप को निरन्तर प्रज्वलित रख और उसके प्रकाश में संसार की प्रत्येक घटना के प्रति प्रति क्षण जागरूक रहता हुआ उद्बोध प्राप्त कर।

मान और अपमान में, हानि और लाभ में, जय और पराजय में, धर्म और अधर्म में, पाप और पुण्य में, सुघटना और दुर्घटना में, सफलता और विफलता में, सधन्यता और अधन्यता में, योग और वियोग में, सत्य और असत्य में, आत्म और अनात्म में—सबमें एक उद्बोधक बोध, एक ऊपर लेजानेवाली उत्प्रेरणा अन्तर्निहित है, यदि तू प्रत्येक घटना को सतर्कता के साथ देखे सुने और सोचे समझे।

(त्वं) तू आत्मा (च) और (अयं) यह शरीर—तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों (इष्टापूर्ते) इष्ट की पूर्ति के लिये (संसृजेथां) संसृजो, संयुक्त रहो।

प्रिय आत्मन् ! यह मानव शरीर तुझे इष्ट की पूर्ति के लिये मिला है। एक इष्ट है, जिसकी पूर्ति का एकमात्र साधन यह मानव देह ही है। क्या तुझे पता है, वह इष्ट क्या है? नहीं मालूम ? वह इष्ट है ब्रह्म की प्राप्ति, ब्रह्मानन्द की प्राप्ति, माया से मुक्त होकर मायापति में शाश्वत समाहिति।

इष्ट को भुलाकर तू भ्रष्ट होरहा है। (प्रति जागृहि) टुक जाग, (उद्बुध्यस्व) सावधान हो और (त्वं च अयं) तू और तेरा यह मानव शरीर, दोनों मिलकर (इष्टापूर्ते) इष्टपूर्ति के लिये (संसृजेथां) सन्नद्धता के साथ साधना करो।

प्रिय आत्मन् ! इष्टपूर्ति के साधन अपने इस देह-सदन में तुझे सदा नहीं रहना है। तेरा यह देह-सदन तो एक सधस्थ [सराय] है, जिसमें कुछ दिन निवास करके तुझे यहां से जाना है। इस सधस्थ में तू इसलिये आकर ठहरा है कि इसमें रहकर उत्तरोत्तर ऊपर उठता हुआ तू अपने परमोच्च इष्ट को, अपने अभीष्ट को, प्राप्त करे। इष्ट की पूर्ति के लिये (विश्वे देवाः) सब इन्द्रिय देव (च) और (यजमानः) तू आत्मयजमान—तुम सब (अस्मिन् उत्—तरस्मिन् सध-स्थे) इस उत्तरोत्तर अभीष्ट की ओर चढ़ा लेजाने के योग्य सराय में (अधि सीदत) निवास करो।

इष्ट की पूर्ति करके, प्रिय आत्मन् ! इन्द्रियदेवों से विदा लेकर तुझे इस सराय से प्रस्थान करना है। किन्तु, अफ़सोस, इष्ट को विस्मृत करके तुझे इस सराय से और इस सराय के निवासियों से इतना मोह होगया है कि जाने के विचार मात्र से तू व्यग्र और व्यथित होजाता है।

आत्मागने,
उद्बोधित हो,
सन्तत सतत निरन्तर,
जगमग जगमग,
जलती रखना,
ज्योति ज्ञान की,
सद्विवेक की।
अरे आत्मन्,
सोना नहीं,
जागते रहना,
सोता है जो,
खोता है वह,
पाता वही,
जागता है जो।
प्रिय आत्मन्,
मानव देह,
मिली है तुझको,
इष्टपूर्ति के लिये,
साध की संसिद्धि कर,
कर न इसे बर्बाद,
व्यर्थ के व्यासंगों में।
अरे आत्म-यजमान,
सहित इन्द्रियदेवों के,
कर निवास,
इस देह-सदन में,
याद रहे पर,
जाना एक दिन,
करले पूरा काम॥

साधना

—४५—

[संसिद्ध योगी]

ब्रह्मसाक्षात्कृत संसिद्ध योगी जिन विभूतियों, ऋद्धियों, सिद्धियों, श्रियों तथा योगैश्वर्यों से युक्त रहता है, उनका विवरण जानकर नहीं दिया जाता है। उनका अनुभव साधक को संसिद्धि की प्राप्ति पर स्वयमेव होजायेगा। उनका वर्णन करना अभ्यासी साधक के लिये साधना में बाधक सिद्ध हो सकता है।

जिस कूप का सम्बन्ध किसी अक्षय जल-भण्डार से होता है, उस कूप का स्रोत सदा अनन्त [अन्-अन्त, असमाप्त] बना रहता है। एवमेव संसिद्ध योगी का आत्मा अनन्त ब्रह्म से युक्त होने के कारण ब्रह्म के निमित्त से अनन्त-प्रज्ञ, अनन्त-ज्ञान, अनन्त-वीर्य, अनन्त-बल और अनन्त-क्षम होजाता है। उसका प्रत्येक गुण और प्रत्येक कर्म अनन्त होजाता है।

संसिद्ध योगी के सब कर्म ब्रह्मप्रेरित होने से कर्तापन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव से सर्वथा मुक्त होते हैं, उसकी प्रत्येक चेष्टा नितान्त सत्य होती है। या यों कहिये, उसके सब कर्म ब्राह्म कर्म होते हैं, अतः विश्व के लिये परम कल्याणकारी होते हैं।

ब्रह्मनिर्वाण की प्राप्ति पर साधक का आत्मा सदा ब्रह्मस्थ, ब्राह्म गुणों से युक्त, भौतिक रतियों से नितान्त मुक्त तथा दिव्य द्युतियों से सदा सुयुक्त रहता है। ब्रह्म-निर्वाण के पश्चात् मुक्तावस्था में मुक्तात्मा दिव्य क्रीड़ा और दिव्य कर्म करता है, जो भौतिक व्यासंगों से सर्वथा मुक्त होते हैं।

संसिद्ध योगी संसार में रहता हुआ सांसारिकता से सर्वथा वियुक्त रहता है। वह संसार के सब प्रकार के समस्त द्वन्द्वों में सर्वथा निर्द्वन्द्व रहता है। वह हर्ष की झंकारों से झंकृत रहता हुआ आनन्द की धाराओं पर तैरता रहता है।

संसिद्ध योगी तात्स्थ्य स्थिति में ब्रह्मवत् वर्तता है और ब्रह्मवत् बोलता है। तात्स्थ्य स्थिति में ही ब्रह्मस्थ योगी कह उठता है, "अहं ब्रह्मास्मि– मैं ब्रह्म हूं"। इस वाक्य का वास्तविक आशय है—मैं ब्रह्मस्थ हूं और ब्राह्म गुणों से युक्त हूं। यह वैसा ही है जैसे अग्नि में प्रविष्ट या समर्पित कोयला अग्निरूप होकर कहता है, "अहं अग्निरस्मि—मैं अग्नि हूं"। अग्नि से बाहर निकलकर कोयला अपने को कोयला कहता है। ऐसे ही तात्स्थ्य.स्थिति से उतरकर संसिद्ध योगी मनुष्यवत् बोलता और वर्तता है।

तात्स्थ्य स्थिति को सम्प्राप्त योगी जो कह उठता है, "सर्वं खल्विदं ब्रह्म-यह सब ब्रह्म है", इसका भी वास्तविक आशय यह है कि यह सब ब्रह्ममय है। सचमुच साक्षात्कृत योगी को यह अखिल ब्रह्माण्ड नितान्त ब्रह्ममय दिखाई पड़ता है।

अहं ब्रह्मास्मि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, आदि वाक्य तात्स्थ्य स्थिति के द्योतक हैं तात्त्विक नहीं।

[साधना लेखमाला समाप्त]

गीता–योग

—४१—

[चौथा अध्याय]

श्रीभगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥१

भगवान् कृष्ण बोले-(इमं अव्ययं योगं) इस अविनाशी योग को (अहं) मैंने (विवस्वते प्र-उक्तवान्) विवस्वान् के प्रति प्रकथन किया था। (विवस्वान् मनवे प्र-आह) विवस्वान् ने मनु के प्रति प्रकथन किया। (मनुः इक्ष्वाकवे अब्रवीत्) मनु ने इक्ष्वाकु के प्रति कहा।

इस अव्यय योग को मैंने, विवस्वान् के प्रति कहा था।
विवस्वान् ने कहा मनु से, मनु ने कहा इक्ष्वाकु से॥

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥२

(एवं) इस प्रकार (परम्परा-प्राप्तं) परम्परा से प्राप्त (इमं) इस योग को (राज-ऋषयः) राज-ऋषियों ने (विदुः) जाना। (परंतप) परंतप अर्जुन! (महता कालेन) बहुत समय से (सः योगः) वह योग (इह) यहां, इस संसार में (नष्टः) नष्ट होगया था।

परम्परा से प्राप्त इसे फिर राजर्षियों ने जाना।
वही योग था नष्ट होगया बहुत काल से परंतप॥

स एवायं मया ते ऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥३

(सः एव अयं पुरातनः योगः) वह ही यह प्राचीन योग (अद्य) आज (मया) मेरे द्वारा (ते) तेरे प्रति (प्र-उक्तः) प्रकथन किया गया है। तू (मे भक्तः च सखा असि) मेरा भक्त और सखा है, (इति) इस लिये। (हि) क्योंकि (एतत् उत्तमं रहस्यं) यह उत्तम रहस्य है।

भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि "क्योंकि यह योग उत्कृष्टतम रहस्य है, इसका उपदेश हर किसी को नहीं किया जा सकता। पात्र को ही इसका उपदेश किया जाता है और पात्र में ही यह उपदेश समाता है। परंतप अर्जुन! मेरा भक्त और सखा होने से तू योग का पात्र है, इसीलिये मैंने इस पुरातन योग का आज तेरे प्रति उपदेश किया है।

ऐसा यह उत्तम रहस्य है, तू है मेरा भक्त सखा।
वह ही यह प्राचीन योग, तेरे प्रति मैंने आज कहा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जुन उवाच

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥४

(अपरं भवतः जन्म) आधुनिक है आपका जन्म। (परं जन्म विवस्वतः) पुरातन है जन्म विवस्वान् का। (कथं इति विजानीयां) कैसे यह जानूं कि (त्वं) तूने (आदौ) आदि युग में (एतत् प्र-उक्तवान्) इस योग को प्रकथन किया था।

अर्जुन ने शंका की है—कृष्ण ! आपका जन्म अब हुआ है। विवस्वान् का जन्म आदि युग में हुआ था। मैं यह कैसे मान लूं कि तूने आदि युग में विवस्वान् के प्रति इस रहस्यमय योगविद्या का उपदेश किया था ?

अब हुआ है जन्म आपका, विवस्वान् का अति प्राचीन ।
इसे आदि में कहा आपने, कैसे मानूं मैं यह बात ॥

श्रीभगवानुवाच

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥५

अर्जुन ! (मे च तव) मेरे और तेरे (बहूनि जन्मानि व्यतीतानि) बहुत जन्म हो चुके हैं। परंतप ! (तानि सर्वाणि) उन सबको (अहं वेद) मैं जानता हूं, (त्वं न वेत्थ) तू नहीं जानता है।

योगी योगबल से अपने स्वयं के पूर्व जन्मों का हाल तो जान ही लेता है, अन्यों के पूर्व जन्मों का हाल भी जान और जना सकता है। भगवान् कृष्ण संसिद्ध योगी थे। उन्हें इस पूर्वजन्म-संज्ञान की सिद्धि प्राप्त थी।

आत्मा अजर और अमर है। नाशवान् तो शरीर है। प्रत्येक आत्मा अनादि काल से कितने ही जन्म धारण कर चुका है। भगवान् कृष्ण कहते हैं—अर्जुन ! मेरे और तेरे अनेक जन्म हो चुके हैं। योगबल से मुझे उनका ज्ञान है, तुझे उनका ज्ञान नहीं है। मुझे पता है कि इस लोक के आदि युग में मैंने विवस्वान् को इस योगरहस्य का उद्घाटन किया था। परम्परा से वह योग राजर्षियों में चलता चला आया। समयान्तर में उसका लोप हो गया। उस योग का तेरे प्रति उपदेश करके मैंने उसका इस अवसर पर पुनरुद्धार किया है।

बहुत जन्म होचुके मेरे भी और तेरे भी प्रिय अर्जुन।
उन सबका है ज्ञान मुझे पर तुझे नहीं है उनका ज्ञान ॥

अध्यापक

[१७]

कर्त्तव्य-निष्ठा

समादरणीय अध्यापको और अध्यापिकाओ,

आपका व्यवसाय बड़ा पवित्र और श्रेष्ठ व्यवसाय है। मेरी अपनी मान्यता तो यह है कि अध्यापन कार्य से बढ़कर अन्य कोई कार्य इस संसार में नहीं है। मैं स्वयं संन्यासी हूं और संन्यासी को भारतीय समाज में सर्वोच्च स्थान दिया गया है। परन्तु मैं तो यह मानता हूं कि एक सच्चा, अच्छा और आदर्श अध्यापक या अध्यापिका मानव समाज में एक संन्यासी की अपेक्षा कहीं अधिक मान्य और उपयोगी है। अध्यापक या अध्यापिका का कर्तव्य राष्ट्र के बड़े से बड़े अधिकारी की अपेक्षा ज्येष्ठतर है।

आप केवल शिक्षक ही नहीं हैं, राष्ट्र के सच्चे सुनिर्माता भी हैं। किसी भी राष्ट्र की वास्तविक महत्ता उसके नागरिकों और नागरिकाओं के जीवन के स्तर से मापी जाती है। और नागरिकों के जीवन का स्तर उनके रहन-सहन के स्तर से नहीं, उनके चरित्र और उनकी अनुशासन-युक्त कार्यक्षमता के स्तर से आंका जाता है। आपका कर्तव्य केवल पुस्तकें पढ़ाना ही नहीं है, राष्ट्र के भावी नागरिकों [विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों] के जीवनों का सुनिर्माण भी है।

भारत को स्वतन्त्र हुये ग्यारह वर्ष होने को आये, पर अभी तक इसके नागरिकों का न तो वैयक्तिक और पारिवारिक चरित्र ही बन पाया है, न सामाजिक और राष्ट्रीय चरित्र ही। हमारे विद्यालयों से आज जिस कोटि के नागरिक और नागरिका निकल रहे हैं, उनसे आपके प्यारे राष्ट्र का समुत्थान तथा सुनिर्माण होना सर्वथा असम्भव है। उनमें न तो शिक्षा की दृष्टि से कोई ठोसपन या गहनता है, न चारित्रिक दृष्टि से कोई उच्चता अथवा परिपक्वता है और न कार्यक्षमता वा अनुशासन की दृष्टि से कोई विशिष्टता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी कर्तव्य-निष्ठा केवल पाठ्यक्रम को पूरा कराने तक ही सीमित न रहनी चाहिये। आपकी सर्वाधिक निष्ठा अपने विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों के जीवनों में सदाचार, कार्यक्षमता तथा अनुशासन की प्रस्थापना में होनी चाहिये। इस दिशा में आज न तो माता पिता अपने कर्तव्य का पालन कररहे हैं, न अन्य कोई। आपके सिवाय और कौन है, जो इस पुनीत साध को सिद्ध करेगा। देश आपका है। राष्ट्र आपका है। ये कुमार-कुमारियां भी आपके अपने ही हैं। आप ही राष्ट्र के सेवक और आप ही राष्ट्र के स्वामी हैं। आप राष्ट्र की ओर देखिये, पैसों की ओर मत देखिये। आपको ही बिगड़ी बनानी है।

अति प्राचीन काल से भारत की यह परम्परा रही है कि यहां के अध्यापक निर्धन रहकर राष्ट्र का सुनिर्माण और विश्व का कल्याण करते आये हैं। यह बड़ी स्वस्थ और सुन्दर परम्परा थी। हमारे देश में दो वर्ग थे, जो अपने तप और त्याग के आश्रय से समाज का सर्वाधिक हित सम्पादन करते थे। वे दो वर्ग थे अध्यापक [ब्राह्मण] और संन्यासी। भारत का जब-जब भी भाग्योदय हुआ, इस वर्गद्वय के तप और त्याग की भित्ति पर स्थित होकर ही हुआ। जब जब इस वर्गद्वय में विलास और अर्थलिप्सा ने प्रवेश किया, तब तब ही इस राष्ट्र का अधःपतन हुआ।

आपका बड़ा सौभाग्य है कि आप आचार्य हैं, अध्यापक हैं, अध्यापिका हैं और आपको राष्ट्रनिर्माण तथा विश्व-कल्याण का महत् कार्य सौंपा गया है। आप अनन्य निष्ठा के साथ इस साधनामय यज्ञ का अनुष्ठान किये जायें। समय आयेगा जब आपके द्वारा राष्ट्र का सर्वोदय होने पर राष्ट्र आपकी पदरज अपने मस्तक पर लगायेगा, जन-जन आपका स्तवन करेगा और देश का कण-कण आपका अभिगान करेगा।

मैं तो अब भारत के प्रत्येक वर्ग से नितान्त निराश हो चुका हूं। संन्यासियों से भी मुझे कोई आशा नहीं रही है। मुझे कोई आशा है तो आज केवल आपसे है और इसीलिये मैंने इस लेखमाला द्वारा आपसे सम्पर्क स्थापित किया है।

—विदेह

विद्यार्थी

[१७]

कर्त्तव्य-निष्ठा

पुत्रियो और पुत्रो,

कर्तव्य-निष्ठा एक बड़ा ही प्रशंसनीय और दैवी गुण है, जिसका अभ्यास तुम्हें अभी से करना चाहिये। प्रत्येक करणीय कार्य एक पुनीत कर्तव्य है। तुम्हें जो भी कर्तव्य कार्य सौंपा जाये, उसका निष्ठापूर्वक निर्वहन करो।

निष्ठा नाम सच्ची भावना का है। निष्ठा अथवा सच्ची भावना के साथ किया गया प्रत्येक कार्य तुम्हारे जीवन में नित्य नया निखार पैदा करेगा और उससे तुम श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम होते चले जाओगे।

विद्यार्थी जीवन में सत्य निष्ठा के साथ विद्या का उपार्जन, उत्तम स्वास्थ्य का सम्पादन, शरीरसम्पदा का निष्पादन, कार्यक्षमता का प्रस्थापन और अनुशासन का पालन करना सीखो।

नित्य निष्ठापूर्वक विद्याध्ययन करो। प्रति दिन बिना व्यवधान अपनी कक्षा में जाकर अपने पूज्य और आदरणीय आचार्यों के चरणों में बैठकर भिन्न भिन्न विषयों का ज्ञानोपार्जन करो। अपने अध्यापक अध्यापिकाओं की कभी भूलकर भी निन्दा न करो, न कभी उनकी खिल्ली उड़ाओ। सदा स्मरण रखो कि जो विद्यार्थी अपने अध्यापकों के प्रति निष्ठा नहीं रखते, उनकी विद्या सच्चे अर्थों में फलवती नहीं होती है। अवसर मिलने पर तुम्हें अपने अध्यापकों की सेवा भी करनी चाहिये। यदि तुम सचमुच भाग्यशाली बनना चाहते हो, तो तुम उनके प्रति सच्चे हृदय से सनिष्ठ रहो।

परिवार में जो तुम्हारे माता पिता, दादा दादी, भ्राता भावी, आदि गुरुजन हैं, उनके चरणों में भी तुम्हारी पूर्ण निष्ठा रहनी चाहिये। यही नहीं, समाज में भी जो वृद्ध जन हैं, उनके प्रति भी सदा सनिष्ठ रहो। निष्ठापूर्वक साभिवादन जो गुरु जनों का सेवाकार्य तथा समादर करते हैं, उनके स्वास्थ्य, ऐश्वर्य और ज्ञान की सदा अभिवृद्धि होती रहती है।

परमात्मा, आत्मा और धर्म के प्रति भी तुम्हारी निष्ठा रहनी चाहिये। पश्चिमी पवन के कुप्रभाव से प्रभावित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर आजकल बहुत से विद्यार्थी परमेश्वर, आत्मा और धर्म के विषय में आस्थाहीन होगये हैं। यह अच्छी बात नहीं है। तुम ऐसा कदापि न करो, अन्यथा तुम्हारी अपार हानि होगी। निष्ठापूर्वक नित्य दोनों समय प्रभु की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करो। विद्याध्ययन करते हुये आत्मोन्नति अवश्य करो। नितान्त धार्मिक जीवन बिताओ। कभी भूलकर भी नास्तिकों की सी बातें न करो। अनात्मवादी और धर्महीन न बनो। प्रभुमय, आत्मिक और धार्मिक जीवन में जो अमृतमय आनन्द है, वह अन्यत्र और अन्यथा कहीं कदापि नहीं हो सकता।

जो तुमसे छोटे हैं, उनमें भी तुम्हारी निष्ठा होनी ही चाहिये। मैं तो कहता हूं, प्राणी मात्र में तुम्हारी निष्ठा हो। छोटों के प्रति वात्सल्यमय निष्ठा होती है और बड़ों के प्रति पूज्यतामय निष्ठा। सब प्राणियों के प्रति जो निष्ठा होती है, उसमें आत्मतत्व और जीवतत्व की प्रतिष्ठा होती है।

अपने राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक और विश्व के प्रत्येक मानव के प्रति तुम्हारी निष्ठा हो। अपने देश के कण-कण में और स्व राष्ट्र के जन-जन में अपनी निष्ठा को व्याप दो। प्रत्येक शुभ श्रेष्ठ में तुम्हारी निष्ठा समाहित रहे। निष्ठा ही सेवा और साधना का आधार है। निष्ठा परम कर्तव्य है। निष्ठाविहीन व्यक्ति विष्ठा से भी अधिक मलिन, दुर्गन्धित और अपावन होता है। निष्ठायुक्त व्यक्ति निर्मल, सुरभित और पतितपावन होता है। वह धन्य है, जो निष्ठावान् है।

—विदेह

वेदोद्धार

कभी एक विप्र-कन्या ने चीत्कार की थी, "**को वेदानुद्धरिष्यति**—वेदों का उद्धार कौन करेगा, कौन है जो वेदों का उद्धार करेगा, क्या कोई है जो वेदों का उद्धार करेगा?" उसका उत्तर कुमारिल भट्ट ने यह कहकर दिया था, "भट्टाचार्योस्ति भूतले, स वेदानुद्धरिष्यति—भट्टाचार्य भूतल पर है, वह वेदों का उद्धार करेगा"। और सचमुच भट्टाचार्य ने वेदों के उद्धार में अपने जीवन को होम दिया, किन्तु वह पूर्णतया सफल न हो सका।

कालान्तर में वेदों का पुनः सर्वथा लोप होगया। विरजानन्द चीत्कार करने लगा, "को वेदानुद्धरिष्यति—कौन वेदों का उद्धार करेगा ?" दयानन्द ने उत्तर दिया, "दयानन्दोऽस्ति भूतले, स वेदानुद्धरिष्यति—दयानन्द भूतल पर है, वह वेदों का उद्धार करेगा"। और सचमुच उसने भी अपने आपको पतंगवत् वेदों पर स्वाहा कर दिया, किन्तु वह भी पूर्णतया सफलकाम न हुआ।

आज फिर स्वयं वेदमाता चीत्कार कर रही है, "को मामुद्धरिष्यति—मेरा कौन उद्धार करेगा, क्या कोई है जो मेरा उद्धार करेगा ?" एक है, जिसने कह दिया है, "अहमस्मि भूतले, अहं त्वामुद्धरिष्यामि—मैं भूतल पर हूं, मैं तेरा उद्धार करूंगा"। वह अहर्निश वेदोद्धार में लगा हुआ है। देखें वह कहां तक सफल होता है।

मुझे लगता है, वेदों का पूर्णोद्धार तो तब ही होगा, जब प्रत्येक वेदप्रेमी वेदोद्धारार्थ स्व सर्वस्व समर्पण करता हुआ कहेगा—

अहं वेदानुद्धरिष्यामि—मैं वेदों का उद्धार करूंगा।

अहं वेदानुद्धरिष्यामि—मैं वेदों का उद्धार करूंगी।

अहं वेदानुद्धरिष्यामि – मैं वेदों का उद्धार करूंगा॥

राष्ट्रोद्धार

स्वतन्त्र भारत में आबालवृद्ध सबके कण्ठ से एक ही ध्वनि निकल रही है, "**को राष्ट्रमुद्धरिष्यति**—राष्ट्र का कौन उद्धार करेगा, कौन है जो राष्ट्र का उद्धार करेगा, क्या कोई है जो राष्ट्र का उद्धार करेगा ?"

भारत के राष्ट्रपति से निजी तौर पर एकान्त में मिलिये। वह कहते हैं—स्वतन्त्रताप्राप्ति के क्षण से ही राष्ट्र का भयंकर पतन होरहा है। राष्ट्र के समुत्थान की कोई सूरत नज़र नहीं आती।

भारत के प्रधान मन्त्री से मिलिये। वह भी यही कहते हैं—दिन पर दिन राष्ट्र का अधःपतन होरहा है। क्या किया जाये, कुछ समझ में नहीं आता।

किसी भी राज्य-मन्त्री अथवा केन्द्र-मन्त्री से मिलिये। सब यही कहते हैं—राष्ट्र बड़ी तेज़ी से गिरावट की ओर जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचे चपरासी से लेकर ऊपर तक किसी भी राजकर्मचारी से मिलिये। सब यही कहते सुनायी पड़ते हैं—राष्ट्र की शोचनीय अवस्था है।

खेत में, कारखाने में, स्कूल में, कॉलेज में, गुरुकुल में, पाठशाला में, मन्दिर में, मस्जिद में, चर्च में, विहार में, समाज में, संस्था में, घर में, दूकान में, किसी से कहीं भी मिलिये। सब यही कहते सुने जाते हैं—देश डूब रहा है।

भारत के सेंतीस करोड़ नागरिक एक कण्ठ से भारत की दुरवस्था पर और भारत के महत् पतन पर आंसू बहा रहे हैं, आहें भर रहे हैं, कराह रहे हैं। सब निराश हैं, सब हताश हैं। पर कोई यह नहीं कहता है कि—**अहं राष्ट्रमुद्धरिष्यामि—मैं राष्ट्र का उद्धार करूंगा"।**

रात दिन राष्ट्र के अधःपतन का रोना रोने के बजाय यदि भारत का प्रत्येक नागरिक कहने लग जाये—"अहं राष्ट्रमुद्धरिष्यामि—मैं राष्ट्र का उद्धार करूंगा", और तदनुसार ही तत्परता और ईमानदारी के साथ कार्य करने लग जाये, तो निस्सन्देह कुछ दिनों में नहीं तो कुछ महीनों में राष्ट्र का पूर्णोद्धार होजाये। राष्ट्र का एक-एक नागरिक आत्मना बोले—

अहं राष्ट्रमुद्धरिष्यामि,
अहं राष्ट्रमुद्धरिष्यामि,
अहं राष्ट्रमुद्धरिष्यामि ॥

परीक्षा-स्थल

यह संसार एक परीक्षा-स्थल है और स्वयं भगवान् हैं निरीक्षक और परीक्षक।

पाप और अपराध से न ज्ञानी ध्यानी बच सकता है न बहुपठित और बहुश्रुत, न वनी संन्यासी बच सकता है न ऋषि और मुनि, न सन्त महान्त बच सकता है न भक्त और कर्मकाण्डी। पाप और अपराध से केवल वही बच सकता है, जो प्रति क्षण अपने को परीक्षा की कसौटी पर समझता है।

जब तुम्हें कहीं किसी का धन पड़ा हुआ मिले तो समझ लो कि तुम्हारे मार्ग में इस प्रलोभन को पटक कर भगवान् तुम्हारी परीक्षा ले रहे हैं। ऐसा समझ कर तुम उस धन से हाथ मत लगाओ या उस धन के स्वामी का पता लगाकर उसे उसके स्वामी के पास पहुंचाओ।

जब कोई सुन्दरी तुम्हारे समीप आये तो समझ लो कि नारी के सम्पर्क से भगवान् तुम्हारी परीक्षा लेरहे हैं। तुम उस नारी में माता या पुत्री की भावना करके उसके साथ उसी प्रकार वर्तो और बोलो।

जब कोई सुन्दर तुम्हारे सम्पर्क में आये तो समझ लो कि पुरुष के सम्पर्क में लाकर भगवान् तुम्हारी परीक्षा ले रहे हैं। तुम उसमें पिता, पुत्र या बन्धु की भावना करके उसके साथ उसी प्रकार वर्तो और बोलो।

जब तुम्हारे भीतर किसी विकार या वासना का आवेग आये तो समझ लो कि भगवान् तुम्हारी परीक्षा ले रहे हैं। तुम शान्त और संयत होकर उस आवेग का शमन करो।

प्रत्येक घटना तुम्हारी परीक्षार्थ घटित होरही है, यह कभी कदापि न भूलो। साथ ही यह भी स्मरण रखो कि भगवान् केवल उसी को परीक्षा में उत्तीर्ण करते हैं, जो शत प्रति शत नम्बर प्राप्त करता है।

—विदेह

याद और फ़र्याद

तेरी याद में शाद रहूं मैं सदा,
मुझे और किसी की याद न हो।
मैं दिल का दर्द कहूं तुझसे,
मेरी और कहीं फ़र्याद न हो ॥ १
यह दिल अरमानों की बस्ती,
इस दिल में ही तू रहता है।
ऐ जान तेरे ही हाथों से,
तेरी बस्ती बरबाद न हो ॥ २

हर चीज यहां की फ़ानी है,
हर एक नजारा धोखा है।
दुनियां के फ़रेबों पर नादां,
यों शाद न हो नाशाद न हो ॥ ३
इन आंखों से गो देखे हैं,
यहां एक से एक हसीन मगर।
पाया न हसीन कोई ऐसा,
कि "विदेह" से भी बेदाद न हो ॥ ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

AN ILLUSTRATION OF NON-ATTACHMENT

[*A. D. S. Scott*]

I have just read a book entitled "I Leap Over The Wall", by Miss Monica Baldwin. Miss Baldwin is a member of the Roman Catholic branch of Christianity and had been a Nun in an enclosed order of her church for some 28 years before leaving it in 1942 and returning to a more normal way of life.

For those of you, who might not clearly understand what constitutes being a member of an enclosed order in the Roman Catholic Church, I will briefly elucidate to the best of my ability.

A band of women known as nuns form a religious community and in order to offer themselves entirely to God, they shut themselves off from any contact with the outside world, in a monastery. If it is necessary for them to converse with visitors, they do so only through a metal grill. They wear thick uncomfortable costumes designed in the early years of the Christian Church and live a very severe life. By concentrated prayer and praise to God they believe that they are being of greater service to God and man than they would be by living a more usual existence with homes and families. There are of course many masculine orders of a similar nature.

When Miss Monica Baldwin left her particular monastery in 1942, the world appeared to be a vastly different place to what it had been in 1914. The book is written with great sensitivity and humour and without any bias. In addition to describing very fascinatingly her impressions of an England changed almost beyond her recognition, new habits and fashions, strange expressions of speech and terrifying modes of transport, Miss Baldwin also gives us a clear picture of life behind the walls of an enclosed monastery.

Two points however impressed me considerably after reading this book.

Firstly, that the ultimate aim of these nuns is to devote their whole existence to the service of God. They do, through means peculiar to their own faith, endeavour to clear their minds of all attachments, in order that they may be ready to accept the light of God. Their lives are examples of utter humility and constant praise. But what is so striking is that their aims and ideals are common to all religions and shared by sincere, Good-seeking men and women everywhere. It, therefore, became apparent to me that although certain of their beliefs, patterns of thought, dogma, and means and methods of worship are often alien to adherents of other faiths, their basic and ultimate intentions are entirely similar.

The second point to impress itself upon me was how attached most of us become to very transitory things in life. To name but a few–social habits and customs, political movements, new scientific conveniences and the myriad of other things that go to make up our daily existence. All these we consider to be an essential part of living. We can't possibly visualise ourselves living without them. But Miss Monica Baldwin, an average young woman of her day when she entered the monastery found all such things to be unnecessary and relatively unimportant. When she left the monastery, the foregoing 28 years as lived outside of her small community seemed almost like an interesting, partly sad and partly amusing cinema.

Miss Baldwin's immensely interesting book showed me how necessary it is for us not to become over-attached to the world around us, although living and enjoying our alloted place in it. Our only real attachment must be to God.

We can sit with God on the banks of the river of life and watch the vivid panorama swirling and sweeping past us. Please let us not leave hold of our Father's hand and plunge into that river and drown.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(8)

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायव: ।
अण्वीभिस्तना पूतास: ॥ (Rig. 1. 3. 4)

Thy beauty is a unique beauty. All the visible beauty of this creation and all the perceptible glamour of nature is only a slight reflection of Thy charming elegance.

There is an inimitable charm in Thy beauty. The image of none else can enter the heart and the eyes which are permeated with Thy Beauty. Whoever once catches Thy glimpse, becomes Thine and Thine alone. He gets continually drawn towards Thee and finally receives immortal repose in Thee—is absorbed in Thee.

In pursuit of this destination of perpetual repose and in being thus progressively driven towards Thee, the one charmed by Thee, Thy lover, gets on being imbued and infused with Thy colour, goes on adopting Thy image, gets on becoming bright and pure, chaste and sacred and benignly accomplished.

Just as drop by drop unfathomable water accumulates in the ocean and tides continually flow therein, in the same way one by one Thy lovers gather in multitudes in all directions, wherever one may see. These pure souls, these whole-hearted lovers, these pious and holy ascetics are all invoking Thee. They are carrying hidden in their hearts Thy painful memory. In their ambition of union with Thee, in their desire of Thy happy meeting, they are standing with soul-lamps burning in their heart-temples.

O graceful Lord of Heaven! Come! And by making them drink the nectar of Thy divine view, quench their fire of separation.

One does not know how many love-drops have consumed themselves in waiting for Thee. Do gratify the yearnings of at least those that remain.

चित्रभानो इन्द्र graceful beloved! आ याहि come. इमे अण्वीभि: तना पूतास: सुता: These outspread by whits pious well-accomplished souls त्वायव: long for Thee.

[Translated by Shri B. B. Hajela]

CLEAN TEETH

सं यो वना युवते शुचिदन्
भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्य ॥ (Rig. 7. 4. 2)

य: शुचि–दन् one who is clean-teeth, भूरि वना सं युवते gets with the store of rays and सं अत्ति digests अन्ना चित् eatables सद्य: इत् very quickly.

Dear little fellows,

Keep your teeth always clean. Clean teeth sparkle like pearls. Just as rays shoot off from the sun and spread light, in the same way clean white teeth brighten up the face. They add to elegance.

All people mix affectionately with and talk to those who have clean teeth, while they hate those with unclean teeth and avoid even having a look at them.

Clean teeth sharpen digestion. Sharp digestion purifies the sap, the blood and the semen. Heart and lungs work well. One having clean teeth chews well and quickly digests what he eats. clean teeth keep one to be handsome, healthy, happy and long-living.

Eat and drink at the time fixed for the purpose and cleanse the inner part of the mouth with water at least twenty times thereafter. Have the cleaning of the teeth every morning with a tender brush made of the Babool or the Banyan tree or use some good tooth-powder or tooth-paste. The mouth must also be internally cleaned with enough number of mouthfuls of water after using the tooth-powder or tooth-paste. Have the benefit of learning other useful things from your parents and teachers in this connection.

Should you have your clean teeth,
It will keep you wise and neat.

[From Videh's *VEDIC BALA-SHIKSHA*, translated by Shri Kishori Lal Gupta]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदव्याख्याग्रन्थ

.. . प्रथम व द्वितीय पुष्प

The annotations are good and detailed. The language is easy flowing Hindi and it is the only way in which Vedic texts may be understood by the lay public. Even for scholars, I am sure, the books will be very useful and instructive. I wish you do continue to publish the edition. I trust that the books will become popular and will acquire wide circulation. Every true Hindu must possess a copy of the book and get acquainted with our ancient scriptures, particularly with the Vedas.

I am glad that you have undertaken the publication of a number of useful books on religion and philosophy in sanskrit. I wish your institution will grow in size and even usefulness to the community.

M. Ananthasayanam Ayyangar,
Speaker Lok Sabha

गायत्री मन्त्र तथा महामृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान

मैंने "गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान" तथा "महामृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान"—विदेहजी की ये दोनों रचनायें देखीं, पढ़ीं तथा उनपर मनन किया। दोनों कृतियां ललित एवं प्रशंसनीय हैं। मन्त्र का पदपाठ, अन्वय, अर्थ, मन्त्रप्रयुक्त शब्दों पर कई दृष्टिकोणों से गहन विचार, सरल व्याख्या, फिर समस्त मन्त्र की विशद व्याख्या, अनुष्ठान की पूर्वविधि तथा विधि, सुन्दर आत्मशंसन, प्रार्थना तथा अनुष्ठान का महत्त्व–इस क्रम के द्वारा मन्त्रों को पूर्णतया सुबोध बना दिया है। ऐसे मन्त्रार्थ कहीं सुनने पढ़ने को नहीं मिलते। विदेहजी की लेखनी से संस्पृष्ट होते ही भाषा में एक दैवी ओज आजाता है, भावों पर उनके सात्त्विक, विशिष्टबोध-मय व्यक्तित्व की छाप है। ऐसे विद्वत्तापूर्ण, खोजपूर्ण मन्त्रार्थ अन्य प्रधान मन्त्रों के भी प्रकाशन हो सकें तो जिज्ञासुजन उपकृत होंगे। इन्हें पढ़कर तो अन्तःकरण में सचमुच प्रकाश सा होता है, प्रार्थना के लिये प्रेरणा एवं स्फूर्ति उत्पन्न होती है तथा ईश्वर के प्रति श्रद्धाभक्ति जागृत होती है, आनुषंगिक रूप से ज्ञानवृद्धि तो होती ही है।

[प्रोफ़ेसर] शिवानन्द शर्मा,
[एम० ए०, अंग्रेजी संस्कृत]

राम-चरित

आचार्य श्री विदेह जी की यह कृति "राम-चरित" सचमुच गागर में सागर भरने की कहावत को चरितार्थ करती है। इसमें राम-चरित को बड़ी सरलता और मनो-रंजकता के साथ वाल्मीकीय रामायण के आधार पर धारावाहिक कथा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। महर्षि महाकवि वाल्मीकि की रामायण में, जैसा कि "महाभारत" ग्रन्थ-रत्न में हुआ, प्रक्षेप आगये हैं। विद्वान् लेखक ने स्वाभाविकता को ध्यान में रखते हुये अपनी कृति में समाधान किया है। भाषा सरल, सुगम है। साधारण पाठकों के लिये भी सुबोध है। पुनर्जागरण और विज्ञान के इस युग में ऐसी सुन्दर पुस्तक की आवश्यकता थी। श्री विदेह जी ने यह पुस्तक लिखकर बड़ा काम किया है। यह पुस्तक घर-घर में होनी चाहिये।

[उपन्यास सम्राट्] वृन्दावनलाल वर्मा

प्रकाशन-प्राप्ति

वेदव्याख्याग्रन्थों के पुष्प तथा वेद-संस्थान के अन्य सब प्रकाशन निम्न स्थानों पर मिलते हैं—

[१] श्री वंशीलाल जी आर्य,
दयानन्द वाटिका, राम बाग़
सब्ज़ी मण्डी, दिल्ली—६

[२] श्री सुरेन्द्रनाथ जी तिवारी,
१४, तुलाराम बाग़,
इलाहाबाद—६

[३] श्री मास्टर बृजमोहन जी शर्मा, बी. ए.,
सीमेण्ट वर्क्स स्कूल,
पो० लाखेरी सीमेण्ट वर्क्स
(बूंदी—राजस्थान)

[४] देव-प्रकाशन, अजमेर

[५] प्रार्थना सभा, बटाला [पंजाब]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ११ : अंक ६ अक्तूबर १९५८ : आश्विन २०१५

सविता

[वेद-संस्थान का मासिक पत्र]

पंजाब सरकार द्वारा पंजाब-राज्य के स्कूलों व कॉलिजों के लिये स्वीकृत

सम्पादक :
विश्वदेव शर्मा

मूल्य :
देश में— वार्षिक ३) रु०
एक प्रति २५ नये पैसे
विदेश में—वार्षिक ६ शि०
एक प्रति ६ पेंस

पत्र-व्यवहार का पता :
व्यवस्थापक, वेद-संस्थान, अजमेर

वेद-संस्थान के लिये पं० विश्वदेव शर्मा द्वारा, आदित्य मुद्रणालय, बाबू मोहल्ला, अजमेर में मुद्रित तथा प्रकाशित

प्रचार प्रसार

यदि तुम नेकी का प्रचार प्रसार करना चाहते हो तो तुम स्वयं नेकी बन जाओ।

यदि तुम प्रेम का प्रचार प्रसार करना चाहते हो तो तुम स्वयं प्रेम बन जाओ।

यदि तुम सत्य का प्रचार प्रसार करना चाहते हो तो तुम स्वयं सत्य बन जाओ।

यदि तुम प्रकाश का प्रचार प्रसार करना चाहते हो तो तुम स्वयं प्रकाश बन जाओ।

तत् होकर ही तुम तत् का प्रचार प्रसार कर सकते हो। तत् होकर ही तुम तत्त्व को व्याप सकते हो।

तुम स्वयं वही बन जाओ, जिसका तुम प्रचार प्रसार करना चाहते हो।

—विदेह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सविता

लेख-क्रम

हृदय-प्याला	विदेह	१३१
प्रबोध	,,	१३२
विश्व-स्वस्ति	,,	१३४
गीता-योग [४२]	,,	१३६
अध्यापक [१८]	,,	१३७
विद्यार्थी [१८]	,,	१३८
एक मर्मस्पर्शी पत्र	आर्य	१३९
वस्तुस्थिति	विदेह	१४०
आत्म-विजय	,,	१४२
वह देखो	,,	१४३
शान्त और शान्ति	,,	१४३
योगी	,,	१४३
अपराधी	,,	१४३
सब की मुक्ति में व्यक्ति की मुक्ति	विनोबा	१४३

मन्त्रानुक्रम

इदं त्यत् (ऋ० ६.४४.१६)	१३१
चिदसि मनासि (य० ४/१९)	१३२
स्वस्ति मात्र उत (अ० १.३१.४)	१३४

संस्थान-प्रकाशन

विदेह-विरचित

❀वेदव्याख्याग्रन्थ—प्रथम पुष्प	२.००
❀वेदव्याख्याग्रन्थ—द्वितीय पुष्प	१.५०
गायत्री—[द्वितीय संस्करण]	१.५०
गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान	०.२५
महामृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान	०.२५
सार्वभौम आर्य साम्राज्य	०.५०
❀वैदिक बालशिक्षा—प्रथम भाग [तृतीय संस्करण]	०.३७
❀वैदिक बालशिक्षा—द्वितीय भाग [द्वितीय संस्करण]	०.३७
वैदिक योग-पद्धति—[द्वितीय संस्करण]	०.३७
सन्ध्या-योग [द्वितीय संस्करण]	०.२५
स्वस्तियाग	०.७५
यज्ञोपवीत-रहस्य—[चतुर्थ संस्करण]	०.०६
संस्कृत-शिक्षा—प्रथम भाग [द्वि०संस्करण]	०.१९
संस्कृत-शिक्षा—द्वितीय भाग [द्वि०संस्करण]	०.३७
सत्यनारायण की कथा—[द्वितीय संस्करण]	०.३७
सत्संग-गीतावली	०.३७
दिव्य-भावना	०.०६
राम-चरित	१.५०
साधना	१.००

सविता की जिल्दें, वर्ष ४,५,६,८,९,१०

प्रति जिल्द ३.२५

❀ पंजाब शासन द्वारा राज्य की शिक्षण-संस्थाओं के लिये स्वीकृत

डाकव्यय पृथक्

वेद-संस्थान, अजमेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[वेद-संस्थान अजमेर का मासिक पत्र]

वर्ष ११ || अजमेर, अक्तूबर १९५८, (इषः) आश्विन २०१५ || अङ्क ९ पूर्णाङ्क १२९

हृदय-प्याला

इदं त्यत् पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।
मत्सद्यथा सौमनसाय देवं व्यस्मद्द्वेषो युयवद्व्यंहः ॥
(ऋ० ६.४४.१६)

इदं त्यत् पात्रं इन्द्र-पानं इन्द्रस्य प्रियं अमृतं अपायि ।
मत्सत् यथा सौमनसाय देवं वि अस्मत् द्वेषः युयवत् वि अंहः ॥

(इदं) यह हृदय ही है (त्यत् इन्द्र-पानं पात्रं) वह इन्द्र-पान पात्र, इन्द्रियों के स्वामी आत्मा के पान करने का वह प्याला, जिसमें (इन्द्रस्य) लोकलोकान्तररूपी इन्द्रियों के स्वामी परमात्मा का (प्रियं अमृतं अपायि) प्रिय अमृत पान किया जाता है। इसी पात्र में आत्मा (सौमनसाय) आनन्द-प्राप्ति के लिये (देवं) परमात्मदेव को (यथा मत्सत्) यथावत् प्रसन्न करे। ऐसा आत्मा (अस्मत्) हमसे (द्वेषः वि युयवत्) द्वेष दूर करे, (अंहः वि युयवत्) पाप दूर करे॥

यह हृदय ही है वह प्याला,
जिसमें पान किया जाता है,
परब्रह्म का प्रिय अमृत।

इन्द्रियों का स्वामी यह आत्मा,
ब्रह्मदेव को कर पाता है,
इसमें ही प्रसन्न यथावत्।

वैसा ही संसिद्ध आत्मा,
पृथक् करे द्वेष को हमसे,
पृथक् करे पाप को हमसे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबोध

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदितिरस्युभयतः शीर्ष्णी ।
सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि मित्रस्त्वा पदि बध्नीतां पूषाध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय ।।
(य० ४/१९)

चित् असि मना असि धीः असि दक्षिणा असि क्षत्रिया असि यज्ञिया असि अदितिः असि उभयतः शीर्ष्णी ।
सा नः सु-प्राची सु-प्रतीची एधि मित्रः त्वा पदि बध्नीतां पूषा अध्वनः पातु इन्द्राय अध्यक्षाय ।।

१) तू (चित् असि) चित् है ।
२) तू (मना असि) मना है, (धीः असि) धी है, (दक्षिणा असि) दक्षिणा है, (क्षत्रिया असि) क्षत्रिया है, (यज्ञिया असि) यज्ञिया है, (अदितिः असि) अदिति है, (उभयतः शीर्ष्णी) दोनों ओर शिरवाली है ।
३) (सा) वह तू (नः) हमारे लिये (सु-प्राची सु-प्रतीची) सु-प्राची और सु-प्रतीची (एधि) हो ।
४) (अधि-अक्षाय इन्द्राय) अध्यक्ष इन्द्र के लिये (त्वा) तुझे (मित्रः) प्राण (पदि) साधना में (बध्नीतां) बांधे, (पूषा) मन (अध्वनः) मार्ग से (पातु) बचाये ।

वीर आत्मसेनानी का यह आत्म-सम्बोधन है । जीवन-पथ पर चलते हुये, मानव के एक ओर सजीली मोहनी माया अपनी वासनामय असंख्य सेनाओं का चक्रव्यूह रचे खड़ी है । उसके दूसरी ओर खड़ा है अकेला धर्म, ब्रह्मकवच धारण किये हुये और पुण्यास्त्र संभाले हुये ।

"मानव ! मेरी ओर आ । मेरी सेवा में उपस्थित रह । देख, इधर कसी मोहकता है । यहां विषय-सुख है, भोग-विलास है, कान्त है कामिनी है, कनक है ऐश्वर्य है" माया ने इठलाते हुये कहा ।

"माया ! मैं मानव हूं, इस ब्रह्माण्ड में ब्रह्म की पावन कृति हूं । न मैं तेरी शरण में आऊंगा, न तेरी उपासना करूंगा, न तेरे आगे नतमस्तक हूंगा । तेरे आधीन न होकर मैं तुझपर शासन करूंगा । मैं धर्म के कक्ष में और मानवता के पक्ष में स्थित हूं", मानव ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया ।

"पाप-वासनाओं और विकारवृत्तियों की मेरी अनन्त सेनायें हैं । जब मैं अपनी सम्पूर्ण सेनाओं के साथ तुझपर प्रहार करूंगी तो तेरा धर्म तेरी क्या रक्षा करेगा ?", माया ने मुस्कराते हुये कहा ।

"धर्मो रक्षति रक्षितः", मानव ने सत्वर उत्तर दिया ।

माया ने सब ओर से प्रबल प्रहार प्रारम्भ कर दिया । मानव संभल कर अपने संबल को तोलने लगा । सर्वप्रथम अपने आत्मा को सम्बोधन करते हुये वह बोला, "मेरे आत्मन् ! तू (चित् असि) चित् है । तू चेतन है । तुझमें चेतना है । यह अचेतन जड़ माया तेरा क्या साम्मुख्य करेगी । अचेतन की क्या मजाल कि चेतन को परास्त कर सके । तेरी चेतना के सामने यह अचेतन माया एक क्षण भी नहीं टिक सकती" ।

सचमुच, जब आत्म-अचेतना अथवा आत्म-विस्मृति होती है, तब ही माया मानव पर अपना अधिकार जमाती है और मानव को मन-चाहा नाच नचाती है । जब मानव में आत्म-चेतना जागृत होजाती है, जब उसे आत्म-स्मृति हो आती है, तब उसके सामने से माया के पैर उखड़ जाते हैं और वह पूर्णतया परास्त हो जाती है ।

जब तक मानव आत्म-विस्मृति में निमग्न रहता है, तभी तक उसकी काया भी माया में ग्रस्त रहती है, तभी तक उसकी ज्ञानेन्द्रियां, मन तथा बुद्धि माया की ओर आकृष्ट और प्रवृत्त रहते हैं । आत्म-चेतना, आत्म-बोध, आत्म-स्मृति अथवा आत्म-अवस्थिति के सिद्ध होने पर मानव की काया भी आत्म-साधिका बन जाती है, आत्मा का साथ देती है ।

माया के प्रबल आवेगों को सहारते हुये और अपने आत्म-संबल को संभालते हुये, मानव ने अपनी काया को सम्बोधन किया—

१) मेरी काया ! तू (मना असि) मनवाली है । तुझमें वह जीता जागता मन निहित है, जो तीव्रगामी और ज्योतियों की ज्योति है, जिसकी सहायता से मनीषी जन सुकर्मों का अनुष्ठान करते हैं और धीर जन जीवनयज्ञों में विजय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादन करते हैं । यह वह शिवसंकल्पयुक्त मन है, जो इन्द्रियप्रजाओं का परम पूज्य यक्ष है, जो सर्व ज्ञान-विज्ञानों का स्रोत है, जिसमें सब वेदविद्यायें प्रतिष्ठित हैं, जो जीवनरथ का सुसारथि है।

२) मेरी देह ! तू (धीः असि) बुद्धिवाली है। तेरे पास बुद्धि है, वह बुद्धि, जिसके बोध प्रबोध से मायाजन्य अखिल दुरितों का निवारण होता है।

३) मेरी देह ! तू (दक्षिणा असि) दक्षता-निधि है। शिव-संकल्प-मय मन से युक्त और बोध-प्रबोध-प्रद बुद्धि से प्रबुद्ध होकर तू अक्षय दक्षता की साक्षात् निधि है। तेरी दक्षता से मायाजन्य सकल दुर्भूत नितान्त पराभूत होजाते हैं।

४) मेरी जीवनि ! तू (क्षत्रिया असि) क्षत्रिया है। सुमन, सुबुद्धि और दक्षता से सम्पन्न होकर तू मायाजन्य समस्त क्षतियों का क्षय करके क्षत्र का, धर्मक्षत्र का, आत्मक्षत्र का, आत्मराज्य का आधार और आश्रय है।

५) मेरी जीवनि ! तू (यज्ञिया असि) यज्ञिया है, सुपूज्या सम्पूज्या है। सुमन, सुबुद्धि, दक्षता और क्षत्र से सुनिष्पन्न होकर तू मायाजन्य सकल दुष्कृतियों का निवारण करके यज्ञों, सुकृतों, श्रेष्ठतम-कर्मों की सुसम्पादिका बन जाती है।

६) मेरी जीवनि ! तू (अदितिः असि) अदीना है। सुमन, सुबुद्धि, दक्षता, क्षत्र और यज्ञीयता से युक्त होकर तू अखिल दीनताओं से मुक्त होजाती है।

७) मेरी जीवनि ! तू (उभयतः शीर्ष्णी) दोनों ओर शिर वाली है। सुमन, सुबुद्धि, दक्षता, क्षत्र, यज्ञीयता और अदीनता से सुसम्पन्न होकर तू उभय-शिरा होजाती है, लोक और परलोक दोनों ओर शिरण-संघर्ष करनेवाली होजाती है, अधर्म का नाश और धर्म की प्रस्थापना करानेवाली बन जाती है, उभय-योधिनी बनकर उभयतः युद्ध करती है।

आत्म-चेतना और जीवन-साधना से संसिद्ध होकर मानव धर्म पर आरूढ़ हुआ और ब्रह्म-कवच धारण करके अपि च पुण्यास्त्र से सुसज्ज होकर उसने माया की अपार सेना पर प्रत्याक्रमण किया। माया का पूर्ण पराभव करके मानव माया की पृष्ठ पर प्रतिष्ठित हुआ। उसने उभय लोकों को विजय किया और सूर्य व चन्द्र के समान स्वस्तिपूर्वक धर्म के सुपथ पर प्रगमन करता हुआ वह ब्रह्मलोक में प्रविष्ट हुआ। वह अपने जीवन के पूर्व [प्रभात] में सूर्य के समान उदय हुआ, वह अपने जीवन के मध्याह्न में सूर्य के समान प्रकाशमान रहा और अपने जीवन के पश्चिम [सायं] में सूर्य के समान अस्त हुआ।

वह जीवन कोई जीवन है,
आत्म – विस्मृत होकर,
काया को भोगों में फूंका,
और माया से हारा॥
जीवन उसका धन्य कि जिसने,
आत्म–अवस्थित होकर,
काया को यज्ञीय बनाकर,
उभय लोक को जीता॥
जन्मा सूर्य समान उदित हो,
चमका सूर्य समान,
जगती को प्रकाशित करके,
अस्त हुआ ज्यों भानु॥

उस आदर्श मानव के आदर्शों से आकर्षित होकर अन्य मानव जीवनी को सम्बोधन करें—जीवनि ! (सा) वह तू (नः) हम सबके लिये (सु-प्राची सु-प्रतीची एधि) सु-प्राची और सु-प्रतीची हो।

प्राची नाम पूर्व दिशा का है, जिसमें सूर्य उदय होता है। प्रतीची नाम पश्चिम दिशा का है, जिसमें सूर्य अस्त होता है। उदय और अस्त के बीच में सूर्य दिन भर प्रकाशता है। प्राची नाम उदय-अवस्था का है और प्रतीची नाम है अस्त-अवस्था का। उदय और अस्त के बीच की अवस्था प्रकाशन-अवस्था है। प्राची नाम प्रादुर्भवन का है और प्रतीची नाम है अदर्शन का। मानव का जन्म प्राची-अवस्था है और उसका देहावसान प्रतीची-अवस्था है। सूर्य प्रातः काल उदय होता है, दिन भर प्रकाशता है और सायं काल अस्त होता है। आदर्श मानव की जीवनी से प्रभावित होकर, इसी भावना से यहां अन्य मानव कह रहे हैं—हमारी जीवनि ! तू हमारे लिये सुप्राची और सुप्रतीची हो। हमारी प्राची सु-प्राची हो। हमारा उदय सु-उदय हो। हमारा जन्म सु-जन्म हो। हमारे जीवन की प्रभात सु-प्रभात हो। हमारी प्रतीची सु-प्रतीची हो। हमारा अस्त सु-अस्त हो। हमारा निधन सु-निधन हो। हमारे जीवन की सन्ध्या सु-सन्ध्या हो। उदय और अस्त के बीच में, जन्म और निधन के मध्य में, हम सम्यक् प्रकाशित रहकर सर्वतः प्रकाश करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह जीवन कोई जीवन है,
अन्धकार में जन्मे,
अन्धकार में जीवित रहकर,
अन्धकार में निधने ॥
जीवन उनका धन्य कि जो वे,
सु-प्रभात में जन्मे,
यावज्जीवन सु-प्रकाश कर,
अस्ताचल को धाये ॥
जन्मे सूर्य समान उदित हो,
चमके सूर्य समान,
जगती को प्रकाशित करके,
अस्त हुये ज्यों भानु ॥

प्रत्येक मानव, सच्चा मानव, नित्य अपनी देह को लक्ष्य करके कहे— मेरी प्यारी जीवनि ! (इन्द्राय अध्यक्षाय) इन्द्र अध्यक्ष के लिये (मित्रः) प्राण (त्वा) तुझे (पदि) साधना में (बध्नीतां) बांधे और (पूषा) मन (त्वा) तुझे (अध्वनः) पथ से (पातु) बचाये।

इन्द्रियों का स्वामी होने से आत्मा की इन्द्र संज्ञा है और देह का अधि-अक्ष होने से यह अध्यक्ष है।

प्राणो मित्रम् । प्राण मित्र है । प्राण जीवन का परम मित्र है । प्राण मित्रवत् जीवनी [देह] को जीवन से बांधे रखता है ।

एष वै मनः पूषा । यह मन निश्चय ही पूषा है, जीवनी का पोषक है । मन बड़ा बलवान् है । मन से जीवनी बलवती बनती है । मनोबल जीवनी का वास्तविक बल है । मन के निर्बल होने पर स्वस्थ सुपुष्ट देह भी पराक्रमहीन होजाती है । मन के प्रबल होने पर कृश काया भी पराक्रमशालिनी बन जाती है । इसी से मन को पूषा कहा गया है ।

प्राण का साधना से और मन का पथ से क्या सम्बन्ध ?

प्राण का साधना से सम्बन्ध है । प्राण का ही साधना से सम्बन्ध है । प्राण साधना का प्रतीक है । प्राण की साधना से ही जीवनी जीवित रहती है । यदि प्राण एक क्षण के लिये एक बार भी अपनी साधना बन्द कर दे, तो निमेष मात्र में जीवनी समाप्त होजाये । जब प्राण श्वास-प्रश्वास-रूपी अपनी साधना को बन्द कर देता है, तो इन्द्रियों का स्वामी और जीवनी का अध्यक्ष आत्मा देह से पलायन कर जाता है और जीवित जीवनी मृत जीवनी बन जाती है। साधना के चार अंग हैं—निर्विश्रामता, निर्यशता, निर्विषयता और निर्विकारिता—और ये चारों ही अंग प्राण में विद्यमान हैं । प्राण निस्सन्देह पूर्णतया निर्विश्राम, निर्यश, निर्विषय और निर्विकार है ।

मन ही तो जीवनी के पथ पर चलानेवाला प्रबल प्रेरक बल है । मन के निर्बल होजाने पर निर्बल है यह देह । मन के प्रबल होजाने पर प्रबल है यह देह । जीवनी के पथ पर सुरक्षितता के साथ वह देह-रथ ही अग्रसर होता है, जिसका प्रेरक मन प्रबल और शिवसंकल्पयुक्त होता है । जिसका मन प्रबल और शिवसंकल्पयुक्त नहीं होता है, उसका जीवन-रथ पदे-पदे अटकता और भटकता है और यात्रा को पूर्ण कराने के बजाय उसे अधिकाधिक लम्बित विलम्बित करता चला जाता है ।

इन्द्राध्यक्ष को चाहिये वह अपनी जीवनी से प्राणवत् उभय साधना करे और अपने मन को प्रबल और शिव-संकल्पयुक्त रखकर जीवनी के पथ पर प्रशस्तता के साथ आरूढ़ हो । वे जन धन्य हैं, वे नर नारी सुधन्य हैं, जो अपनी अमूल्य मानव-जीवनी से प्राणवत् सर्वतोमुखी सतत साधना करते हैं और अपने संसिद्ध मन से जीवनी के राज-पथ पर निर्बाधता के साथ लक्ष्य की ओर बढ़ते रहते हैं ।

धन्य जीवनी वही प्राणपण से जो निश दिन,
मनोवेग के साथ लक्ष्य-प्रति लिये जारही,
अपने प्रिय अध्यक्ष इन्द्र को सतत निरन्तर ॥

एक नितान्त सत्य, पुनीत, पावन, शिव और सुन्दर सन्देश संनिहित है इस मन्त्र में । मानव इसे सुनें और समझें ।

विश्व-स्वस्ति

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥

(अ० १.३१.४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वस्ति मात्रे उत पित्रे नः अस्तु स्वस्ति गोभ्यः जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सु-भूतं सु-विदत्रं नः अस्तु ज्योक् एव दृशेम सूर्यम् ॥

इस मन्त्र में विश्व की सु-अस्ति अथवा सर्वोदय के क्रम का निरूपण किया गया है ।

स्वस्ति=सु+अस्ति=सु+अस्तित्व । फ़ार्सी तथा उर्दू में प्रयुक्त हस्ती शब्द वेद के अस्ति शब्द का ही रूपान्तर है । स्वस्ति का अर्थ है सु-अस्तित्व । सदाचार, सुस्वास्थ्य, सुरूपता, सुख और शान्ति—ये स्वस्ति के अनिवार्य अंग हैं ।

सर्वप्रथम (नः मात्रे उत पित्रे स्वस्ति अस्तु) हमारे माता और पिता के लिये स्वस्ति हो । माता पिता की स्वस्ति सुसन्तान का प्रथम कर्तव्य है । जो अपने माता पिता के लिये स्वस्ति का सम्पादन नहीं करते हैं, वे अन्य किसी के लिये क्या स्वस्ति सम्पादन करेंगे । विश्व-स्वस्ति के सम्पादन के क्रम में माता पिता आदि परिवार-परिजन की स्वस्ति का प्रथम स्थान है । माता और पिता का प्रयोग यहां लाक्षणिक है । उपलक्षणेन "मात्रे उत पित्रे" से तात्पर्य माता पिता आदि पारिवारिक जनों से है । पारिवारिक जनों की अथवा परिवार की स्वस्ति विश्व-स्वस्ति की प्रथम कड़ी है ।

(नः गोभ्यः स्वस्ति अस्तु) हमारी गौओं के लिये स्वस्ति हो । गौ आदि घरेलु पशुओं की गणना परिवार-संस्थान में की जाती है । गौ शब्द का प्रयोग भी यहां लक्षणात्मक है । उपलक्षणेन गौ से तात्पर्य गौ, अश्व, अजा, आदि घरेलु पशुओं से है । घरेलु पशुओं से दुग्ध और अन्नादि का उत्पादन होता है, जो मनुष्यों के काम आते हैं ।

नः मात्रे उत पित्रे स्वस्ति अस्तु, नः गोभ्यः स्वस्ति अस्तु—इन दोनों सन्दर्भों से तात्पर्य गृह की स्वस्ति है । जिनके गृहों की व्यवस्था शुद्ध, पवित्र, सुन्दर, सुचारु और स्वस्थ होती है, वे ही जगत् की स्वस्ति में योगदान कर सकते हैं । इसी लिये गृह-स्वस्ति के उपरान्त कहा गया है—(जगते स्वस्ति अस्तु) विश्व के लिये स्वस्ति हो, (पुरुषेभ्यः स्वस्ति अस्तु) पुरुषों के लिये स्वस्ति हो, विश्व के सकल मानवों के लिये स्वस्ति हो ।

विश्व के गृह-गृह की स्वस्ति ही विश्व के सकल मानवों की स्वस्ति है । विश्व के सकल मानव पारिवारिक रूप से गृहों में निवास करते हैं । अखिल विश्व गृहरूप है । गृह-गृह की सुशिक्षा और सुव्यवस्था द्वारा विश्व के सब मानवों को सदाचारी, स्वस्थ, सुरूप, सुखी और शान्तिमय बनाया जा सकता है ।

आज विश्व में सब ओर विश्व-निर्माण और मानवोत्थान की सुधन्य [मुबारिक] ध्वनि सुनायी पड़ रही है । प्रत्येक देश राष्ट्रनिर्माणार्थ पंच-वर्षीय योजनायें नियोजित कर रहा है । यहां राष्ट्रनिर्माण के लिये और विश्व-निर्माण के लिये एक मूल-सिंचक संयोजना है और वह है गृह-स्वस्ति की योजना । राष्ट्रनिर्माण और विश्व-निर्माण का मूलाधार है गृहनिर्माण अथवा गृहस्वस्ति । गृहस्वस्ति के द्वारा ही विश्व की स्वस्ति और विश्व के सब मानवों की स्वस्ति का सम्पादन होगा । विश्व और मानव की स्वस्ति के स्वप्न-द्रष्टाओं को अपनी सम्पूर्ण शक्ति प्रत्येक राष्ट्र के प्रत्येक गृह की स्वस्ति के निष्पादन में लगानी चाहिये । किसी भी देश और किसी भी राष्ट्र की स्वस्ति के निष्पादन के लिये पारिवारिक स्वस्ति के महत्त्व को समझना होगा । पारिवारिक स्वस्ति के नियोजनों द्वारा राष्ट्र-राष्ट्र की स्वस्ति का सम्पादन होगा और राष्ट्र-राष्ट्र की स्वस्ति से विश्व की स्वस्ति सिद्ध होगी ।

आगे चलकर विश्व-स्वस्ति के लिये दो सुन्दर उपायों का उल्लेख किया गया है—(नः विश्वं सु-भूतं सु-विदत्रं अस्तु) हमारा विश्व सु-भूत और सु-विदत्र हो । सु-भूत का अर्थ है भौतिक सम्पदा से सम्पन्न, सुसम्पन्न । सु-विदत्र का अर्थ है सु-विदत्रता या सुमति से सम्पन्न, सुमतियुक्त । आज विश्व-स्वस्ति के लिये केवल भौतिक-विज्ञान और भौतिक सम्पत्ति की वृद्धि पर ही बल दिया जा रहा है । यह सर्वथा बुद्धिशून्य और मूर्खतापूर्ण स्थिति है । इसका परिणाम वही होरहा है जो होना चाहिये था । एक ओर सम्पत्ति का अहर्निश संवर्धन होरहा है और दूसरी ओर भोगों और रोगों की वृद्धि होरही है । सुमतिविहीन सम्पत्ति ने विश्व को भोगालय और रोगालय बना दिया है, भोग और रोग की प्रतिस्पर्धा का खुला क्षेत्र बना दिया है । सम्पत्ति ने विश्व-स्वस्ति का नहीं, विश्व-विपत्ति का द्वार खोल दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सम्पत्ति से विश्व की स्वस्ति का सम्पादन तब ही होगा, जब सम्पत्ति के साथ सुमति का गंठबन्धन किया जायेगा। सम्पत्ति और सुमति के संयोग के बिना विश्व-स्वस्ति का स्वप्न मायाजाल से अधिक कुछ नहीं है। सम्पत्ति के बिना भी सुमति स्वस्ति का सम्पादन कर सकती है, किन्तु सुमति के बिना सम्पत्ति सर्वनाश की ओर ले जाती है।

सुमति सम्पत्ति का संसार में जब योग होता है।
तभी मानव की स्वस्ति का यहां संयोग होता है॥

विश्व-स्वस्ति और विश्वोत्थान का उद्घोष गुंजानेवाले वेदमाता की इस हितोक्ति पर चिन्तन, मनन और आचरण करें तो सर्वोदय का पथ निस्सन्देह प्रशस्त होजाये। सम्पत्ति के उत्पादन से कहीं अधिक हमें सुमति का सम्पादन करना चाहिये। अन्यथा सम्पत्ति से केवल अनाचार, दुराचार और भ्रष्टाचार की वृद्धि होकर सर्वनाश का दृश्य ही दृष्टिगोचर होगा।

सुभूत और सुविदत्र के सम्पादन के लिये हमें चाहिये कि हम (ज्योक् एव) चिर काल तक (सूर्यं दृशेम) सूर्य को देखें, सूर्य का दर्शन करें।

चिर काल से तात्पर्य है यावदायुष्य। यावदायुष्य सूर्य-दर्शन करते रहने से हम जहां एक ओर चिरजीवी होंगे, वहां दूसरी ओर हम सुसम्पन्न और सुमतियुक्त रहेंगे।

सूर्य-दर्शन के विषय में श्रुति का आदेश है कि "पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्—हम उदय होते हुये सूर्य को ही देखें, हम उदय होते हुये सूर्य का ही दर्शन करें"। उदय होते हुये सूर्य के दर्शन से उदीयमानता की प्रेरणा प्राप्त होती है। उदीयमानता की प्रेरणा से हमारे जीवनों में समुत्थान की भावना जागृत होती है।

सूर्य के दर्शन से दूसरी प्रेरणा मिलती है आत्म-आवृत पर संस्थित होकर गति प्रगति करने की। सूर्य सदा अपने आवृत [Orbit] पर स्थित रहकर गति करता है। उसी प्रकार हमें भी आत्मस्थ होकर सर्वतोदिक् प्रगति करनी चाहिये।

सूर्य अनवरत प्रज्वलित रहता हुआ विश्व में सर्वतः प्रकाश करता है। सूर्य-दर्शन से तीसरी प्रेरणा प्राप्त होती है ज्ञान विज्ञान से स्वयं प्रज्वलित-प्रकाशित होकर विश्वतः प्रकाश करने की।

सूर्य अपने आकर्षण से अपने सकल ग्रहों उपग्रहों को अपने प्रति आकृष्ट रखकर उन्हें अपनी अपनी परिधि में परिधित रखता है। सूर्य-दर्शन से चौथी प्रेरणा मिलती है स्वयं आकर्षण का केन्द्र बनकर विश्व को अपने व्यक्तित्व के प्रति आकृष्ट करने और रखने की, अपने जीवन-आदर्शों से विश्व को सुमर्यादित रखने की।

उदीयमानता, आत्मस्थता, प्रकाश और आदर्श—इन चार सौर गुणों से युक्त होकर ही हम विश्व में सुभूति का सम्पादन और सुमति का प्रस्थापन कर सकेंगे। सुभूत और और सुविदत्र की विश्व-व्याप्ति से विश्व में घर-घर स्वस्ति की प्रस्थापना होगी।

स्वस्ति हो हमारे माता पिता के लिये,
स्वस्ति हो गौओं के लिये मानवों के लिये।
विश्व हो हमारा सुसम्पन्न और सुमति से युक्त,
यावज्जीवन हम करते रहें दर्शन सूर्य देव का॥

गीता-योग

—४२—

चौथा-अध्याय

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥६

(अजः अव्यय-आत्मा सन् अपि) अजन्मा अविनाशी-आत्मा होकर भी, (भूतानां ईश्वरः सन् अपि) भूतों का ईश्वर होकर भी, मैं (आत्म-मायया) आत्म-माया के द्वारा (स्वां प्रकृतिं अधि-स्थाय) अपनी प्रकृति को/पर अधि-स्थित होकर (सं-भवामि) सम्भव होता हूं।

अज=अ+ज=अ+जर, अ+जन्म। जन्म और जरा से रहित को अज कहते हैं।

परमात्मा अज है, क्योंकि उसका न कभी जन्म हुआ है, न कभी होगा।

आत्मा भी अज है। आत्मा न कभी जीर्ण होता है, न जन्मता है। वह तो शरीर में संभव होता है, शरीर में आकर निवास करता है। सं सम्यक्। भव होना, विराजना, निवास करना। जन्म और मरण तो शरीर का होता है। शरीर में आत्मा के संभवन [निवास] से शरीर का जन्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है और शरीर[illegible] [illegible], [illegible]
निकल जाने] से मरण होता है ।

प्रकृति भी अज है । प्रकृति न कभी जीर्ण होती है, न जन्मती है । वह तो केवल परिवर्तित होती है ।

परमात्मा, आत्मा और प्रकृति—तीनों ही अज हैं । यहां इस श्लोक में अज का प्रयोग जरा और जन्म से रहित मोक्षप्राप्त आत्मा के लिये हुआ है । भगवान् कृष्ण मोक्षप्राप्त मुक्तात्मा थे । उन्होंने केवल अधर्म के नाश, धर्म की वृद्धि, शिष्टों के परित्राण और दुष्टों के विनाश के लिये आत्मेच्छा से वह कृष्ण-जन्म धारण किया था । जिस कार्य के लिये उन्होंने वह जन्म धारण किया था, उसे करके वह पुनः मोक्षावस्था में स्थित होगये थे ।

अव्यय=अ-व्यय=अ-क्षय । जिसका कभी क्षय न हो, उसे अव्यय कहते हैं । परमात्मा और आत्मा तो अक्षय हैं हीं, प्रकृति भी अक्षय है । प्रकृति का भी कभी क्षय नहीं होता है । प्रकृति परिणामी तो है, किन्तु क्षयरहित है । स्वरूप और परिमाण से भी प्रकृति अक्षय है ।

भूत शब्द का प्रयोग यहां ऐश्वर्य के अर्थ में हुआ है । ईश्वर का बहुत प्रसिद्ध अर्थ है ऐश्वर्यों का स्वामी ।

प्रकृति का प्रयोग इस श्लोक में स्वभाव या आत्मवृत्ति के अर्थ में हुआ है । स्व-स्वभाव के कारण मोक्षावस्था में भी विशिष्ट आत्माओं में यह वृत्ति बनी रहती है कि वे युग अथवा अवस्था विशेष में अधर्म के क्षय, धर्म के विस्तार, शिष्टों के रक्षण और दुष्टों के विनाश के लिये यथावसर निश्चित समय के लिये आत्म-इच्छा या योगबल से मानव देह धारण कर लेते हैं । भगवान् कृष्ण उसी कोटि के मुक्त आत्मा हैं । जगती का दुःख देखकर उनसे रहा नहीं जाता है और प्राणियों के दुःखनिवारणार्थ वह यथासमय मानव जन्म धारण कर लेते हैं । दुःखविनाश के उपरान्त वह पुनः मोक्षस्थ होजाते हैं ।

माया शब्द का प्रयोग हुआ है यहां इच्छा या शक्ति के अर्थ में ।

भगवान् कृष्ण कहते हैं—अर्जुन ! मैं आत्म-रूप से, स्व-रूप से (अजः अव्यय-आत्मा अपि सन्) अज और अव्यय-आत्मा तो हूं ही, मोक्षस्थ होने से (भूतानां) आत्मैश्वर्यों का, योगैश्वर्यों का (ईश्वरः अपि सन्) स्वामी भी हूं । युग विशेष में पाप और अत्याचार के निवारणार्थ (स्वां प्रकृतिं अधि-स्थाय) अपनी प्रकृति पर अधिष्ठित होकर, अपने स्वभाव से प्रेरित होकर (आत्म-मायया) आत्म-इच्छा से, आत्म-बल से (सं-भवामि) संभवन करता हूं, जन्म धारण कर लेता हूं ।

अज अव्यय-आत्मा स्वामी आत्मैश्वर्यों का होकर भी ।
स्व स्वभाव से प्रेरित होकर प्रकट होता हूं स्वेच्छा से ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥७

भारत ! (यदा यदा हि) जब जब ही (धर्मस्य ग्लानिः) धर्म की ग्लानि और (अधर्मस्य अभि-उत्थानं) अधर्म का अभि-उत्थान (भवति) होता है । (तदा) तब तब (अहं) मैं (आत्मानं) अपने आपको (सृजामि) रचता हूं, जन्म धारण करता हूं ।

जब जब नाश धर्म का होता और अधर्म का अभिवर्धन ।
भारत, मैं तब तब मानव योनि में करता आत्मसृजन ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥८

(साधूनां परित्राणाय) शिष्टों के परित्राण के लिये, (दुःकृतां विनाशाय) कुकर्मियों के विनाश के लिये, (च) और (धर्मसंस्थापनार्थाय) धर्म की प्रस्थापना करने के लिये, मैं (युगे युगे) युग युग में, समय समय पर (सं-भवामि) संभवन करता हूं, जन्म लेता हूं ।

साधु जनों के परित्राण और दुष्ट जनों के दलने को ।
युग युग में प्रकट होता हूं धर्म-स्थापन करने को ॥

अध्यापक

—१८—

अधिकार और कर्तव्य

समादरणीय अध्यापको और अध्यापिकाओ,

आज आप अपने अधिकार और अपने कर्तव्य—दोनों ही से बहुत दूर होगये हैं । प्राचीन भारत में आपके बहुत बड़े अधिकार थे—इतने बड़े अधिकार थे, जितने बड़े अधिकार किसी जनपद के राजा को भी प्राप्त न थे । उस समय आपके इतने बड़े अधिकार इस लिये थे कि तब आपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महानतम कर्तव्यों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया हुआ था।

संयम, सदाचार, सुस्वास्थ्य, तप, श्रम और शिक्षा—इन षड् महा कर्तव्यों का सुदुस्तर उत्तरदायित्व उस समय के अध्यापकों और अध्यापिकाओं ने स्वेच्छया संभाला हुआ था। इसी लिये तब उनके इतने बड़े अधिकार थे कि राजा से लेकर निम्नतम व्यक्ति तक आत्मना उनका मान और उनके आदेशों का पालन करता था।

उस समय का प्रत्येक अध्यापक और प्रत्येक अध्यापिका स्वयं इन षड् सुभूषणों से सुभूषित होता था और अपने प्रत्येक विद्यार्थी को इनसे सुभूषित करके विद्यासमाप्ति पर उसे अपने विद्यालय से भेजता था। आपके आजके ये विद्यार्थी और विद्यार्थिनी ही कल भारत के भविष्य-निर्माता और भाग्य-विधाता बनेंगे। आप इन्हें जैसा बनायेंगे, देश का भविष्य और राष्ट्र का भाग्य वैसा ही बनेगा।

युग की मांग है कि आप स्वयं सब प्रकार के व्यसनों और दुरितों से अपने आपको मुक्त करें। आत्मसंयम के आश्रय से ही आप ऐसा कर सकेंगे। संयम के अभाव में ही आप आज विविध व्यसनों और दुरितों के शिकार होरहे हैं। व्यसनों और दुरितों से मुक्त होने पर ही आप वास्तविक अर्थों में सदाचारी बनेंगे। सदाचार की भित्ति पर स्थित होकर अपने आपमें आदर्श स्वास्थ्य की स्थापना कीजिये। स्वास्थ्य पर ही तप आधारित है और श्रम भी। संयमी, सदाचारी, स्वस्थ, तपस्वी और श्रमशील अध्यापक अध्यापिका ही पवित्रता के साथ शिक्षासूत्र का यथावत् संचालन कर सकेंगे।

अपने प्रिय राष्ट्र के कल्याण के लिये अपने जीवनों को ढालिये और अपने विद्यार्थियों व विद्यार्थिनियों के जीवनों में संयम, सदाचार, सुस्वास्थ्य, तप और श्रम की स्थापना कीजिये। आप मेरी अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी प्रकार जानते हैं कि इनके बिना शिक्षा अर्थकरी भले ही होजाये, इष्टसाधिका कदापि नहीं होसकती। यों सुसज्ज होकर जब आप शिक्षाकार्य करेंगे, तब ही आप अपने महान् राष्ट्र के इन भावी नागरिकों को सुयोग्य और सक्षम बना सकेंगे। आप ऐसा करेंगे तो समय आयेगा जब भारत का जन जन आपके चरणों में नमेगा और आपका अभिस्तवन करेगा। तब आपको वे अधिकार प्राप्त होंगे, जिनकी आज आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। कर्तव्य में अधिकार संनिहित रहते हैं, यह निश्चय जानिये।

राष्ट्र का सच्चा निर्माण न विज्ञानशालाओं में होगा न मन्त्रालयों में, न फैक्ट्रियों में होगा न कारखानों में। राष्ट्र का निर्माण जब भी होगा, आपके विद्यालयों में ही होगा और आपके द्वारा ही होगा।

विद्यार्थी

—१८—

आत्म-संयम

पुत्रियो और पुत्रो,

अपने जीवनों में आत्म-संयम की स्थापना करो। यदि तुम ऐसा करोगे तो तुम्हारे जीवन आदर्श जीवन बनेंगे, तुम धीर वीर प्रवीण और महतो महान् बनोगे, तुम्हारे जीवनों से राष्ट्र का समुत्थान और विश्व का कल्याण होगा।

आत्म-संयम का अर्थ है अपने आप पर स्वयं नियन्त्रण रखना, अपने आप पर स्वयं शासन करना, अपने आपको स्वतः अनुशासन में रखना। अंग्रेजी में आत्म-संयम के लिये Self control और Self discipline का प्रयोग होता है। दण्ड या हानि के भय से अथवा लोकलज्जा के कारण जो संयम किया जाता है, वह आसुरी संयम है। संयम की महिमा को समझकर जो संयम किया जाता है, वह दैवी संयम है। दैवी संयम के पालन से देवत्व की प्राप्ति, दिव्यताओं की प्राप्ति तथा क्षमताओं की व्याप्ति होती हैं।

मस्तिष्क पर संयम करो। मस्तिष्क विचारों का अधिष्ठान है। संयम के द्वारा अपने विचारों में पवित्रता लाओ। अपने चिन्तन को एकाग्र करो। जब जिस विषय का चिन्तन करो, पवित्रता और एकाग्रता के साथ चिन्तन करो। विचारों में दृढ़ता का सम्पादन करो। सोच विचार कर जो शुभ और सही निर्णय करो, दृढ़ता के साथ कार्यान्वित करो, जो व्रत धारण करो, दृढ़ता के साथ पालन करो। विचारपूर्वक जो कार्यक्रम बनाओ, उसका स्थिरता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ निर्वहन करो। मस्तिष्क को सदा शीतल और शान्त रखो। कभी भूलकर भी अपने विचारों में उत्तेजना न आने दो।

अपने मन पर संयम रखो। मन के संयम से संकल्प की शुद्धि करो। मन के संकल्पों का सदा निरीक्षण करते रहो। अशुभ अशिव संकल्पों को संयमपूर्वक बाहर धकेलते रहो और शिव शुभ संकल्पों का सम्पोषण करो। विचारों की तरह तुम्हारे मन के संकल्प भी पवित्र, सुदृढ़ और अनुत्तेजित होने चाहियें। सतत और सतर्क संयम की साधना से मन का पूर्ण वशीकार करो।

नेत्रों और श्रोत्रों पर कठोर संयम करके अपनी दृष्टि और श्रुति को पवित्र और शालीन रखो। पावन दर्शन और श्रवण से ही हृदय की भावनाओं का परिष्कार होता है। भावनाओं के परिष्कार से हृदय उदार और अन्तःकरण निर्मल होता है, अपि च अन्तःशान्ति प्राप्त होती है।

वाणी पर बहुत कठोर संयम रखो। सदा सत्य, प्रिय, मनोहारी और मित भाषण करो। हमेशा सोच समझ कर संयमपूर्वक बोलो। वाणी के संयम से तुम बहुत सी आपत्तियों से बच सकते हो। भूलकर भी वृथा भाषण और बकवास न करो।

खाने में संयम करो। मिताहारी बनो। हमेशा शुद्ध सात्विक और स्वास्थ्यप्रद वस्तुओं का ही सेवन करो।

निद्रा पर संयम करो। नियत समय पर सोओ और निरलस होकर नियत समय पर सोकर उठ जाओ। संयम करके समयित और नियमित [Punctual and regular] रहो। अपनी प्रत्येक गति और कृति पर संयम रखो।

संयम के आश्रय से काम को जीत कर निष्काम बनो, क्रोध को जीत कर मर्यादा-पालक बनो, लोभ को जीतकर अनासक्त बनो, मोह को जीत कर कर्तव्य-परायण बनो, अहंकार को जीतकर विनम्र और शालीन बनो।

एक मर्मस्पर्शी पत्र

मेरठ

६–७–५८

मेरे स्वामी,

कुछ दिन हुये, मैं ऋषिकेश व हरिद्वार गया था। यात्रा का अभिप्राय था महात्माओं, साधु-सन्तों व आश्रमों का दर्शन। सुना था कि ये आश्रम आत्म-शान्ति की प्राप्ति के लिये शुद्ध स्थान हैं। सब कुछ देखा, सुना।

२. यहां सर्वत्र रामायण, गीता, महाभारत, आदि की ही कथायें होती हैं। ये ग्रन्थ निस्सन्देह ज्ञान के भण्डार हैं। जीवन-उत्थान की पर्याप्त सामग्री इनमें है। परन्तु ज्ञान के मूलस्रोत वेदों का वहां नाम तक नहीं लिया जाता है। ऐसा अनुभव हुआ कि वेदों के प्रति श्रद्धा तथा विश्वास समाप्त होता जारहा है। वेद केवल कुछ गिने चुने महा पुरुषों के लिये रह गये हैं। मुझे उससे भारी क्षोभ सा हुआ। जिस मूल ज्ञान से कितने ही ग्रन्थ रचे जा सकते हैं, उनसे जनता को दूर करना बड़े दुःख की बात है। ऋषि दयानन्द की वेदविषयक साधना अभीष्ट फल नहीं ला रही है। आर्यसमाज भी सांसारिकता के प्रवाह में बह-कर ऋषि की वेदसाधना से दूरतर होता जारहा है।

३. एक और बात देखी। आश्रमों में उनके प्रस्थापकों की प्रतिमायें स्थापित हैं। उन प्रतिमाओं की ही पूजा होरही है। भगवान् की नहीं, भगवान् के बन्दों की पूजा होरही है। सन्त महात्माओं के चरणों में मैं श्रद्धा रखता हूं। पर उनकी यह पूजा मुझे भली मालूम नहीं हुयी।

४. शिवानन्दाश्रम में श्री स्वामी ज्योतिर्मयानन्द जी से मैंने पूछा, "महाराज, आपके आश्रम में वेदों का उपदेश या प्रचार होता है?"। कहने लगे, "जब उपनिषद्, गीता आदि के रूप में संशुद्ध, सुपरिष्कृत जल उपलब्ध है, तो समुद्र के क्षारयुक्त जल के प्रयोग की क्या आवश्यकता?"। मैंने पुनः कहा, "महाराज, ज्ञान का आदि मूलस्रोत तो बन्द न होना चाहिये। ऋषिकेश में गंगा का पानी पी लेने से गंगोत्री की आवश्यकता समाप्त नहीं होजाती है"। फिर मैंने आपके वेदव्याख्याग्रन्थों का जिक्र किया। पर उनका उत्तर फिर भी वही था।

५. आप भवसागर में उतरे हैं, वेद के दिव्य ज्ञान को अपनी सरस सरल भाषा में जन जन तक पहुंचाने के मिशन को पूरा करने के लिये। इस विषय में मैं कुछ विचार आपके सामने रख देना अपना कर्तव्य समझता हूं। वेद-व्याख्या के प्रकाशन के साथ साथ कुछ ऐसे व्यक्ति भी तैयार करने चाहियें, जो आपके वेदव्याख्याग्रन्थों को घर-घर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुंचायें और सुनायें। इस कार्य के लिये एक संघ स्थापित कीजिये। यह योजना बनानी है भारत के ही नहीं, संसार भर के मानवों को, सकल भ्रान्तियों से छुटकारा दिलाने के लिये। मानव जाति को सच्चे शिव के दर्शन कराने और सुख शान्ति व मोक्ष का मार्ग दिखाने के लिये ऋषि दयानन्द के वेदकार्य को तेजी के साथ आगे बढ़ाइये।

६. दयानन्द जैसा वीतराग तपस्वी संन्यासी मुश्किल से ही मिलेगा। न अपने नाम के लिये, न अपने मान के लिये, उसने अपने नाम पर कोई संस्था क़ाइम की और न ही वह किसी प्रलोभन में फंसा।

७. मैंने यह विचार सद्भावना के साथ आपके सन्मुख रखे हैं। विचार कीजिये। "साधना-मण्डल" के बारे में आपने क्या कुछ किया है? सूचित कीजिये।

आपका,

बी० पी० आर्य

वस्तुस्थिति

श्री बी० पी० आर्य का उपरि-प्रकाशित पत्र व्यक्तिगत कम और सार्वजनिक अधिक है। अतः उसका उत्तर यहां सार्वजनिक रूप से देना कहीं अधिक उपादेय होगा। पिछले महीनों में कुछ अन्य घटनायें भी घटी हैं।

कुछ ऐसे पत्र मिले हैं, जिनमें मेरी वेदसाधना की मन्द गति पर उद्विग्नता प्रकट करते हुये मुझे उपालम्भ दिया गया है कि इस प्रकार तो चारों वेदों की व्याख्याओं का प्रकाशन सौ वर्ष में भी मुश्किल से पूरा होगा।

वेदव्याख्याग्रन्थों के डेढ़ सौ रुपये के अग्रिम ग्राहक बनने के लिये दश रुपये मासिक की क़िस्त भेजनेवाले कुछ व्यक्तियों ने क़िस्तों का भेजना इसलिये बन्द कर दिया है कि उन्हें आशा नहीं कि निकट भविष्य में सारे ग्रन्थ प्रकाशित हो सकेंगे।

ब्रिटिश ईस्ट एफ्रीका तथा मॉरीशस से सूचनायें प्राप्त हुयी हैं कि एक भारतीय संन्यासी वहां विदेह, वेदसंस्थान, सविता तथा वेदव्याख्याग्रन्थों के विरुद्ध बड़ा ही विषैला प्रचार कररहे हैं।

कुछ ऐसी संस्थाओं व कतिपय ऐसे विद्वानों द्वारा, वेद का पढ़ना पढ़ाना जिनका परम धर्म है, विदेहरचित प्रकाशनों व वेदव्याख्याग्रन्थों के विरुद्ध जनता को विषाक्त किया जा रहा है।

ऋषिकेश या हरिद्वार में ही क्या, भारत भर में जितने भी तीर्थस्थान हैं, सर्वत्र रामायण, महाभारत और गीता की ही कथायें हो रही हैं और वे भी नितान्त असंगत, तर्कशून्य, असमाधानकारक तथा अराष्ट्रीय ढंग से। इसके लिये जितने दोषी आश्रमों के स्वामी-संचालक हैं, उससे कहीं अधिक दोषी हैं वे सामाजिक और धार्मिक कार्यकर्ता विद्वान्, जिन्होंने इन तीर्थस्थानों में प्रविष्ट होकर वहां वेदों के लिये आस्था तथा अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने का कोई उल्लेखनीय उद्योग नहीं किया है। इन तीर्थों व आश्रमों के महान्तों के हृदयों में वेदों के प्रति श्रद्धा तो है ही। वेद के विद्वानों को इस ओर यथोचित ध्यान देना चाहिये। प्रीतिपूर्वक सम्पर्क स्थापन करके इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकना असम्भव नहीं है।

भगवान् के स्थान में भगवान् के बन्दों की पूजा का कारण भी महान्तों का वैदिक शिक्षाओं से वंचित होना ही है। वैदिक विचारों से संगत होने पर उनमें वह बोध उद्बुद्ध होगा, कि वे सच्चिदानन्द भगवान् की ही पूजा करेंगे और करायेंगे। समस्त समस्याओं का समाधान वैदिक शिक्षाओं की व्याप्ति में निहित है।

श्री स्वामी ज्योतिर्मयानन्द जी एक युवक, किन्तु विद्वान्, संन्यासी हैं। उनसे मेरा व्यक्तिगत परिचय है। वे वैदिक शिक्षाओं के महत्त्व को भली प्रकार जानते और मानते हैं। मेरे वेदव्याख्याग्रन्थों के प्रकाशित दो पुष्पों पर अपनी सम्मति व्यक्त करते हुये उन्होंने लिखा है—

प्रथम पुष्प

वेद की ऐसी रोचक, सरल, सरस, आकर्षक, विद्वत्तापूर्ण एवं प्रेरणात्मक व्याख्या तथा अनुवाद अन्यत्र मिलना सम्भव नहीं। इस ग्रन्थ के द्वारा वेदों को विद्वान् से लेकर साधारण मनुष्यों तक पहुंचाया जा सकता है।

द्वितीय पुष्प

प्रथम पुष्प की भांति द्वितीय पुष्प भी आध्यात्मिक-आगार वेदों की सुमधुर सुरभि को लेकर जन-साधारण तक पहुंचने में अपना सानी नहीं रखता। पूज्यपाद श्री विद्यानन्द जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेह के अथक एवं स्तुत्य प्रयास ने भारतीय संस्कृति के मूल ग्रन्थ वेदों को आधुनिक युगप्रवाह के अनुकूल तथा जनता के लिये सुग्राह्य बनाने में महती सफलता प्राप्त की है। द्वितीय पुष्प में गृहस्थाश्रम सम्बन्धी सांस्कृतिक तत्त्वों का सुन्दर समावेश है, जिनके आचरण के द्वारा हर गृह वैकुण्ठ के रूप में परिणत किया जा सकता है।

ये पंक्तियां वेदों के प्रति उनकी आस्था का स्पष्ट द्योतन कर रही हैं। मैं उनसे निवेदन करूंगा कि वह ऋषिकेश के आश्रमों में वेदकथाओं का प्रचलन करायें। ऐसा करने से वे आश्रम ऋषि-आश्रम बन जायेंगे।

मैं अपनी आयु के ५८ वर्ष व्यतीत कर चुका हूं और गत ३८ वर्ष से वेदों की विश्वव्याप्ति में लगा हुआ हूं। इसके लिये जहां मैं विनम्रतापूर्वक परम पावन प्रभु को नमस्कार करता हूं, वहां मैं उन सबका, जिन्होंने अपना सहयोग या विरोध प्रदान करके मुझे इस कार्य में आगे बढ़ाया है, हार्दिक धन्यवाद करता हूं। मुझे विश्वास है कि मैं अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक इस पावन साध की संसिद्धि के लिये सतत साधना करता रहूंगा। कितना कार्य कर सकूंगा और सफलता कहांतक मिलेगी, यह अभी परोक्ष के गर्भ में है। अन्दर से आवाज तो यही आती रहती है कि मैं अपने स्वप्न को पूर्णतया सार्थक होता हुआ देखूंगा।

साधना जहां समुदात्त है, वहां सुविशाल भी है। इसके लिये सैकड़ों समाहूत जीवन और करोड़ों अरबों की धन-राशियां उपेक्षित हैं। पर आज तक वेदसंस्थान की स्थिति नगण्य ही है और इस साध में आज तक मैं अकेला ही हूं। श्री आर्य जी का यह सुझाव कि वेदव्याख्या के प्रकाशन के साथ साथ कुछ ऐसे व्यक्तियों का एक संघ स्थापित किया जाये, जिसका प्रत्येक सदस्य वेदव्याख्याग्रन्थों को घर घर पहुंचाये, सर्वथा सुसंगत और स्तुत्य है। प्रस्तावित संघ की रूप-रेखा पर सविता के सुविज्ञ पाठक अपने अपने सुझावों से मुझे उपकृत करेंगे तो मैं हृदय से उनका आभार मानूंगा।

"दयानन्द के वेदकार्य" को तेज़ी के साथ आगे बढ़ाने में मैं अकेला तो अहर्निश लगा हुआ ही हूं। कुछ आत्म-निर्भर योग्य और सक्षम अवकाश-प्राप्त देवों और देवियों का हार्दिक सहयोग मुझे मिल जाये, तो कार्य की प्रगति में प्रचुर तीव्रता लायी जा सकती है।

जैसा कि आर्य जी ने लिखा है, दयानन्द जैसा वीतराग और तपोधन संन्यासी मिलना सरल नहीं है। दयानन्द की आत्मा को अपने भीतर बिठाकर मैं दयानन्द की साध की पूर्ति में आत्मना संलग्न हूं। मैंने अपने जीवन में कभी एक बार भी दयानन्द और वैदिक धर्म की जय नहीं बोली है। पर इन दोनों की विजयार्थ ही मैं सब कुछ करता चला आ रहा हूं। जय बोलना नहीं, विजय करके दिखाना, मेरा सिद्धान्त है।

साधना-मण्डल की स्पष्ट रूप-रेखा बनाने में मैं सफल होगया हूं। आशा है निकट भविष्य में ही मैं उसे प्रकाशित कर सकूंगा।

इसमें सन्देह नहीं कि इस मन्द गति से चारों वेदों की व्याख्या सौ वर्ष में भी प्रकाशित न हो सकेगी। मेरे उपालम्भ-दाताओं को जब स्थिति का ज्ञान होगा तो शायद वे मेरी सहायता करेंगे। कार्यकर्ता के रूप में मैं अभी नितान्त अकेला हूं। स्वयं ही लिखता हूं, स्वयं ही प्रेस-कॉपी तैयार करता हूं, स्वयं ही प्रूफ़-रीडिंग करता हूं और अपने प्रकाशनों को वेदप्रचार-यात्राओं में अपने साथ लेजाकर स्वयं ही उन्हें जनता के हाथों में पहुंचाता हूं। नित्य प्रातः चार बजे से रात के ग्यारह बजे तक कार्यरत रहता हूं। इस व्यस्तता में सविता का मासिक प्रकाशन और वेदपुष्पों का मुद्रण होरहा है। इतने भर से स्वयं मुझे भी सन्तोष नहीं है। मैं निरन्तर चिन्तन और प्रयत्न कररहा हूं कि पुष्पों के प्रकाशन में तीव्र गति आये।

मेरी इच्छा है कि वेदप्रचार-यात्राओं को बिल्कुल बन्द करके मैं किसी एकान्त, शान्त और सुरम्य स्थान में स्थायी रूप से निवास करूं। साथ ही प्रकाशित पुष्पों की खपत की भी सुचारु व्यवस्था करना आवश्यक होगा। संस्थान की योजनानुसार जो व्यक्ति पांच रुपये प्रवेश-शुल्क देकर स्थायी ग्राहक बनेंगे, उन्हें वेदव्याख्या के प्रत्येक खण्ड या पुष्प पर दश प्रति शत कमीशन दिया जाना है। ऐसे बीस हज़ार स्थायी ग्राहक बन जाने पर मैं फ़ौरन एकान्त में बैठ जाऊंगा और पांच वर्ष में चारों वेदों की व्याख्या प्रकाशित कर सकूंगा। ३१ दिसम्बर १९५९ तक बीस हज़ार स्थायी ग्राहक बनाने में जो देव और देवियां मुझे अपनी सहायता का वचन देंगे, मैं उनके नगर में पहुंचूंगा और उनकी सहायता से प्रत्येक स्थान पर स्थायी ग्राहक बनाने का कार्य करूंगा। कार्य आरम्भ हुआ है तो पूरा भी होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्द गति तीव्र भी होगी। मैं निवेदन करूंगा कि वेदप्रेमी कार्य की गति को तीव्र करने के साधनोपाय करें, हताश न हों, हिम्मत न हारें।

मैं यह भी प्रेरणा करूंगा कि वेदव्याख्याग्रन्थों के अग्रिम ग्राहक अपनी मासिक क़िस्तों को चालू रखें। शुभ कार्य में डूबा हुआ धन भी डूबा हुआ न समझना चाहिये। फिर यहां तो डूबने का कोई प्रश्न ही नहीं है। विलम्ब भले ही हो जाये, पर कार्य पूरा होगा और अवश्य होगा। मेरे भीतर से साफ़ आवाज़ आरही है कि मेरे जीवनकाल में ही वेदों की विश्वव्याप्ति का मेरा संकल्प निश्चय ही पूरा होगा और मैं अपनी आंखों से देखूंगा सारे भूमण्डल को एक अभिन्न वैदिक परिवार के रूप में। सहायता का हाथ आगे बढ़ाइये, पीछे न हटाइये। किसी की सहायता का हाथ पीछे हटे तो हट जाये, परन्तु मेरी साधना के चरण एक क़दम भी पीछे न हटेंगे। मैं कृतसंकल्प हूं और अविचलता के साथ दयानन्द की साध और सच्चिदानन्द के आदेश के पालन में यावज्जीवन तत्पर रहूंगा।

जो संन्यासीराज ब्रिटिश ईस्ट एफ्रीका तथा मौरीशस में मेरे विरुद्ध प्रचार करके प्रभु के पवित्र कार्य में कठिनाई उत्पन्न कर रहे हैं, मुझे उनसे कोई परेखा नहीं है। प्रभु उन्हें प्रकाश प्रदान करें, ताकि उन्हें दिखायी पड़े कि वह क्या कररहे हैं। विरोध करना सरल है, किन्तु शुभ के लिये स्वयं साधना करना कठिन है। जितना समय व शक्ति वह मेरे विरोध में बर्बाद कर रहे हैं, उतना समय व शक्ति वह मेरी सहायता में लगा देते तो दयानन्द और सच्चिदानन्द का यह कार्य कितना सुकर होजाता। उनका बड़ा प्रभाव है। प्रभु करें उनके प्रभाव का प्रयोग शुभ के लिये हो।

वेद को परम धर्म माननेवाले उन विद्वानों तथा संस्थाओं के विरोध ने मुझे सजग किया है और मेरे संबल को जगाया है। पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के शब्दों में उनके विरोध ने अकिंचन विदेह को संसार के महा पुरुषों की पंक्ति में खड़ा कर दिया है। किन्तु अहं योऽस्मि सोऽस्मि—मैं जो हूं सो हूं। मैं तब भी अकिंचन था और आज भी अकिंचन हूं। किन्तु प्रभु की इच्छा को अन्यथा करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। वे विद्वान् और संस्थायें मेरा विरोध करके व्यर्थ ही पाप के भागी बन रहे हैं। मैं तो प्रभु की प्रेरणा से उन्हीं के मिशन की पूर्ति कर रहा हूं। वे ज़रा अपने हृदय पर हाथ रख कर देखें कि वे क्या कर रहे हैं। मेरा विरोध करके वे अपने ही मिशन की जड़ों पर कुठाराघात कर रहे हैं। मैंने तो जीवन भर सदा सबका हित सोचा और हित ही सम्पादन किया है। मुझे याद नहीं पड़ता कि इस जीवन में मैंने कभी किसी का अहित सोचा या किया हो। मैं तो उनसे यही निवेदन करूंगा कि वे अपनी सहायता का हाथ मेरी ओर बढ़ायें, ताकि वेद की विश्व-व्याप्ति का उनका अपना ही यह कार्य सुगमता और शीघ्रता के साथ पूरा होजाये। मेरे इस निवेदन को वे स्वीकार करें तो ज़हे क़िस्मत, न स्वीकार करें तो शिकायत क्या—

बेगानगिए ख़ल्क़ से बेदिल न हो "ग़ालिब"।
कोई नहीं तेरा तो मेरी जान ख़ुदा है॥

यदि विरोध ही करना है तो इतना सौजन्य तो दिखायें ही कि—

वे मुझे हाथ उठाकर जो ज़बाँ से कोसें।
देखनेवाले यह समझें कि दुआ करते हैं॥

—विदेह

आत्म-विजय

अपने आपसे हारा हुआ मनुष्य अधम ही है, चाहे वह समस्त भूमि का सम्राट् ही क्यों न हो, चाहे वह भूमि की अखिल सम्पदा का स्वामी ही क्यों न हो, चाहे वह समस्त विद्याओं का सागर ही क्यों न हो, चाहे वह राष्ट्र का नेता और विश्व का प्रणेता ही क्यों न हो, चाहे वह परम सुन्दर और अतिशय दर्शनीय ही क्यों न हो, चाहे वह संन्यासी या ऋषि या मुनि ही क्यों न हो, चाहे वह गायक या उपासक ही क्यों न हो।

महान् सुमहान् और महतो महान् है वह, जो आत्म-विजेता है, जिसने अपने आपको जीत लिया है, जिसने पूर्ण आत्मविजय सम्पादन करली है, भले ही वह गृहहीन, वस्त्र-हीन, धनविहीन और दाने दाने को मुंहताज ही क्यों न हो।

वह आत्मजेता है, जिसने अपनी बुद्धि को विमल और अपने मन को निर्मल बना लिया है, जिसने अपने विचारों को शुद्ध और अपने संकल्पों को विशुद्ध कर लिया है, जिसने अपनी दृष्टि को पवित्र और अपनी श्रुति को पुनीत कर लिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह ग्रात्म-विजेता है, जिसने काम को भस्म कर दिया है, जिसने क्रोध का परित्याग कर दिया है, जो सब प्रकार की वासनाओं से मुक्त होगया है, जो भलाई का प्रतिफल नहीं चाहता है, जो बुराई का बदला नहीं लेता है और जिसकी प्रत्येक साधना अनासक्त होती है।

आत्मविजेता कभी खिन्न नहीं होता है, कभी दुखी नहीं होता है, कभी उद्विग्न नहीं होता है। वह सदा सम, शान्त और सुप्रसन्न रहता है।

आत्मविजेता विनम्र किन्तु अनम होता है, शालीन किन्तु अदीन होता है, मृदु किन्तु निर्भय होता है, सन्तुष्ट किन्तु दृढ़ निश्चय होता है।

—विदेह

वह देखो

वह देखो ! सामने सफलता मुस्करा रही है। मुस्कराते हुये सफलता की ओर बढ़ो।

वह देखो ! सामने ज्योति जगमगा रही है। मुस्कराते हुये ज्योति की ओर बढ़ो।

वह देखो ! सामने शुभ्र प्रकाश प्रकाशरहा है। मुस्कराते हुये प्रकाश की ओर बढ़ो।

वह देखो ! सामने सुन्दर देव अपना सौन्दर्य छटका रहा है। मुस्कराते हुये उसके सौन्दर्य का दर्शन करो।

—विदेह

शान्त और शान्ति

एकान्त में जो शान्त है, निष्क्रियता में जो शान्त है, सुविधाओं में जो शान्त है, वह शान्त नहीं है। वह तो नपुंसक है, वह तो कायर है।

शान्त वही है, जो कर्मकलापों में शान्त है, संघर्षों में जो शान्त है, तुमुल संग्रामों में जो शान्त है, विपत्तियों में जो शान्त है।

शान्ति-सुन्दरी उन कायरों का कभी कदापि वरण नहीं करती है, जो द्वन्द्वों से घबराते हैं और उत्तरदायित्वों से कतराते हैं। शान्ति-सुन्दरी उन वीरों का वरण करती है, जो द्वन्द्वों में निर्द्वन्द्व रहते हैं और उत्तरदायित्वों के रत्नों से जटित मुकुट को अपने शिर पर सजाते हैं।

—विदेह

योगी

॥ योगी कैसा तेरा योग ॥

आसन पद्म लगाकर बैठा, माया से संयोग ॥
मन में वास वासनाओं का, तन में व्यापे रोग ॥
छूटा नहीं राग रतियों का, त्यागन किये न भोग ॥
माया की मृगतृष्णा तजकर, किया न हरि से योग ॥

अपराधी

उससे बढ़कर अपराधी और कौन है, जो तेरी कृपा के अतिरिक्त अन्य किसी की कृपा का अभिलाषी है।

—विदेह

सबकी मुक्ति में व्यक्ति की मुक्ति

[विनोबा]

प्रह्लाद ने भगवान् से वर मांगा—

"प्रायेण देवमुनयः स्वविमुक्तिकामाः ।
मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः ॥
नैनान् विहाय कृपणान् विमुमुक्षुरेकः ।"

पहले अपनी मुक्ति की कामना करने वाले देव और मुनि काफ़ी हो गये, जो जंगल में जाकर मौन साधना किया करते थे। लेकिन उनमें परार्थनिष्ठा नहीं थी। लेकिन मैं अकेला इन सब कृपण जनों को छोड़ मुक्त होना नहीं चाहता। यह कितनी कड़ी आलोचना प्रह्लाद ने की है कि उन मुनियों के पीछे स्वार्थ लगा हुआ था, परार्थ नहीं। 'मैं अकेला मुक्त होना नहीं चाहता।' संस्कृत साहित्य का यह सर्वश्रेष्ठ उद्‌गार है। 'मुझे अकेले को मोक्ष नहीं चाहिये।' इस कहने में उसने कितना अधिक कवि-हृदय उंडेल दिया था।

वास्तव में मोक्ष अकेले पाने की वस्तु नहीं है। जो समझता है कि मोक्ष अकेले हथियाने की वस्तु है, मोक्ष उसके हाथ से निकल जाता है। 'मैं' आते ही 'मोक्ष' भाग जाता है। 'मेरा मोक्ष' यह वाक्य ही व्याहत है, ग़लत है। 'मेरा' मिटने पर ही मोक्ष मिलता है।

—'भूदान-यज्ञ' से साभार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद संस्थान अजमेर, के नवीन प्रकाशन

राम-चरित

आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान् पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के शब्दों में **"यह पुस्तिका अपने ढंग की निराली है। महापुरुष राम की यह सुन्दर कहानी सर्वसाधारण तथा युवकों के आचारबल को उठाने के लिये बहुत ही उपयोगी है। अलौकिक गाथाओं का यह लौकिक संस्करण त्रेतायुग को विक्रमी २१ वीं शताब्दी के वैज्ञानिक तथा बौद्धिक काल से मिला देता है"।**

भारतीय विद्याभवन, बम्बई की प्रसिद्ध पत्रिका "भारती" ने लिखा है, **"इसमें सन्देह नहीं कि विद्वान् लेखक [स्वामी विद्यानन्द विदेह] ने श्रीराम का चरित्र अत्यन्त सरल-सुबोध भाषा में लिखा है और शैली भी बड़ी मनोरंजक तथा आकर्षक है"।**

वाल्मीकीय रामायण तथा राम के चारु चरित पर जितनी शंकायें, जितने आक्षेप तथा जितनी आपत्तियां आज तक की गयी हैं, उन सबका युक्तियुक्त और विज्ञानसम्मत समाधान इस ग्रन्थ-रत्न में किया गया है। प्रत्येक राम-भक्त के गृह में और भारत राष्ट्र के प्रत्येक पुस्तकालय में इसकी पावन प्रतियां होनी चाहियें।

काश इसका अंग्रेज़ी अनुवाद देश-विदेशों की आंग्ल-भाषी जनता के हाथों में पहुंचाया जा सके?

मज़बूत जिल्द
तिरंगा आर्ट कवर
छपाई व गैटप अतिशय शुद्ध व सुन्दर
मूल्य डेढ़ रुपया
डाक-व्यय पृथक्

साधना

योगाभ्यास जैसे गुह्य और गहन विषय पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। पातञ्जल योगदर्शन के भी अनेक अनुवाद तथा व्याख्यान प्रकाशित हो चुके हैं। फिर भी एक ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी, जिससे योग का समझना और योगाभ्यास करना सरल व स्वाभाविक होजाये। उस कमी की पूर्ति विदेह-रचित इस ग्रन्थ से होगयी है।

छपाई शुद्ध
गैटप सुन्दर
मूल्य एक रुपया
डाक-व्यय पृथक्

आवश्यक निवेदन

कार्य की सुव्यवस्था के लिये यह आवश्यक है कि—

१) संस्थान-विषयक बातों के लिये जो पत्र लिखे जायें, वे सब "व्यवस्थापक, वेदसंस्थान, अजमेर" के नाम भेजे जायें।

२) स्वामी विद्यानन्द विदेह के नाम भेजे गये व्यक्तिगत पत्रों में केवल उनसे सम्बन्धित बातों की ही चर्चा की जाये।

—व्यवस्थापक

प्रकाशन-प्राप्ति

वेदव्याख्याग्रन्थों के पुष्प तथा वेद-संस्थान के अन्य सब प्रकाशन निम्न स्थानों पर मिलते हैं—

[१] श्री वंशीलाल जी आर्य,
दयानन्द वाटिका, राम बाग़
सब्ज़ी मण्डी, दिल्ली—६

[२] श्री सुरेन्द्रनाथ जी तिवारी,
१४, तुलाराम बाग़,
इलाहाबाद—६

[३] श्री मास्टर बृजमोहन जी शर्मा, बी. ए.,
सीमेण्ट वर्क्स स्कूल,
पो० लाखेरी सीमेण्ट वर्क्स
(बूंदी—राजस्थान)

[४] देव-प्रकाशन, **अजमेर**

[५] [illegible] [पंजाब]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वर्ष ११ : अंक १२ जनवरी १९५९ : पौष २०१५

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स वि ता

[वेद-संस्थान का मासिक पत्र]

पंजाब सरकार द्वारा पंजाब के स्कूलों व कॉलेजों के लिये स्वीकृत

सम्पादक :
विश्वदेव शर्मा

नेता

इन्द्रियों में से किसी को भी जीवन का नेता मत बनाओ। इन्द्रियों के स्वामी इन्द्र को ही अपने जीवन का नेता बनाओ। इन्द्रो जयाति न परा जयाता—इन्द्र सदा ही विजय प्राप्त कराता है, पराजय कभी कदापि नहीं।

इन्द्रवन्त को ही परिवार, समाज, संस्था और राष्ट्र का नेता बनाओ। इन्द्रवन्त नेता ही सुनयन करता है। इन्द्रियविलासी नेता का नेतृत्व पतन के गहरे गर्त में गिराता है।

नेता केवल एक ही होना चाहिये। जहां एक से अधिक नेता होते हैं, वहां दुरवस्था और अव्यवस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है।

—विदेह

मूल्य :
देश में— वार्षिक ३) रु०
एक प्रति २५ नये पैसे
विदेश में—वार्षिक ६ शि०
एक प्रति ६ पेंस

पत्र-व्यवहार का पता :
व्यवस्थापक, वेद-संस्थान, अजमेर

वेद-संस्थान के लिये पं० विश्वदेव शर्मा द्वारा, आदित्य मुद्रणालय, बाबू मोहल्ला, अजमेर में मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सविता

लेख-क्रम

नेता	बिदेह	१७७
सम्मतियां	अमर ज्योति / किशोरीलाल	१७८
मुक्तविहारी देव	विदेह	१७९
अहुतसेवी देव	,,	१८०
परिवार और वैभव में साधना	,,	१८२
अग्नि की सुमनस्कता	,,	१८४
सबमें शोभे एक अकेला	,,	१८४
गीता-योग [४५]	,,	१८४
वास्तविकता	व्यवस्थापक	१८६
अपने परिवार से	विदेह	१८८
गीत	,,	१८९
प्रकाशन-प्राप्ति	व्यवस्थापक	१८९
Love All	Scott	190
Prayer [10]	Hajela	191
Fearlessness & Steadfastness	Kishori Lal	191
संस्थान-प्रकाशन	व्यवस्थापक	१९२

मन्त्रानुक्रम

अग्निः प्रियेषु (य० १२/११७)	१८४
एभिर्नो अर्कैर्भवा (ऋ० १५/४६)	१८४
तं पत्नीभिरनुगच्छेम (य० १५/५०)	१८२
ये देवा देवानाम् (ध० १७/१३)	१८०
ये देवा देवेष्वधि (य० १७/१४)	१७९

राम—चरित

स्वामी विद्यानन्द विदेह ने वाल्मीकि रामायण को आधार मानकर छोटे छोटे ४६ उपसर्गों में धारावाहिक कथा के रूप में बहुत ही सुन्दर, रोचक व सरल साहित्यिक भाषा में इस रामचरित मानस की रचना की है। कथारूप में होने से पाठक को पढ़ने में काफ़ी रोचक लगता है।

प्रस्तुत पुस्तक पर्याप्त उपयोगी है। मोटे टाइप में छपाई तथा सजिल्द सुन्दर मेक-अप से काफ़ी आकर्षक है। माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर हिन्दी के पाठ्य-क्रम में पुस्तक का यदि उपयोग हो, तो बहुत लाभप्रद हो सकता है। कथारूप में होने से छात्र जहां प्रसन्नता के साथ इसे पढ़ने में रुचि लेगा, वहां श्री रामचन्द्र जी के चरित्रों से छात्रों को अच्छे संस्कारों की ओर अभिमुख होकर नैतिक वृद्धि होना सम्भव हो सकेगा। विद्यालयों तथा महाविद्यालयों के छात्रों में फैल रही उच्छृंखलता व अनुशासनहीनता के लिये नैतिक भावनाओं की वृद्धि होना अत्यावश्यक है। श्री विदेह जी का 'रामचरित' इस उद्देश्य में उपयोगी सिद्ध होगा।।

—"अमर ज्योति", जयपुर

साधना

मैं प्रति मास 'सविता' को मनोयोग के साथ पढ़ता हूं। "साधना" स्तम्भ तो और भी संलग्नता के साथ पढ़ा गया था। कुछ ऐसी इच्छा हुई कि पुस्तक पर पुनः सरसरी दृष्टि डालकर अपनी सम्मति लिख भेजूं।

पुस्तक उठाई और पढ़ना प्रारम्भ किया। कैसी सरसरी दृष्टि ! पढ़ता गया, पढ़ता गया। नित नयी रुचि उत्पन्न होती गयी। अक्षर-अक्षर पढ़ गया। ऐसा अनुभव हुआ कि राष्ट्रनिर्माण के ऐन अवसर पर पुस्तक का प्रकाशन हुआ है। प्रत्येक विद्यार्थी के पठन, मनन और निदिध्यासन की वस्तु है। **राम, कृष्ण, शंकर, बुद्ध, दयानन्द, गान्धी** और **विदेह** बिना साधना के स्वयं आकाश से नहीं बरसते। इसके लिये उत्कट साधना अपेक्षित है।

पुस्तक की एक एक बात दैनिक चरित्र में ढालने की है। योग-साधना विरक्त साधुओं के लिये ही नहीं, कर्मठ कर्मयोगी नवयुवकों के लिये भावी आदर्श राष्ट्रनिर्माता बनने के लिये भी अनिवार्य है।

जगन्नियन्ता जगदीश्वर इसके अहर्निश प्रसार में सहायक हों।

[प्रिंसिपल] **किशोरीलाल गुप्त,**
इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[वेद-संस्थान अजमेर का मासिक पत्र]

वर्ष ११	अजमेर, जनवरी १९५९, (सहस्यः) पौष २०१५	अङ्क १२ पूर्णाङ्क १३२

मुक्तविहारी देव

ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन् ये ब्रह्मणः पुर एतारो अस्य।
येभ्यो न ऋते पवते धाम किं चन न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्नुषु ॥ (य० १७/१४)

(ये देवाः) जो देव जन (देवेषु अधि) दिव्यताओं में अधिष्ठित होकर (देवत्वं आयन्) देवत्व को प्राप्त हो गये हैं, (ये) जो देव जन (अस्य ब्रह्मणः पुरः एतारः) इस ब्रह्म के अभिमुख विचरनेवाले हैं, (येभ्यः ऋते) जिनके बिना (किं चन धाम) कोई भी धाम (न पवते) पवित्र नहीं होता है, (ते) वे दिव्य जन (न दिवः न पृथिव्याः अधि) न द्यौ के न पृथिवी के ऊपर ठहरते हैं। वे तो (स्नुषु) प्रवाहों में प्रवाहित रहते हैं।

दिव्यताओं से द्योतित देव जन, देवत्व को प्राप्त हुये, इस ब्रह्म के साक्षात्कार में स्थित रहते हैं। ऐसे वे पावन देव जन जिस किसी भी धाम [स्थान] में पदार्पण करते हैं, वही पवित्र हो जाता है। वे किसी एक स्थान में स्थायी निवास नहीं करते हैं। वे तो जलप्रवाहों के समान सर्वत्र विचरते हुये सर्वकल्याण करते हैं।

जो देव देवों में अधिष्ठित देवत्व को प्राप्त,
विचरते हैं जो अभिमुख इस ब्रह्म के।
जिनके बिना पवित्र नहीं होता है कोई धाम,
ठहरते वे न द्यौ न पृथिवी पर, विचरते हैं सर्वत्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहुतसेवी देव

ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानां संवत्सरीणमुप भागमासते ।
अहुतादो हविषो यज्ञे अस्मिन्त्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥
(य० १७/१३)

१) (ये) जो (संवत्-सरीणं भागं उप-आसते) संवत्सरीण भाग को उपासते हैं।

२) वे (देवानां देवाः) देवों के देव और (यज्ञियानां यज्ञियाः) यज्ञियों के यज्ञीय [होजाते हैं]।

३) वे (अ-हुत-अदः) अहुतभक्षी होकर (हविषः अस्मिन् यज्ञे) हवि के इस [संवत्सरीण] यज्ञ में (मधुनः घृतस्य) मधु और घृत का (स्वयं) आत्मना (पिबन्तु) पान करें।

दिव्यताओं से जो युक्त होते हैं, उनकी देव संज्ञा होती है। दिव्यताओं का अपने जीवन में सम्पादन करके देव बनना कोई सरल कार्य नहीं है। देव बनने के लिये तो दीर्घ काल तक निरन्तर घोर साधना करनी पड़ती है।

गुण तीन हैं—तम, रज और सत्। तीनों ही गुण बन्धनकारी हैं। तम लोहे का रस्सा है। रज सन का रस्सा है। सत् रेशम का रस्सा है। तम की अपेक्षा रज श्रेष्ठतर है। रज की अपेक्षा सत् श्रेष्ठतर है। हैं तीनों ही बन्धन का कारण।

तमोगुण अथवा तामसी अवस्था अधम है। रजोगुण अथवा राजसी अवस्था मध्यम है। सतोगुण अथवा सात्त्विक अवस्था उत्तम है। तम अधम पाश है। रज मध्यम पाश है। सत् उत्तम पाश है।

रज मध्यवर्ती है। रज के एक ओर तम वर्तमान रहता है और दूसरी ओर सत्। रज दोनों का निकटवर्ती है। तम में रज का प्रभाव रहता है। रज को एक ओर से तम प्रभावित करता है और दूसरी ओर से सत्। सत् में भी रज का विशेष प्रभाव रहता है।

तम रज की ओर जाता है। तममिश्रित-रज सत् की ओर जाता है। उधर से सत् रज की ओर जाता है और सत्मिश्रित रज तम की ओर जाता है।

तम, रज और सत्—ये तीनों गुण प्रकृति के हैं। प्रकृति ही त्रिगुणात्मक है। ये तीनों गुण प्रकृति में मिश्रित हैं। ऐसा नहीं है कि कहीं किसी वस्तु या प्राणी में केवल तम ही तम हो, या रज ही रज हो, या सत् ही सत् हो। रजप्रधान वस्तु या प्राणी में तम और सत् का मिश्रण पर्याप्त मात्रा में रहता है। सत्प्रधान प्राणी या वस्तु में तम और रज की पर्याप्त मात्रा होती है। तमप्रधान वस्तु या प्राणी में रज और सत् की पुष्कल मात्रा होती है।

बड़े से बड़े और अच्छे से अच्छे सात्त्विक व्यक्तियों में भी यथावसर और यथावातावरण राजसी तथा तामसी वृत्तियें उत्तेजित होती हैं और न चाहते हुये भी वे तामस या राजस कृत्य कर बैठते हैं। प्राचीन और अर्वाचीन ऋषि इसी लिये अपने को सदा सर्वदा सतत सात्त्विक वातावरण में रखते चले आये हैं, फिर भी तनिक सी भी असावधानी होने पर उनमें से कईयों पर असात्त्विक अवसर व वातावरण का प्रतिकूल प्रभाव हुआ और उनका पतन होगया। वर्तमान में कतिपय व्यक्ति हैं, जो संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित और वेदों के धुरन्धर विद्वान् हैं, किन्तु अनेक बार वे पतित हुये हैं। कई संन्यासी हैं, जो शास्त्रों का बड़ा ही तात्त्विक विवेचन करते हैं, किन्तु वे प्रायः अनाचार का शिकार होते रहते हैं। ऐसे उपदेशक हैं, जो जीवन भर धर्मप्रचार करते रहे हैं, फिर भी वे अयोग्य कर्म कर बैठते हैं।

प्रकृति के ये तीन गुण ही शोक, हर्ष और सन्तोष के देनेवाले हैं। जब मनुष्य तम के प्रभाव में होता है, तो वह तामसी कर्म करता है और शोक व क्लेश को प्राप्त होता है। जब मानव रज के प्रभाव में होता है, तो वह राजसी कर्म करता है और हर्ष को प्राप्त होता है। जब मनुष्य सत् के प्रभाव में होता है, तो वह सात्त्विक कर्म करता है और सन्तोष व प्रसन्नता अनुभव करता है।

पशु, पक्षी, मानव—सभी प्राणी प्रकृति के वशीभूत हैं। प्रकृति से प्रेरित होकर ही मानव शुभाशुभ कर्म करते हैं और उनके परिणामों को भोगते हैं। सतर्कता और सावधानी के साथ जो अपने को नितान्त सात्त्विक वातावरण में रखते हैं, असावधानी होने पर उनके भी पतन का खतरा तो बना ही रहता है।

तो फिर इस समस्या का कोई स्थायी हल भी है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, अवश्य है। इस समस्या का स्थायी समाधान है "निस्त्रैगुण्या भवत"—"त्रिगुणातीत होजाओ। तीनों गुणों के प्रभाव से मुक्त होजाओ"। जब तक मनुष्य तीनों ही गुणों के प्रभाव से सर्वथा मुक्त न होगा, तब तक वह न तो त्रिगुणों के त्रितापों से मुक्त होगा, न ही त्रिगुणों की त्रिपाशों से छुटकारा पायेगा। प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति, सब प्राणी प्रकृति से प्रेरित और लाचार हैं, हठवाद क्या करेगा।

त्रिगुणात्मक प्रकृति के पञ्चतत्वों से निर्मित देह में निवास करते हुये त्रिगुणातीत कैसे हुआ जा सकेगा? माना कि आत्मा अनिल [अपार्थिव, अभौतिक] होने के कारण स्व स्वरूप से त्रिगुणातीत है। तो भी त्रैगुण्य देह के सम्पर्क और संसर्ग में रहते हुये वह त्रिगुणों के प्रभाव से मुक्त और अप्रभावित कैसे रह सकता है?

यज्ञ से त्रिगुणात्मक शरीर त्रिगुणातीत होकर दिव्य होजाता है, दिव्यताओं से युक्त होजाता है। दिव्यताओं से युक्त होकर मानव देव बन जाता है। यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु। देव का पूजन, देव से संगति और देव के प्रति दान [आत्मदान, आत्मसमर्पण]—ये तीन अंग हैं यज्ञ के। पूजा [Worship], संगति [To be one with] और दान [समर्पण–Surrender] से त्रिगुणात्मक देह भी त्रिगुणातीत होकर दिव्य होजाती है। कोयला जब अग्नि का पूजन करता है, अग्नि से संगत होता है, अग्नि में समर्पित होता है, तो कालिमातीत होकर अग्निरूप होजाता है और अग्नि-नाम से नामित होता है। किन्तु जब वह अग्नि से पृथक् होता है, तो पुनः कालिमायुक्त कोयला होजाता है। कोयला जब दीर्घ काल तक अन्तस्साधना करता है, चिर काल तक अन्तरग्नि में समाहित रहता है, अन्तरग्नि से संगत रहता है, अन्तरग्नि में समर्पित रहता है, तो वह हीरा बन जाता है। फिर वह पुनः कोयले के रूप को प्राप्त नहीं होता है, सदा ही श्वेत शुद्ध हीरा बना रहता है।

एवमेव जब मानव दीर्घ काल तक अनवरत अन्तस्साधना करता है, आत्मना दिव्य देव का पूजन करता है, प्रचेतना द्वारा दिव्य देव का चिन्तन करता है, भावना द्वारा दिव्य देव से संगत रहता है और मनीषा द्वारा दिव्य देव में समर्पित रहता है, तो उसका दिव्य आत्मा तो दिव्य देव की सम्पूर्ण दिव्यताओं से द्योतित हो ही जाता है, उसका सम्पूर्ण जीवन भी दिव्य होजाता है, कोयला भी दिव्य हीरा बन जाता है। उसकी दृष्टि दिव्य दृष्टि और उसकी श्रुति दिव्य श्रुति होजाती है। उसका प्राण दिव्य प्राण और उसका घ्राण दिव्य घ्राण होजाता है। उसका स्पर्श दिव्य स्पर्श और उसकी रसना दिव्य रसना बन जाती है। उसका अनिल [अभौतिक] आत्मा और उसका इल [भौतिक] देह, उसका अन्तः बाह्य सम्पूर्ण जीवन, दिव्य होजाता है। दिव्य देव की दिव्यता के सतत संचार से त्रिगुणातीत होकर वह अखिल दिव्यताओं से युक्त होजाता है, देव बन जाता है।

इस प्रकार (ये संवत्-सरीणं भागं उप-आसते) जो संवत्सरीण भाग को उपासते हैं, वे (देवानां देवाः यज्ञीयानां यज्ञियाः) देवों के देव और यज्ञियों के यज्ञीय बन जाते हैं।

संवत्सर नाम काल-चक्र का है। काल की एक वर्ष की अवधि का नाम संवत्सर है। ऋतवः संवत्सरः। संवत्सर=सं [ऋतु]+वत् [समान, क्रम]+सर [सरण-गति करनेवाला]। ऋतु-क्रम से गति करनेवाला होने से वर्ष का नाम संवत्सर है। संवत्सरो वै व्रतम्। संवत्सर नाम व्रत का है। संवत्सर व्रती है। वह व्रतानुसार गति करता है, व्रतानुसार ऋतुयें बनाता है और ऋत्वनुसार सब वस्तुओं का सृजन, वर्धन और परिपाक करता है। संवत्सरो वै यज्ञः। संवत्सर निश्चय से यज्ञ है, सूर्य जिसका यज्ञीय देव है, वसन्त ऋतु जिसका घृत है, ग्रीष्म ऋतु जिसका इन्धन है और शरद ऋतु जिसकी हवि है। इसी यज्ञ से भौतिक जगत् में सम्पूर्ण दिव्यतायें द्योतित होरही हैं। यथा-ऋतु वस्तुओं का सृजन, वर्धन और परिपाक और साथ ही यथा-ऋतु खान पान व्यवहार संवत्सरीण भाग कहलाता है।

इस संक्षिप्त व्याख्या के प्रकाश में अब हम विचार करें कि "जो संवत्सरीण भाग को उपासते हैं, वे देवों के देव और यज्ञियों के यज्ञीय बन जाते हैं", इसका क्या आशय है। वेद की इस उक्ति में देवों के देव और यज्ञियों के यज्ञीय बनने का एक गुह्य रहस्य संनिहित है। संवत्सर के समान व्रती बनकर जो धैर्यपूर्वक दीर्घ काल तक वर्षानु वर्ष जीवन-यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, वे ही कालान्तर में देवों के देव और यज्ञियों के यज्ञीय बनते हैं, वे ही नितान्त दिव्य और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नितान्त यज्ञीय बन पाते हैं।

संवत्सरीण भाग की सतत उपासना करके जो नितान्त दिव्य तथा यज्ञीय बन जाते हैं, वे अहुताद कहलाते हैं। एते वै देवा अहुतादो यत् ब्राह्मणाः—जो ब्रह्मोपासक आत्मसाधना द्वारा दिव्यताओं से युक्त होकर देव बनते हैं, उन्हें अहुतादः कहते हैं। अ नहीं, हुत होमा हुआ, अदः खानेवाले। अहुत का भक्षण करनेवाले अहुतादः कहलाते हैं। खाद्यों तथा पेयों की मुख द्वारा ग्रासरूपेण जठराग्नि में जो आहुति देते हैं, वे हुतादः हैं। भौतिक खाद्य पेय हुत पदार्थ हैं। यज्ञीयतायें तथा दिव्यतायें अहुत सम्पदायें हैं। वैदिक भाषा में प्रेय का नाम हुत है और श्रेय का नाम अहुत है। दिव्य देव की दिव्यताओं का सेवन करनेवाले अहुतादः हैं। मायामय भोगों को भोगनेवाले हुतादः हैं।

अहुतादः साधनारूपी जिस यज्ञ का सम्पादन करके अतिशय यज्ञीय देव बनते हैं, उसे हविषः यज्ञः [हवि का यज्ञ] कहते हैं। अमृतानाममृतं हविः। अमृतों के अमृत का नाम हवि है। जिस यज्ञ से कोयला हीरा बन जाता है, जिस यज्ञीय साधना द्वारा मानव यज्ञीय देव बनता है, वह हवि का यज्ञ है, वह अमृतों के अमृत का याग है। (अहुतादः) अहुतसेवी ये यज्ञीय देव (हविषः अस्मिन् यज्ञे) परमामृतप्राप्ति के इस संवत्सरीण यज्ञ के सम्पादन में (स्वयं) आत्मना (मधुनः घृतस्य पिबन्तु) मधु और घृत का पान करें।

मधु माधुर्य का प्रतीक है और घृत प्रतीक है स्निग्धता-स्नेह-श्रद्धा का। परमामृतप्राप्ति के इस यज्ञ के सम्पादन में बड़ी बड़ी कठिनाइयां आती हैं। श्रेय की साधना बड़ी कठिन है, कठिनाति कठिन है। दिव्यता के यागियों को, श्रेय के साधकों को, चाहिये कि मार्ग की विकटताओं तथा कठिनाइयों को मधुरता तथा आत्म-श्रद्धा के साथ सेवन सहन करें। यज्ञ की समाप्ति पर, साधना की संसिद्धि पर, शाश्वत शान्ति और अक्षय आनन्द की संसिद्धि होगी, स्व और सर्व का पूर्ण कल्याण होगा।

विज्ञ पाठक इस मन्त्र पर गहराई के साथ मनन करें और श्रेय की साधना में अग्रसर हों।

जो उपासते हैं संवत्सरीण भाग को,
वे देवों के देव यज्ञियों के यज्ञीय।
पान करें वे अहुत-सेवी,
परमामृत के इस सुयज्ञ में,
माधुर्य और मधु श्रद्धा का॥

परिवार और वैभव में साधना

तं पत्नीभिरनुगच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः।
नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः॥

(य० १५/५०)

तं पत्नीभिः अनु-गच्छेम देवाः पुत्रैः भ्रातृभिः उत वा हिरण्यैः।
नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः॥

(देवाः) हम देव जन (पत्नीभिः पुत्रैः भ्रातृभिः उत वा हिरण्यैः) पत्नियों, पुत्रों, भ्राताओं अपि च ऐश्वर्यों सहित (तं नाकं गृभ्णानाः) उस नाक को ग्रहण करते हुये (सुकृतस्य लोके) सुकृत के लोक में, (तृतीये पृष्ठे) तृतीय पृष्ठ पर, (दिवः रोचने अधि) प्रकाश के रोचन के ऊपर (अनु-गच्छेम) अनुगमन करें।

कः का अर्थ है आनन्द। अकः का अर्थ है नहीं आनन्द, आनन्दरहितता। नाकः=न+अकः=नहीं—आनन्दरहितता, आनन्दसहितता, आनन्दमयता।

प्रकृति सत् है। प्रकृति की सत्ता है। किन्तु उसकी सत्ता जड़ है, चेतन नहीं। शरीर प्रकृति के पंच तत्त्वों से निर्मित है। अतः जो कुछ प्रकृति-जन्य है, वह सब केवल शरीर के द्वारा सेवनीय है। प्रकृति के बने पदार्थों का सेवन केवल शरीर को ही नीरोग, स्वस्थ, सुन्दर और सुखी रख सकता है।

आत्मा सच्चित् है। वह सत् है, उसकी सत्ता चेतन और अभौतिक है। अतः न वह प्रकृति के पदार्थों का सेवन करता है, न उनसे उसे सुख मिलता है। सुख शरीर का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय है, आत्मा का नहीं। शरीर के सतत संसर्ग के कारण आत्मा शरीर के सुखी होने पर अपने को सुखी अनुभव करता है। अभौतिक होने से वह स्वयं भौतिक पदार्थों का सेवन नहीं करता है।

जीवन नाम शरीर और आत्मा के संयोग का है। जीवन में शरीर के लिये सुख चाहिये, आत्मा के लिये आनन्द। शरीर में सुख और आत्मा में आनन्द होने की अवस्था का नाम नाक है। सुख और आनन्द के संयोग में जीवन की जो परिपूर्णता है, उसी का नाम नाक है। सुख प्रकृति से प्राप्त होता है और आनन्द आनन्दस्वरूप परमात्मा से।

सुख और आनन्द से युक्त जो नाक है, उसकी प्राप्ति के लिये हमें घर बार छोड़कर न पर्वत पर चढ़ने की आवश्यकता है, न जंगल में छिपने की। नाक की प्राप्ति के लिये न हमें राज पाट त्यागने की आवश्यकता है, न हिरण्य [सुवर्ण, धनैश्वर्य)। पति पत्नी, पुत्र पुत्री, भाई बन्धु, परिवार परिजन और धनैश्वर्य के मध्य में निवास करते हुये ही उस नाक की सम्प्राप्ति की जाती है और की जानी चाहिये।

चारों वेदों में कहीं एक स्थान पर भी यह विहित नहीं है कि ब्रह्म और ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिये, सुकर्म और सुकृत के सम्पादन के लिये अथवा लोकसेवा के लिये परिवार परिजन तथा धनैश्वर्य का परित्याग करना चाहिये। वेद में पारिवारिक जीवन और धनैश्वर्य को हेय नहीं श्रेय बताया गया है। परिवार तथा धन हैं भी वास्तव में श्रेय ही, यदि पारिवारिक जीवन सुव्यवस्थित तथा साधनामय हो और धन तपःपूत परिशुद्ध हो। यही शिक्षा इस मन्त्र के गर्भ में संनिहित है—

१) हम (सुकृतस्य लोके अनु गच्छेम) सुकृत के लोक में अनुगमन करें, तो गृहस्थाश्रम में हम (पत्नीभिः पुत्रैः भ्रातृभिः उत वा हिरण्यैः) पत्नियों, पुत्रों, भ्राताओं अपि च ऐश्वर्यों सहित (देवाः) दिव्यताओं से युक्त होकर (तं नाकं गृभ्णानाः) उस नाक को प्राप्त करनेवाले हो जायें।

जहां सुकृत किये जाते हैं, वही सुकृत का लोक है। जिस गृहस्थाश्रम में परिवार के छोटे बड़े सब सदस्य सुमर्यादाओं का पालन तथा उत्तम परम्पराओं का निर्वहन करते हुये सुकृत के पथ पर एक दूसरे का अनुगमन करते हैं और साथ ही धर्मपूर्वक धनोपार्जन करते हुये धर्म में धन का सदुपयोग करते हैं, उस परिवार के सभी सदस्य दिव्यताओं से युक्त होकर सुख और आनन्द का सम्पादन करते हैं, जिससे मानव जीवन सफल और सार्थक सिद्ध होता है।

२) हम (तृतीये पृष्ठे अनु गच्छेम) तृतीय पृष्ठ पर अनुगमन करें, तो (पत्नीभिः पुत्रैः भ्रातृभिः उत वा हिरण्यैः) पत्नियों, पुत्रों, भ्राताओं अपि च ऐश्वर्यों सहित (देवाः) दिव्यताओं से युक्त होकर (तं नाकं गृभ्णानाः) उस नाक को प्राप्त करनेवाले होजायें।

पृष्ठ का प्रयोग यहां पृष्ठभूमि अथवा आधार के लिये हुआ है। तम की प्रथम पृष्ठ अधम पृष्ठ है। रज की द्वितीय पृष्ठ मध्यम पृष्ठ है। सत् की तृतीय पृष्ठ उत्तम [सर्वोच्च] पृष्ठ है। अज्ञानान्धकार निम्नतम पृष्ठ है। रज का मध्यम आलोक उच्चतर पृष्ठ है। सत् का उत्तम आलोक उच्चतम पृष्ठ है। सत् की पृष्ठ पर दिव्यता का द्योतन होता है। सत् के नीचे रज का प्रभाव रहता है।

जिस गृहसंस्था के सकल सदस्य सत् की पृष्ठ पर अनुगमन करते हैं, सात्त्विक जीवन के निर्वहन में परस्पर एक दूसरे का अनुसरण करते हैं, उस परिवार के सभी सदस्य दिव्यताओं से युक्त होकर उस सुख और आनन्द का सुनिष्पादन करते हैं, जिससे मानव जीवन कृत्य कृत्य और कृतकार्य होता है।

३) हम (दिवः रोचने अधि अनु गच्छेम) प्रकाश के रोचन के ऊपर अनुगमन करें, तो (पत्नीभिः पुत्रैः भ्रातृभिः उत वा हिरण्यैः) पत्नियों, पुत्रों, भ्राताओं अपि च ऐश्वर्यों सहित (देवाः) दिव्यताओं से युक्त होकर (तं नाकं गृभ्णानाः) उस नाक को प्राप्त करनेवाले होजायें।

रोचन का अर्थ है निखार, दीप्ति। किसी वस्तु को अन्दर बाहर निखारने, साफ़ करने, से जो दीप्ति आती है, उसका नाम रोचन है। भौतिक प्रकाश से तो न अन्तःकरण निखरता है, न बाह्यकरण। वह तो आध्यात्मिक प्रकाश ही है, वह तो ज्ञान का प्रकाश ही है, जिससे जीवन के अन्तः बाह्य का निखार होता है और जीवन में दिव्य दीप्ति जगमगाती है।

जिस परिवार के सभी सभ्य आध्यात्मिक प्रकाश के रोचन में परस्पर एक दूसरे का अनुगमन करते हैं, उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार के सभी सभ्य दिव्यताओं से युक्त होकर उस सुख और आनन्द का आस्वादन करते हैं, जिससे मानव को आत्मतृप्ति और आत्मसन्तोष की अमूल्य निधि सम्प्राप्त होती है।

यदि हम करें अनुगमन सुकृत के सुलोक में,
सहित पत्नियों पुत्रों भ्राताओं ऐश्वर्यों,
होकर दिव्य दिव्यताओं से पायें हम वह नाक ॥
यदि हम करें अनुगमन तृतीय पृष्ठ में,
सहित पत्नियों पुत्रों भ्राताओं ऐश्वर्यों,
होकर दिव्य दिव्यताओं से पायें हम वह नाक ॥
यदि हम करें अनुगमन ज्योति के रोचन में,
सहित पत्नियों पुत्रों भ्राताओं ऐश्वर्यों,
होकर दिव्य दिव्यताओं से पायें हम वह नाक ॥

अग्नि की सुमनस्कता

एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ (य० १५/४६)

एभिः नः अर्कैः भव आ नः अर्वाङ् स्वः न ज्योतिः।
अग्ने विश्वेभिः सुमनाः अनीकैः ॥

(अग्ने) सौन्दर्य-पुञ्ज ! शौलए-हुस्न ! (एभिः विश्वेभिः अर्कैः अनीकैः) इस सब आभाओं और सौन्दर्यों के साथ (स्वः ज्योतिः न) आनन्दप्रद ज्योति के समान (नः अर्वाङ् आ) हमारे सामने आ, और (नः) हमारे लिये (सुमनाः भव) मन प्रसन्न करनेवाला हो।

सुन्दर !
अभिलाषा,
तेरे दर्शन की,
उमड़ रही है ॥ १
रहता है,
हम सबका मन,
निढाल दर्शन बिन ॥ २
आ,
आनन्दप्रद ज्योति-सम,
अपनी इन सब,
आभाओं और
शोभाओं के साथ,
हमारे अभिमुख ॥ ३
होजायें उल्लसित,
हमारे ये निढाल मन ॥ ४

सबमें शोभे एक अकेला

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको विराजति ॥ (य० १२/११७)

अग्निः प्रियेषु धामसु कामः भूतस्य भव्यस्य ।
सं-राट् एकः वि-राजति ॥

(भूतस्य भव्यस्य) भूत का और भविष्य का (एकः) एक (सं-राट्) सम्यक्-प्रकाशमान (कामः) कमनीय (अग्निः) सौन्दर्य-पुञ्ज, शौलए-हुस्न (प्रियेषु धामसु) प्रिय धामों में (वि-राजति) जगमगा-रहा है।

भूत भविष्यत् का,
प्रकाशनेवाला एक सम्राट्,
अतिशय सुन्दर और मनोहर,
आदि-स्रोत सौन्दर्यों का,
प्रिय भक्तों के,
अनुरक्तों के,
हृदयरूपी प्रिय धामों में,
प्रियता से प्रकाश-रहा है ॥

गीता-योग

—४५—

चौथा-अध्याय

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१६

(किं कर्म किं अकर्म) क्या कर्म, क्या अकर्म—(इति) इस विषय में (अत्र) यहां (कवयः अपि) बुद्धिमान् भी (मोहिताः) मोहित होजाते हैं। मैं (ते) तेरे प्रति (तत् कर्म) वह कर्म, कर्म का वह सिद्धान्त (प्रवक्ष्यामि) प्रकथन करूंगा, (यत् ज्ञात्वा) जिसे जानकर, तू (अशुभात्) अशुभ से (मोक्ष्यसे) मुक्त होजायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या कर्म क्या अकर्म ज्ञानी भी यहां,
होजाते हैं मोहित इस विषय में ।
मैं बताऊंगा तुझे कर्म का वह रहस्य,
जानकर जिसे मुक्त होजायेगा तू अशुभ से ॥

कर्मणो ह्यपि बोधव्यं बोधव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोधव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥१७

(हि) निश्चय से (कर्मणः) कर्म का [तत्त्व] (अपि) भी (बोधव्यं) ज्ञातव्य है, (च) और (विकर्मणः) विकर्म का [तत्त्व भी] (बोधव्यं) जाननेयोग्य है। (च) और (अकर्मणः) अकर्म का [तत्त्व भी] (बोधव्यं) जाननीय है। (कर्मणः गतिः गहना) कर्म की गति गहन है।

निश्चय ही बोधव्य है कर्म का भी तत्त्व,
और बोधव्य है विकर्म का भी सार।
और है बोधव्य अकर्म का भी रहस्य,
बड़ी गहन है रे गति कर्म की ॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत ॥१८

(यः कर्मणि अकर्म पश्येत्) जो कर्म में अकर्म को देखे, (च) और (यः अकर्मणि कर्म) जो अकर्म में कर्म को [देखे], (सः मनुष्येषु बुद्धिमान्) वह मनुष्यों में बुद्धिमान् है, वह ही (युक्तः) योगयुक्त-समाहित योगी है, वह ही (कृतस्न-कर्म-कृत्) सब कर्मों का करनेवाला है।

कर्म में अकर्म को देखे जो,
और जो देखे अकर्म में कर्म को।
वह ही है मनुष्यों में बुद्धिमान्,
वह ही है कर्मयोगी और कर्ता सकल कर्मों का ॥

श्लोक १६

संस्कृत वाङ्मय में कर्म का प्रयोग कर्तव्य कर्म अथवा करणीय कर्म के अर्थ में होता है। तदनुसार अकर्म का अर्थ है अकर्तव्य कर्म या अकरणीय कर्म। स्मृतिकारों ने कर्तव्य कर्म के लिये विहित कर्म का और अकर्तव्य कर्म के लिये निषिद्ध कर्म का प्रयोग किया है। शास्त्रों द्वारा सम्पूर्ण कर्म विधि और निषेध की परिधि में पिरो दिये गये हैं। शास्त्रों में जिन जिन बातों के करने का विधान है, वे सब कर्म हैं और जिन जिन बातों के करने का निषेध है, वे सब अकर्म हैं। साथ ही विहित कर्मों का करना शुभ या पुण्य माना गया है और निषिद्ध कर्मों का करना माना गया है अशुभ या पाप। यद्यपि स्मृतिकारों तथा शास्त्रकारों ने कर्मों का विधि निषेध में विभाजन कर दिया है, फिर भी ऐसे कोमल अवसर और नाजुक प्रसंग आते हैं, जब कर्म अकर्म के विषय में बड़े बड़े क्रान्त कवि और बड़े बड़े बुद्धिमान् भी मोहित [किं-कर्तव्य-विमूढ़] होजाते हैं। इसी लिये कृष्ण कहते हैं, "अर्जुन ! तू जो अपने कर्तव्य अकर्तव्य के विषय में इस समय मोहित होरहा है, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। विकट प्रसंगों में कर्तव्य अकर्तव्य के विषय में बड़े बड़े विज्ञ जन भी शंकाग्रस्त होजाते हैं। मैं तुझे कर्म का वह रहस्य बताऊंगा, जिसे जानकर तू कभी कदापि अशुभ [पाप] का भागी न होगा। तू शुभ अशुभ की द्विधा से मुक्त होजायेगा।

श्लोक १७

"कर्म की गति गहन है", इस मर्म का अर्जुन के मानस में स्पर्श कराते हुये, कृष्ण कहते हैं, "अर्जुन, कर्म और अकर्म का बोध तो प्राप्त करना ही चाहिये, विकर्म का बोध भी अवश्य होना चाहिये"। निस्सन्देह जो जड़वत् विधि और निषेध का पालन करते हैं, वे जड़मति हैं। विकर्म की व्यावहारिक गति को समझे बिना, संसार में कर्म अकर्म का कोई मूल्य, महत्त्व या लाभ नहीं। उतना महत्त्व न कर्म में है न अकर्म में, जितना विकर्म में है।

श्लोक १८

विकर्म क्या है ? कर्म में अकर्म को देखना और अकर्म में कर्म को देखना—यही विकर्म है। विकर्म के देखने, समझने और करनेवाला मनुष्य ही बुद्धिमान्, योगी और सर्वकर्मकृत मानव है।

अहिंसा कर्म है। हिंसा अकर्म है। कुछ दुष्ट जन आते हैं और एक युवती के साथ बलात्कार करना चाहते हैं। युवती अपने सतीत्व की रक्षार्थ रिवॉल्वर निकाल कर फ़ायर करती है और उन आततायियों को जान से मार देती है। न्यायाधीश उस युवती को दण्ड न देकर उसे प्रशंसापत्र प्रदान करता है और अपने फ़ैसले के अन्त में लिखता है, "कोर्ट इस युवती के साहस और पराक्रम की प्रशंसा करता है। राष्ट्र की प्रत्येक युवती को अपने सतीत्व की रक्षा के लिये इस देवी का अनुकरण करना चाहिये"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहिंसा कर्म था। हिंसा अकर्म था। सतीत्व की रक्षा के लिये अकर्म कर्म होगया। हिंसा अकर्म है और अकर्म था। **पर यहां अकर्म कर्म बन गया है** अकरणीय कर्म करणीय कर्म होगया है। यहां हिंसा करके उसने शुभ ही किया है, अशुभ नहीं।

महर्षि दयानन्द संस्कारविधि में विधान करते हैं कि प्रत्येक गृहस्थ ब्रह्ममुहूर्त्त में उठकर शौच स्नानादि से निवृत्त होकर योगाभ्यास की रीति से ब्रह्म का ध्यान करे। ऐसा करना विहित कर्म है। अब शरद ऋतु है और एक गृहस्थ तीव्र ज्वर से पीड़ित है। ऐसी अवस्था में यदि वह ब्रह्ममुहूर्त में उठकर स्नान ध्यान करेगा तो और अधिक रुग्ण होजायेगा। अतः ऐसा न करके उसने शुभ ही किया है, अशुभ नहीं।

विधि और निषेध का, कर्म और अकर्म का, ध्यान रखना और तदनुसार वर्तना ठीक है, पर प्रसंग और अवसर विशेष में कब कर्म अकर्म बन जाता है और कब अकर्म कर्म होजाता है, बुद्धिमान् मनुष्य इस तथ्य पर दृष्टि रखकर कार्य करता है। कर्म अकर्म का जड़वत् अनुसरण करना परले दरजे की मूर्खता है। विकर्म का अर्थ है अवसर विशेष पर कर्म अकर्म का विपर्यय [उलटा विपरीत व्यवहार]। विहित कर्म कब कहां निषिद्ध कर्म होजाता है और निषिद्ध कर्म कब कहां विहित कर्म होता है, इस तत्त्वबोध का नाम विकर्म है।

अर्जुन विकर्म के इस मर्म को दृष्टि से ओझल करके कहता है, "कृष्ण! हिंसा करना कर्म है। पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः—इन अत्याचारियों को मारकर हमें हत्या का पाप लगेगा"। वह यह नहीं सोचता है कि आततायियों का निरोध या हनन नहीं किया गया तो संसार में कितनी हिंसा व्यापेगी और कितना अत्याचार बढ़ेगा। कृष्ण समझा रहे हैं, "अर्जुन! विकर्म के रहस्य को समझ। निस्सन्देह हिंसा **अकर्म** है, परन्तु आततायियों को निर्बाध खुला छोड़ देना भी तो **अकर्म** है। यदि तू इन आततायियों से युद्ध न करेगा, तो इनका आतंक और अत्याचार सारी भूमि पर व्याप जायेगा और सारी मानव प्रजा त्रस्त और हिंसित हो जायेगी। यहां दो में से एक अकर्म को तुझे चुनना ही होगा। हिंसाकारी होने पर भी धर्म [न्याय] की रक्षा के लिये तुझे युद्ध करना ही चाहिये"।

वास्तविकता

श्री स्वामी विद्यानन्द जी विदेह ने १६ जुलाई से ३१ दिसम्बर १९५४ तक का समय ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका [पूर्वी अफ्रीका] में बिताया था। उनके द्वारा उस प्रदेश में जो मिशनरी कार्य हुआ, उसका विवरण यथासमय सविता में प्रकाशित हुआ था। लगभग चार वर्ष बीत गये उस प्रसंग को कि हाल ही में दो व्यक्तियों ने श्री विदेह के तबके अफ्रीका-भ्रमण के विषय में पुनः कुछ अवास्तविक बातें प्रचारित करना प्रारम्भ किया है।

वादविवाद में न हमारी रुचि है, न दलगत टण्टों के लिये हमारे पास समय है। कतिपय वेदप्रेमियों के आग्रह पर, केवल जनता की जानकारी के लिये, हम यहां प्रथम बार दो ऐसे पत्रों को प्रकाशित कर रहे हैं, जिनसे वास्तविकता स्पष्ट होजायेगी। दयानन्द के शब्दों में, "जो ईर्ष्यावश हमसे द्वेष करते हैं, प्रभु उन्हें सुमति प्रदान करे" और क्राइस्ट के शब्दों में "प्रभो! उन्हें क्षमा कर, क्योंकि वे नहीं जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं"।

—व्यवस्थापक

आर्य प्रतिनिधि सभा,
नैरोबी
२० जून १९५५

सेवा में—श्री मन्त्री जी,
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली

श्रीमन्, नमस्ते।

अन्तरङ्ग सभा की बैठक में निश्चय हुआ है कि आचार्य श्री विद्यानन्द जी विदेह की सराहनीय प्रचार-यात्रा का वृत्तान्त आपकी सभा द्वारा भारत सरकार की सेवा में प्रस्तुत किया जाये। तदनुसार साथ का पत्र, प्रतिलिपि सहित, आपकी सेवा में प्रेषित है। इसके सम्बन्ध में यथोचित कार्रवाई करने के बाद यथावसर परिणाम से सूचित करने की कृपा करेंगे।

धन्यवाद सहित,

आपका भाई,
गुरुदासराम भण्डारी,
मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा, ब्रि० ईस्ट अफ्रीका

Copy forwarded to Swami Vidyanand ji Videh.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य प्रतिनिधि सभा,
नैरोबी
२० जून १९५५

सेवा में—माननीय सचिव,
विदेशीय विभाग [External Affairs],
भारत सरकार, नई दिल्ली

विषय—भारतीय प्रचारक परम पूज्य
श्री स्वामी विद्यानन्द जी विदेह,
अजमेर।

श्रीमन्महोदय, सादर नमस्ते।

जैसाकि आपको विदित है, ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका में लगभग ढाई लाख भारतीय निवास करते हैं। इन भारतीयों को अपने देश की सभ्यता और संस्कृति से सुयुक्त रखने और यहां निवास करनेवाली अन्य जातियों में भारतीय विचारधारा को सुप्रवाहित करने के लिये इस देश की आर्य प्रतिनिधि सभा तथा आर्यसमाज नैरोबी सदा से ही पूरा प्रयत्न करती रही है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये समय समय पर भारत के उच्च कोटि के विद्वानों को प्रचारार्थ निमन्त्रित करके यहां बुलाती रही है।

अपने १९५४ के वार्षिकोत्सव पर आर्यसमाज, नैरोबी, ने तार द्वारा निमन्त्रित करके वायुयान द्वारा परम पूज्य आचार्य **श्री स्वामी विद्यानन्द जी विदेह**, अध्यक्ष, वेदसंस्थान, अजमेर को प्रथम बार यहां बुलाया था। आचार्यश्री १९ जुलाई १९५४ को नैरोबी पधारे और उसी तारीख से आर्य कन्या विद्यालय के विशाल प्राङ्गण में भारतीय संस्कृति से ओत प्रोत उनके वेदोपदेश प्रारम्भ हुये।

वार्षिकोत्सव के दो सप्ताह के उस आयोजन में उपस्थिति दिन प्रति दिन बाढ़ की तरह उमड़ती रही, जिसमें आर्य, हिन्दु, सिख, जैन, मुस्लिम, ईसाई, पारसी, सब ही समान श्रद्धा और प्रेम से मिलकर उपदेशामृत का पान करते हुये उत्सव की शोभा को बढ़ाते रहे।

नैरोबी में आचार्यश्री के प्रवचनों की सफलता से प्रभावित और आश्वस्त होकर सम्पूर्ण ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका [केनिया, युगांडा, टांगानीका, जंजीबार] के मुख्य मुख्य नगरों में उनके प्रचार का पुरोगम बनाया गया। अगस्त के आरम्भ से दिसम्बर १९५४ के अन्त तक आचार्यश्री ने समस्त ब्रि०ई० अफ्रीका में भ्रमण व प्रचार करके भारतीयों में अतिशय शुद्ध और सात्त्विक भावनाओं का संचार किया। इस भ्रमण में यत्र तत्र कुछ अफ्रीकन व यूरोपियन भी आचार्य जी के सम्पर्क में आये और वे आचार्यश्री के भारतीय उदार विचारों से अतीव प्रभावित हुये।

श्री आचार्य जी ३१ दिसम्बर को वायुयान द्वारा भारत वापिस चले गये हैं और ब्रि०ई० अफ्रीका भर में सभी वर्गों के असंख्य जनों के हृदयों में अपने लिये अगाध श्रद्धा और स्नेह स्थापन कर गये हैं। ब्रि० ई० अफ्रीका की प्रभावित जनता की प्रेरणा के परिणामस्वरूप ही यह पत्र आपकी सेवा में प्रेषित है।

आचार्य जी की सर्वप्रिय मानवीय उदार प्रचार-शैली का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इस देश के नगर नगर में उनके उपदेश न केवल आर्यसमाजों में अपितु स्वयं सनातन-धर्मियों के आग्रह पर सनातन-मन्दिरों तथा सिखों के आग्रह पर गुरुद्वारों में भी कराये गये और सर्वत्र उपस्थिति अभूतपूर्व होती रही। गुरुद्वारों में उन्हें सरोपे भी भेंट किये गये।

इस देश के अनेक स्कूलों में हिन्दी या हिन्दुस्तानी न समझनेवाले विद्यार्थियों की सुविधा का ध्यान रखते हुये आचार्य जी ने अंग्रेजी में उपदेश किये, जिनसे अध्यापक तथा विद्यार्थी वर्ग ने बहुत लाभ उठाया। समस्त शिक्षण-संस्थाओं के प्रिंसिपलों ने आचार्यजी को सर्वत्र श्रद्धाञ्जलियां अर्पित कीं और उनके उपदेशों को अध्यापकों व विद्यार्थियों के लिये आदर्श व समान रूप से लाभकारी बताया।

श्री आचार्य जी के उपदेशों की शैली इतनी सुन्दर, उनकी भाषा इतनी सरल, उनकी वाणी इतनी मधुर, उनका हृदय इतना निर्मल और उनकी युक्तियां इतनी हृदयग्राही होती हैं कि किसी भी धर्म, सम्प्रदाय, देश या जाति का व्यक्ति उनसे प्रभावित व आकर्षित हुये बिना नहीं रह सकता। उनकी अपनी विशेषताओं में से एक बड़ी विशेषता यह है कि वे कभी किसी के व्यक्तित्त्व अथवा मत की आलोचना न करके शुद्ध सार्वभौम मानव धर्म का ही प्रचार करते हैं।

गत ६ मास के अपने ब्रि० ई० अफ्रीका के निवास में आचार्य जी ने समय समय पर नैरोबी रेडियो स्टेशन से पांच भाषण प्रसारित किये, जिन्हें सभी वर्ग के लोगों ने हृदय से पसन्द किया। अपने अन्तिम विदाई रेडियो भाषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आचार्य जी ने ब्रि० ई० अफ्रीका में निवास करनेवाले यूरोपियनों, एशियनों तथा अफ्रीकनों को जो सन्देश दिया है, उसमें इस देश के नागरिकों में पारस्परिकता की वृद्धि तथा इस देश की समृद्धि के लिये सुन्दर प्रेरणायें संनिहित हैं।

आचार्य जी की दृष्टि, भावना और वाणी से इस देश के निवासियों को जो लाभ पहुंचा है, उसका शब्दों में यथावत् चित्रण कर सकना नितान्त असम्भव है। उनकी निष्कामता, उनका शीतल शान्त स्वभाव, उनकी निर्लोभता, निस्पृहता तथा विनम्रता और सर्वोपरि उनके व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता—ये कुछ ऐसे गुण हैं, जिनके कारण वे संसार के किसी भी देश में अपने लिये सम्मान प्राप्त करते हुये भारत और भारतीयता के लिये प्रतिष्ठा सम्पादन कर सकते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय पारस्परिकता बढ़ाने की दृष्टि से आपकी सरकार देशदेशान्तरों में भारतीय सांस्कृतिक मिशन भेजा करती है। इसीलिये इस देश की आर्य प्रतिनिधि सभा ने यह उचित समझा है कि इस देश में आचार्य जी की यात्रा की सफलता का परिचय आपको भेजा जाये। अन्त में समुचित समादर के साथ मैं आपकी सेवा में यह सुझाव प्रस्तुत करता हूं कि देशदेशान्तरों में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाने तथा विश्व में मानवता की भावना की स्थापना के लिये आपकी सरकार आचार्य जी की सेवाओं से समुचित लाभ उठाये।

आपका कृपाभिलाषी,
गुरुदासराम भण्डारी,
मन्त्री, आ० प्र० सभा, पूर्वी अफ्रीका

अपने परिवार से

सविता के इस अंक के साथ वेदसंस्थान और सविता अपनी आयु के ग्यारह वर्ष पूरे कररहे हैं। समय कितनी तीव्र गति से गमन करता है। पलक झपकते सविता व संस्थान की आयु के इतने वर्ष समाप्त होगये। अनन्त काल-चक्र की गति में ग्यारह वर्ष होते ही क्या हैं, किन्तु मानव-आयु में इतना समय पर्याप्त लम्बा है।

सविता तो संस्थान का एक अंशमात्र है और स्वयं संस्थान आज भी कोई साधन-सम्पन्न संस्था नहीं है। फिर भी मुझे सन्तोष है कि साधन-हीनता में भी संस्थान ने अपनी साधत्रय की साधना में पग आगे ही आगे बढ़ाया है।

यह ठीक है कि प्रगति मन्द रही है, इतनी मन्द, इतनी धीमी, कि उसके लिये संसार मेरी जितनी अधिक निन्दा करे, उतनी ही थोड़ी है। पर इसके लिये अकेला मैं ही नहीं, आप भी उत्तरदायी हैं।

अपनी सफ़ाई में मैं बिना किसी झिझक के यह कह सकता हूं कि मैं बिल्कुल बेक़सूर हूं, सर्वथा निरपराध हूं, नितान्त निर्दोष हूं। और यदि मैं अपराधी हूं ही, तो आप मुझसे भी कहीं अधिक अपराधी हैं।

जाननेवाले जानते हैं और देखनेवाले देख रहे हैं कि मेरे तप और श्रम में कोई कमी नहीं है। गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम—तीनों ही आश्रम मेरे लिये कठोर और उत्कट वेदसाधना के साधन रहे हैं। मुझे अब भी पता नहीं कि दिन कब निकलता है और रात कब होती है—

मुझको पता नहीं है कि दिन है कि रात है।
थकता हूं तब ही रात है ताज़ा हुआ कि दिन ॥

मैं स्वयं कार्य करने में कोई कोर कसर उठा नहीं रखता हूं। मेरा क़सूर है तो केवल इतना कि मैं भिक्षापात्र लेकर घर-घर नहीं घूमा हूं और जन-जन के सहयोग के लिये व्यक्तिशः याचना नहीं कर पाया हूं। ऐसा न कर सकने का कारण मेरा अपना अहंकार नहीं है। इसका कारण केवल मेरा संकोच और तद्विषयक मेरा अपना अनभ्यास है।

वेद की विश्व-व्याप्ति, संस्कृत का प्रसार और वैदिक संस्कृति की विश्व में प्रस्थापना—संस्थान के ये तीन उद्देश्य हैं। क्या इन उद्देश्यों की पूर्ति आपको अभिप्रेत नहीं है? है, अवश्य है। यह कार्य मेरा कार्य नहीं है, आपका अपना कार्य है, आपका अपना धर्म है, आपका अपना परम धर्म है। तो फिर आपकी ओर से अपने ही इस परम पुनीत कार्य में इतनी उपेक्षा क्यों?

जब यह कार्य आपका अपना ही कार्य है, आपका अपना ही परम धर्म है, तो फिर आप क्यों ऐसी नौबत लाना चाहते हैं कि उसके लिये भिक्षापात्र लेकर मैं घर-घर घूमूं और व्यक्ति-व्यक्ति के सहयोग के लिये याचना करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिरूं ? मेरे लिये यह लज्जास्पद हो या न हो, आपके लिये वह स्थिति अवश्य लज्जास्पद होगी ।

सर्वत्र माई भाई मुझसे कहा करते हैं, "कोई योग्य सेवा बताइये"। मेरी योग्यतम सेवा यही होगी कि वेद-संस्थान की सफल साधना में मेरा हाथ बटाइये और वेद-संस्थान का परिवार बढ़ाइये ।

सविता जैसे सुप्रकाशक और संजीवन-संचारक पत्र पर ७५ रुपये मासिक घाटा वहन करना पड़ रहा है। यदि उसके एक हजार नवीन ग्राहक बन जायें तो वह आर्थिक दृष्टि से सर्वथा आत्म-निर्भर होजाये ।

मैं सविता के ग्राहकों से निवेदन करूंगा कि वे आगामी [फ़रवरी] अंक से सविता के अधिक से अधिक ग्राहक बनादें और एतदर्थ सदा सचेष्ट और प्रयत्नशील रहें।

सविता अनेक आश्रमों तथा सम्मानित व्यक्तियों की सेवा में निःशुल्क भेजा जारहा है। यदि वे अपने श्रद्धालुओं तथा अनुयायियों को संकेत व प्रेरणा करें तो सविता के ग्राहकों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो सकती है। इस पुनीत कार्य में इस प्रकार का सहयोग सर्वथा वाञ्छनीय है।

व्यावसायिक दृष्टि से वेदसंस्थान का पोषक होता सदस्य बनना पर्याप्त लाभप्रद है। पोषक होता सदस्य को केवल दश रुपये वार्षिक देना होता है। ऐसे सदस्यों को उनके सदस्यता काल में वेदसंस्थान से प्रकाशित होनेवाले **प्रत्येक** प्रकाशन की एक प्रति निःशुल्क भेंट की जाती है और उन्हें सविता भी प्रति मास निःशुल्क भेजा जाता है।

सविता-ग्राहक तथा पोषक होता सदस्य किसी भी मास से बना जा सकता है।

कमर कसकर खड़े होजाइये, तत्परता के साथ मुझे अपना श्रद्धापूर्ण सहयोग प्रदान कीजिये और इस दिव्य साध को सद्यः संसिद्ध कराइये। संसार वैदिक शिक्षाओं के लिये बहुत लालायित है। मेरी और आपकी ओर से शिथिलता का होना महा पाप होगा।

वह देखो ! समय भागा चला जारहा है, आयु बीती जारही है। बहुत शीघ्र वह कीजिये, जो करना चाहिये। कर्म करणीय है। साध दिव्य है। तन, मन, धन से इसकी संसिद्धि के लिये सन्नद्ध हूजिये।

"जागो, उठो और अविराम गति से साधना के सुपथ पर सतर्कता और तत्परता के साथ सुप्रयाण करो"।

मानवता से प्यार यदि है,
तो तुम मेरा हाथ बटाओ।
यदि नहीं है तो घर जाओ;
खाओ पीओ मौज उड़ाओ ॥

—विदेह

गीत

॥ मैं अपने पिय के मन भानी ॥
लोग कहत मैं भई बावरी;
पिय कहत मैं स्यानी ॥
मेरे पिया सब जग के राजा;
मैं सब जग की रानी ॥
मेरे पिया मेरे महल विराजें;
निरख निरख थिरकानी ॥
कहत 'विदेह' सुनो भाई साधो,
जिन चीता तिन जानी !!

प्रकाशन-प्राप्ति

वेदव्याख्याग्रन्थों के पुष्प तथा वेद-संस्थान के अन्य सब प्रकाशन निम्न स्थानों पर मिलते हैं—

[१] श्री वंशीलाल जी आर्य,
दयानन्द वाटिका, राम बाग़
सब्जी मण्डी, रेलवे स्टेशन के पास, **दिल्ली—६**

[२] श्री सुरेन्द्रनाथ जी तिवारी,
१४, तुलाराम बाग़,
इलाहाबाद—६

[३] श्री मास्टर बृजमोहन जी शर्मा, बी. ए.,
सीमेण्ट वर्क्स स्कूल,
पो० लाखेरी सीमेण्ट वर्क्स (बूंदी-राजस्थान)

[४] देव-प्रकाशन, **अजमेर**

[५] प्रार्थना सभा, **बटाला** [पंजाब]

[६] श्री धर्मप्रकाश जी,
6/71, **W.E.A.**, अजमलखां रोड,
क़रोल बाग़, **नई दिल्ली–५**

[७] श्री विश्वनाथ जी,
डबल स्टोरी गवर्नमेंट क्वार्टर,
नं० B. 11/179, देवनगर,
क़रोल बाग़, **नई दिल्ली–५**

[८] श्री जगदीशप्रसाद जी आर्य,
३४-ए, नूनियां मोहल्ला, सदर, मेरठ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

LOVE ALL

[*A.D.S. Scott*]

When we say that we love God, or that we adore Him, do we do so in the deepest and the truest sense?

How comparatively simple it is to love the beautiful and the perfect manifestations of His love — to worship and praise Him with our whole beings as we stand perhaps in a garden during sunrise, watch the play of the young and tender in years or feel the warmth of a family reunion. If we are normal such things will naturally move our hearts; if we are striving towards the Divine Light these are among the dearest and most refreshing moments of our journey.

But do we love ALL His manifestations and do our hearts well up with adoration, in the middle of a poverty stricken village or a dirty and dismal city. Can we look around us at disease, starvation, sin, lust and crime and still think, deep inside us, 'O Lord! All men do I love, for You are in them all'. How many of us can walk into our office or workroom, having worked there for possibly several years and greet associates with love? and do this when some may bore us or others may dislike or despise us.

Of course trying to do all this alone and without reference to God is well-nigh impossible. In fact as some people would probably say, "it's against Human nature". But if we give ourselves to Him, if our lives are dedicated to His service and if our one aim is absorption into and unto His Radiance — ever and ever stronger will grow our love for ALL men at ALL times.

How many of us really comprehend the all-embracing quality of true love? How many self-styled religious people of my acquaintance have a measure of love for other members of their own faith but have little or none for people of different creeds and beliefs. Loving ALL men does not simply constitute saying that we accept the dictum that all men are God's children — it is too easy to limit ourselves to vague expressions of universal love. We must love, or with God's grace we will love, that difficult relation who may have to live with us or else that simple-minded "idiot", who may live near us and who in the past we have tried to avoid. We will love that superior at work, who may often criticise us, perhaps unnecessarily at times and we will also love that person, who has always bored us to tears. We will love the maimed in mind and body.

And in loving all God's children we must also express sincerity in deeds. All around us each and every day are people in desperate need of our help and of our prayers and intercession before God. The power of true and humble prayer is tremendous and almost beyond description, but we can also in a multitude of obvious ways do practical good for others and by doing so bring a measure of light and joy in their unhappy lives. If only each one of us could make just a little extra effort what a vast difference it would make in so many people's lives.

Yes, let us express our overflowing love of God, our intense adoration and longing, not only in worship by word and by music, but also in worship by practical help to others and intense and unselfish prayer.

हर्ष-सूचना

वेदव्याख्याग्रन्थ का तृतीय पुष्प १५ जनवरी तक बिल्कुल तैयार हो जायेगा। मूल्य दो रुपये। अपना आर्डर शीघ्र भेजिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(10)

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत ।
दधाना इन्द्र इद्दुवः ॥ (Rig: 1.4.5)

To serve Thee, to obey Thee, to tread on Thy Path is no easy job. To walk barefooted on the sharp edge of a sword is not so difficult as to tread on Thy path.

To track Thy path is to sacrifice one's self, to annihilate one's own person. But where else is that happiness, which is in this destruction. Those who sacrifice themselves on Thy path become immortal. Those who get imbued with Thy bliss are the drinkers of real nectar.

Thy path is difficult and untrackable but in the end it is supremly blissful. To be Thy wayfarer is verily to acquire life's real success. It is to achieve significant reality.

Therefore, today we take a solemn vow to tread on Thy path and to serve Thee.

Walking under fire and covering ourselves under a dead man's shroud, we set our feet on Thy path today.

We shall not be led astray by the difficulties of the way. We shall come out pure as gold from the furnaces of hardships.

Renouncing worldly pleasures and luxuries we offer ourselves unto Thee today.

We may be deprived of our hearth and home, be separated from our near and dear ones, and be subjected to the anger of the world, yet shall we not turn back. We shall suffer extremely fearful tortures, shall swing on gibbets, hang ourselves on gallows, yet shall we not be averse to Thee. We shall be exiled from our country and tantalised for grains of corn and drops of water, we shall be drenched in blood and made to drink poison, we shall be made to put on crowns of thorns, yet shall we not be led astray from Thy path. We shall be defamed and abused, yet we shall persist marching on Thy path.

In the end Thy golden hand will adorn our heads with the crown of triumph.

उत Even though निदः नः ब्रुवन्तु defamers say to us, "अन्यतः निः आरत get away elsewhere", चित् yet इन्द्रे इत् दुवः दधानाः shall we continue to serve the Lord.

[Translated by Shri B. B. Hajela]

Fearlessness and Steadfastness

मा भेर्मा संविक्थाः (yaj: 1/23)

मा भेः Do not fear, मा संविक्थाः do not get perplexed.

Dear tiny ones,

Fear and perplexity are fast friends. They always keep together. One filled with fright is but dead. And one perplexed is but defeated. Fearless is deathless and bold is gold. These maxims are but too true. The children, who being frightened of a barking dog, flee away, the later runs after them and bites them in the legs. Those, who do not get frightened and remain firm, drive him away with a piece of clod or a stick. Those, who fear their teacher, remain always terrified. They can neither learn their lessons nor understand them. Those, who do not fear and remain cheerful, understand their lessons by repeated questioning and easily learn them.

Most children are much afraid of ghosts and evil spirits, while they do not exist in the world.

Many boys fear darkness very much and get frightened at the least sound. This is not a good thing. Fear-stricken boys and girls grow into cowards. Those, who are bold and courageous in childhood, grow up to be brave and valiant. We loose by being frightened and preplexed, while lost things are righted and regained by fearlessness and firmness. Hence, neither get frightened nor do ever get perplexed.

Never fear in any stress,
Remain firm in all distress.

[From Videh's *VEDIC BALA-SHIKSHA*, translated by Shri Kishori Lal Gupta]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्थान - प्रकाशन

विदेह – रचित

वेदव्याख्याग्रन्थ

***प्रथम पुष्प** २.००
इसमें ऋग्वेद के प्रथम सूक्त [विषय ब्रह्माग्नि की अभिस्तुति], यजुर्वेद के प्रथम अध्याय [विषय व्यक्तित्व का सुनिर्माण], सामवेद की पहली दशति [विषय ब्रह्माग्नि का आह्वान], तथा अथर्ववेद के प्रथम सूक्त [विषय वाचस्पति और शिष्य] की हृदयग्राही विशद व्याख्या है।

***द्वितीय पुष्प** १.५०
इसमें यजुर्वेद के द्वितीय अध्याय की व्याख्या है, जिसका विषय है **"गृहस्थाश्रम की सुव्यवस्था"**

योग-ग्रन्थमाला

गायत्री [द्वितीय संस्करण] ... १.५०
५२ गायत्री-छन्द मन्त्रों पर दिव्य प्रार्थनायें।

गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान ... ०.२५
गायत्री मन्त्र के अनुष्ठान की शुद्ध पद्धति।

महामृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान ... ०.२५
महामृत्युञ्जय मन्त्र के अनुष्ठान की शुद्ध पद्धति

वैदिक योग-पद्धति [द्वितीय संस्करण] ०.३७
वेदमन्त्रों के आधार पर योगाभ्यास की सरल शिक्षायें।

सन्ध्या-योग [द्वितीय संस्करण] ... ०.२५
सन्ध्योपासना पर योग के आठों अंगों से समन्वित मौलिक और वास्तविक व्याख्या।

सत्यनारायण की कथा [द्वितीय संस्करण] ०.३७
सत्यनारायण की सच्ची वैदिक कथा।

दिव्य-भावना ०.०६
सुन्दर और संक्षिप्त आत्मशंसन

साधना १.००
योगविज्ञान का अद्वितीय और अनुपम शिक्षक

गीत-ग्रन्थमाला

सत्संग गीतावली ... ०.३७

वैदिक बालशिक्षा

***प्रथम भाग** [तृतीय संस्करण] ... ०.३७

***द्वितीय भाग** [द्वितीय संस्करण] ... ०.३७
यदि आप अपने प्राणप्रिय बच्चों को सोम्य, सुशील, सदाचारी, धर्मात्मा और मर्यादापालक बनाना चाहते हैं, तो वैदिक बालशिक्षा के इन दोनों ग्रन्थरत्नों को उनके हाथ में दीजिये।

संस्कृत-शिक्षा

प्रथम भाग [द्वितीय संस्करण] ... ०.१९
वेद, संस्कृत व हिन्दी के शुद्धोच्चारण के निश्चित नियम

द्वितीय भाग [द्वितीय संस्करण] ... ०.३७
वेद, संस्कृत व हिन्दी के सन्धि-नियमों का अध्ययन

वैदिक राजनीति-ग्रन्थमाला

सार्वभौम आर्यसाम्राज्य ... ०.५०
वेदमन्त्रों के आधार पर सार्वभौम वैदिक साम्राज्य की रूपरेखा

कर्मकाण्ड-ग्रन्थमाला

स्वस्ति-याग ०.७५
चारों वेदों के स्वस्ति, शं, शान्ति और ईश-नमस्कार के मन्त्रों से समन्वित आदर्श यज्ञपद्धति

यज्ञोपवीत-रहस्य [चतुर्थ संस्करण] ०.०६
यज्ञोपवीत के रहस्यों का सुन्दर विवेचन

इतिहास-ग्रन्थमाला

राम-चरित १.५०
अलौकिक इतिहास का लौकिक स्वरूप

सविता की जिल्दें—
वर्ष ४,५,६,८,९,१० प्रति जिल्द ३.२५

डाक-व्यय पृथक्। **वेदसंस्थान, अजमेर**

*पंजाब शासन द्वारा राज्य की शिक्षण-संस्थाओं के लिये स्वीकृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वर्ष १२ : अंक ७ अगस्त १९५९ : श्रावण २०१६

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सविता

[वेद-संस्थान का मासिक पत्र]

पंजाब सरकार द्वारा पंजाब के स्कूलों व कॉलेजों के लिये स्वीकृत

सम्पादक :
विश्वदेव शर्मा

ऋषियों से वेदाध्ययन

य: पावमानीरध्येत्यृषिभि: संभृतं रसम् ।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥

(ऋ० ९-६७-३१)

य: पावमानी: अधि-एति ऋषिभि: सं-भृतं रसम् । सर्वं स: पूतं अश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥

(य:) जो (पावमानी:) पावमानियों को, पवित्रकर्त्री वेद की ऋचाओं को (ऋषिभि: अधि-एति) ऋषियों से अध्ययन करता है, (स:) वह (मातरिश्वना) परम-पिता द्वारा (सं-भृतं) सुसम्पादित (सर्वं पूतं स्वदितं रसं) सब पवित्र स्वादु रस को (अश्नाति) सेवन करता है ।

जो करता अध्ययन ऋचाओं का ऋषियों से,
परम-पिता द्वारा सम्पादित,
सकल पूत स्वादिष्ठ सुरस का,
वह सेवन करता है ॥

—विदेह

मूल्य :
देश में— वार्षिक ३) रु०
एक प्रति २५ नये पैसे
विदेश में—वार्षिक ६ शि०
एक प्रति ६ पेंस

पत्र-व्यवहार का पता :
व्यवस्थापक, वेद-संस्थान, अजमेर

वेद-संस्थान के लिये पं० विश्वदेव शर्मा द्वारा, आदित्य मुद्रणालय, बाबू मोहल्ला, अजमेर में मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सविता

लेख-क्रम

ऋषियों से वेदाध्ययन	विदेह	९७
याचक का सखा	"	९८
प्रेम	"	९९
अशान्ति और शान्ति	"	१००
चतुर्वेद	"	१०२
गीता-योग [५२]	"	१०२
स्वास्थ्य और सौन्दर्य [७]	"	१०३
विदेह-गाथा [७]	"	१०४
रोज की मधुर स्मृतियां [३]	"	१०५
नारी श्रद्धामयी	"	१०६
सन्त अनाम और उनके शिष्य	"	१०६
प्रश्नोत्तर	"	१०७
विदेहोद्गार	"	१०७
स्वभाव	"	१०७
दिल्ली-शाखा के सदस्यों से	"	१०७
प्रकाशन-प्राप्ति	व्यवस्थापक	१०८
Some Thoughts on Gita	Scott	109
Prayer [16]	Hajela	110
Standing First	K. L. Gupta	110
एक पत्र	कृष्णानन्द	१११
सम्मतियां	विविध	१११
संस्थान-साहित्य	व्यवस्थापक	११२

मन्त्रानुक्रम

आ ते रथस्य (ऋ० १०-२६-८)	९८
इन्द्र वाजेषु (ऋ० १-७-४)	११०
इमानी यानि (अ० १९-९-५)	१००
ऋचे त्वा (य० १३/३९)	१०२
यः पावमानी० (ऋ० ९-६७-३१)	९७
रुचं नो धेहि (य० १८/४८)	९९

अनुमति

सविता में प्रकाशित कोई भी लेख पूर्व अनुमति के बिना छापा जा सकता है, किन्तु **सविता** और **लेखक** के नाम का उल्लेख अवश्य किया जाये और साथ ही जिस **प्रकाशन** में **सविता** से लेख छापा जाये, उस **प्रकाशन** की एक प्रति **वेदसंस्थान, अजमेर** को भेजी जाये।

याचक का सखा

आ ते रथस्य पूषन्नजा धुरं ववृत्युः ।
विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ॥

(ऋ० १०-२६-८)

आ ते रथस्य पूषन् अजाः धुरं ववृत्युः ।
विश्वस्य अर्थिनः सखा सनःजाः अन्-अप-च्युतः ॥

पूषन् ! सचमुच तू पूषा है, पोषक है, सुपोषक है, सर्वपोषक है, विश्वपोषक है। और अपने याचकों का तो तू परम पोषक है। तेरे याचक समग्र पुष्टियों से पुष्ट और अखिल शक्तियों से शक्त होजाते हैं। तू अपने प्रत्येक याचक की प्रत्येक सुयाचना को स्वीकार करके उसके अभिलाषाञ्चल [दामने मुराद] को निस्सन्देह यथावसर यथावत् भरता है। तेरे याचकों के भिक्षा-पात्र कभी कदापि रिक्त नहीं रहते हैं।

तू वह दाता नहीं है कि तू अपने याचकों को अपना भिखारी समझे वर्ते। तू वह दाता है कि तू अपने याचकों को अपना सखा समझकर ही उन्हें सब कुछ देता है। अपने याचकों का तू वह सनातन सखा है कि तू उनके प्रति सदा ही प्रकट है। अपने याचकों का तू वह निश्चल सखा है कि तू अपने याचकों से कभी मुंह नहीं मोड़ता है, तू उनका कभी भी परित्याग नहीं करता है।

तेरे याचक भी कोई साधारण वस्तु नहीं होते हैं। तेरे याचकों की अस्ति [हस्ती] कोई सामान्य अस्ति नहीं होती है। यह माना कि तेरे याचक बड़े शालीन और अतिशय विनम्र होते हैं। पर वे तेरी शक्तियों से इतने समर्थ और तेरी पुष्टियों से इतने सम्पुष्ट होते हैं कि वे तेरे रथ के धुरे को, तेरे विश्वरथ की धुरी को घुमाया करते हैं। तेरे याचक तेरे विश्वरथ के सारथि, सुसारथि होते हैं।

पूषन् ! तू (विश्वस्य अर्थिनः) विश्व के याचक का, विश्व के याचकसमूह का (सनःजाः) सदा-प्रकट (अन्-अप-च्युतः) निश्चल (सखा) सखा है। तेरे (अजाः) विनम्र याचक (ते रथस्य) तेरे रथ के (धुरं) धुरे को (आ ववृत्युः) घुमाया करते हैं।

पूषन् है तू सखा सनोजा और अनपच्युत,
सकल विश्व के सकल याचकों का निश्चय ही।
हां, तेरे विनम्र याचक तो सदा अनवरत,
तेरे रथ की धुरी घुमाया करते सन्तत ॥

—विदेह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

[वेद-संस्थान अजमेर का मासिक पत्र]

वर्ष १२	अजमेर, अगस्त १९५९, (नभः) श्रावण २०१६	अङ्क ७ पूर्णाङ्क १३९

प्रेम

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ (य० १८/४८)

(रुचा) प्रेम द्वारा (नः ब्राह्मणेषु) हमारे ब्राह्मणों में (रुचं धेहि) प्रेम स्थापन कर, (नः राजसु रुचं कृधि) हमारे क्षत्रियों में प्रेम सम्पादन कर, (विश्येषु शूद्रेषु रुचं) वैश्यों और शूद्रों में प्रेम तथा (मयि) मुझमें (रुचं) प्रेम (धेहि) स्थापन कर।

प्रेम से सेवा और सेवा से सुख—यह शाश्वत नियम है। जो जिससे प्रेम करता है, वह उसकी सेवा करता है और सेवा से सुख प्राप्त होता है। चारों वर्णों के सब व्यक्ति परस्पर प्रेम करते हुये जब एक दूसरे की सेवा करते हैं, तब ही समूचा राष्ट्र और संसार सुखी होता है। राष्ट्र और संसार का प्रत्येक व्यक्ति प्रभु से प्रार्थना और कामना करे कि मैं सबसे प्रेम करूं।

प्रेम स्थापन कर हमारे ब्राह्मणों में,
प्रेम स्थापन कर हमारे क्षत्रियों में,
प्रेम स्थापन कर हमारे वैश्यों में,
प्रेम स्थापन कर हमारे श्रमिकों में,
मुझमें करदे प्रेम स्थापन सबके लिये ॥

—विदेह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशान्ति और शान्ति

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि ।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ।। (अ० १९-९-५)

इमानि यानि पञ्च इन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि ।
यैः एव ससृजे घोरं तैः एव शान्तिः अस्तु नः ।।

अशान्ति से सब मुक्त और शान्ति से सब युक्त रहना चाहते हैं। प्रत्येक मनुष्य अशान्त है और शान्ति की खोज में है। अशान्ति और शान्ति की यह समस्या आज ही नहीं, सदा से उलझी चली आरही है और मानव अतीत के समान वर्तमान में भी उसके समाधान की अधीरता के साथ प्रतीक्षा कर रहा है।

निर्धन सोचता है—मैं निर्धन हूं, इसीसे अशान्त हूं, धनवान् होजाने पर मुझे शान्ति मिलेगी। वह जान लड़ाकर शिरतोड़ प्रयत्न करता है धनवान् होजाने का। धनसंग्रह के प्रयास में उसकी अशान्ति दिन प्रति दिन बढ़ती चली जारही है। पर उसे विश्वास है कि धनवान् होजाने पर उसे शान्ति मिलेगी। अब वह धनवान् होगया है, फिर भी वह देखता है कि उसे शान्ति नहीं मिली है। धनवान् होकर उसकी अशान्ति कहीं अधिक बढ़ गयी है।

वह अकेला था। उसने सोचा—कोई जीवन का साथी बन जाये तो मुझे शान्ति मिलेगी। उसने विवाह किया। दोनों सोचने लगे—गोदी भर जाये, सन्तान का मुख देख लें, तो शान्ति मिलेगी। पर उसने देखा कि सन्तान के रूप में एक से अनेक होकर भी शान्ति न मिली, अशान्ति ही गले पड़ती चली गयी।

विद्यार्थी-अवस्था में सोचता था—पढ़ायी समाप्त होजाये और फिर नौकरी मिल जाये, तो मुझे शान्ति प्राप्त होजाये। अब उसे एक अच्छी खासी नौकरी मिल गयी है, फिर भी उसे शान्ति प्राप्त नहीं हुयी है।

राष्ट्र के नागरिक सोचते थे—स्वराज्य मिल जाये, स्वकीय राज्य की स्थापना होजाये, तो घर घर में शान्ति का राज्य होजाये। स्वराज्य आया और देखा कि स्वराज्य से शान्ति की नहीं; अशान्ति की, वृद्धि हुयी और आज एक एक व्यक्ति अशान्ति से, घोर अशान्ति से, आक्रान्त है।

शान्ति कहां है, यह जानने से पहले यह जान लेना चाहिये कि शान्ति क्या है और यह जानने से पूर्व यह जानना चाहिये कि अशान्ति क्या है।

चिन्ता और उद्विग्नता, फ़िक्र और बेचैनी, के संयोग का नाम अशान्ति है। चिन्ता और उद्विग्नता सदा साथ साथ रहती हैं। चिन्ता मनुष्य को जीते जी जलाती है और उद्विग्नता उसे जलविहीन मीन की तरह छटपटाती है। चिन्ता मस्तिष्क का विषय है और उद्विग्नता हृदय का। चिन्ता मस्तिष्क के सन्तुलन को नष्ट कर देती है और उद्विग्नता हृदय की समता का विनाश कर देती है। चिन्ता से मनुष्य की चिन्तनशक्ति क्षीण होती है तो उद्विग्नता हृदय की भावनाओं को छिन्न भिन्न करके मनुष्य को अभावग्रस्त अथवा भावशून्य कर देती है।

इतना ही नहीं, चिन्ता और उद्विग्नता से निद्रा, आहार, विहार और संयम—ये चारों ही मनुष्य का साथ छोड़ देते हैं। अनिद्रा से पाचनशक्ति नष्ट भ्रष्ट होजाती है। पाचनक्रिया ठीक न होने से आहार क्षीण होजाता है। आहारक्षीणता से स्वभाव विहारविहीन होजाता है। विहारविहीन स्वभाव से असंयम और अजितेन्द्रियता उत्पन्न होती है। असंयम और अजितेन्द्रियता का परिणाम होता है उद्विग्नता।

निश्चिन्तता और प्रसन्नता के संयोग का नाम है शान्ति। जब मस्तिष्क में किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती है, तो मनुष्य का दिल स्वयमेव बाग़ बाग़ रहता है। निश्चिन्तता और प्रसन्नता से गाढ़ निद्रा, यथावत् आहार, समुचित विहार और संयम की सम्प्राप्ति होती है। चिन्ता से हृदय-कमल कुम्हलाता है और निश्चिन्तता से वह खिलता है। चिन्ता और उद्विग्नता का निर्मूलन होजाये तो अनायास ही शान्ति की उपलब्धि अथवा स्थापना होजाये।

चिन्ता और उद्विग्नता की उत्पत्ति होती है इन्द्रियों के अनुशासनहीन अयोग्य व्यवहार से। इन्द्रियों के अनुशासनहीन अयोग्य व्यवहार का कारण है विकृत मस्तिष्क और विकृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय। मस्तिष्क और हृदय के संयोग का नाम ही मन है।

मन्त्र में पञ्च इन्द्रियों से तात्पर्य है नेत्र, श्रोत्र, घ्राण, रसना और त्वचा, इन पञ्च ज्ञानेन्द्रियों से, जिनके विषय हैं क्रमशः दर्शन, श्रवण, गन्ध, रस और स्पर्श। पांच ही कर्मेन्द्रियां हैं—जिह्वा, कर, पग, उपस्थ और गुदा। मन उभय पञ्चेन्द्रियों का प्रेरक है। इसी लिये यह कहा जाता है कि इन्द्रियां मन के पीछे दौड़ती हैं। यह आंशिक सत्य है, पूर्ण सत्य नहीं। पूर्ण सत्य यह है कि जहां इन्द्रियां मन के पीछे दौड़ती हैं, वहां मन भी इन्द्रियों के पीछे दौड़ता है। प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य का मन नहीं चाहता है कि वह शराब पीये, किन्तु समय पर उसे हुड़क उठती है, उसका सारा इन्द्रियग्राम शराब पीने को लालायित होजाता है, इन्द्रियों के सामने निरुपाय होकर मन अनुमोदन करता है और मनुष्य शराब पी लेता है। बहुत सन्तानवाले दम्पती प्रातः ब्रह्मचर्य पालन का संकल्प करते हैं, समय आने पर इन्द्रियग्राम दम्पती को कामक्रीड़ा में निमग्न कर देता है और मन असहाय सा इन्द्रियों का अनुसरण करता है।

सूक्ष्मता और एकाग्रता के साथ निरीक्षण और परीक्षण करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति स्पष्ट रूप से देखेगा कि कि जहां यह सत्य है कि मन ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का प्रेरक है, वहां ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां भी मनको प्रेरणा करती हैं। केवल मन की साधना से ही काम न बनेगा, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को भी सात्विक, शीतल, शान्त, सत्त्वयुक्त, पावन, पुनीत, अनुशासित और सुमर्यादित बनाना होगा। अन्यथा इन्द्रियां सदा मन को छकाती रहेंगी।

हृदय और मस्तिष्क, दिल और दिमाग़, की सुसाधना से मन का सुनिर्माण होता है। निर्विकार पवित्र चिन्तन, शीतल शान्त स्थिर मति और उत्तेजनारहित निर्णय—एक सुसंस्कृत और परिष्कृत मस्तिष्क के ये लक्षण हैं। एवमेव श्रद्धा, विशालाशयता, उदारता, स्नेह और सद्भाव—ये हैं एक उत्कृष्ट हृदय के लक्षण। ऐसे हृदय और ऐसे मस्तिष्क से सुयुक्त मन जहां एक ओर आत्मा को आत्म-अवस्थित बनाता है, वहीं वह दूसरी ओर इन्द्रियों का संयमन, शमन और सुसंचालन करता है। मन के निर्विकार, शुद्ध, शिव और समाहित होजाने पर समस्त इन्द्रियों का सकल व्यापार शुद्ध, शिव और शान्तिप्रद होजाता है। तब मन और इन्द्रियों का पारस्परिक संघर्ष मिट जाता है। मन के सविकार, अशुद्ध, अशिव और चंचल होने पर समस्त इन्द्रियों का सकल व्यापार विकृत, मलिन और अशान्तिप्रद होजाता है।

शान्ति कहां है? मानव का अपना जीवन ही शान्ति और अशान्ति का धाम है। यदि मानव के अपने ही जीवन में उसका अपना मन शान्त है और उसकी अपनी इन्द्रियों का व्यापार निर्विकार है, तो उसमें शान्ति निवास करती है। यदि उसके अपने ही जीवन में उसका अपना मन अशान्त है और उसकी अपनी इन्द्रियों का व्यापार सविकार है, तो उसमें अशान्ति डेरा डाल लेती है। जो अपने आप में शान्त रहता है, उसे सर्वत्र समानरूपेण शान्ति प्राप्त रहती है। जो अपने आप में अशान्त है, वह सर्वत्र समानरूपेण अशान्त रहता है।

थोड़ा और आगे बढ़ जायें तो फिर शान्ति निर्बाध और शाश्वत होजाती है। अपने मन को संसार की असलियत का पूर्ण ज्ञान करा दीजिये और फिर देखिये कि चिन्ता और उद्विग्नता आपके सुपावन जीवन-मन्दिर से सदा के लिये पलायन कर जायेंगी और आप शान्ति के सर्वव्यापी साम्राज्य के अधिपति बन जायेंगे। मन को संसार की वास्तविकता का वास्तविक ज्ञान होजाने पर विवेक का उदय होजाता है। विवेकोदय होने पर हर्ष शोक, आल्हाद विषाद, सुख दुःख, हानि लाभ, जय पराजय, सफलता विफलता, मान अपमान, सुविधा असुविधा, का द्वन्द्व समाप्त होजाता है। और यह द्वन्द्व ही चिन्ता और उद्विग्नता के रूप में अशान्ति का जनक है। द्वन्द्व समाप्त हुआ कि अशान्ति का निर्मूलन हुआ। नष्टे मूले नैव फलं न पत्रम्। मूल के नष्ट होने पर न फल लगते हैं, न पत्ते।

इस मन्त्र में निहित रहस्य पर गहनता के साथ विचार कीजिये—(पञ्च इन्द्रियाणि मनः) पांच इन्द्रियां और मन—(यानि इमानि षष्ठानि) जो ये छः हैं, इन (यैः एव) जिनसे ही (मे हृदि) मेरे हृदय में (घोरं) घोर अशान्ति (ससृजे) उत्पन्न हुआ करती है, (ब्रह्मणा) विवेक द्वारा [इनके] (संशितानि) संशित-परिष्कृत होने पर (तैः एव) उनसे ही (नः शान्तिः अस्तु) हमारे लिये शान्ति हो।

पांच इन्द्रियां और मन ये जो छः हैं,
इन जिनसे मेरे हृदय में होती घोर अशान्ति।
सद्विवेक से ये जब संशित होजाते हैं,
तब उनसे ही हमें शान्ति मिल जाती है॥ —विदेह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्वेद

ऋचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा।
अभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य च ।। (य० १३/३९)

ऋच स्तुतौ। ऋचा नाम स्तुति का है। ऋग्वेद ऋचावेद है, स्तुतिवेद है। इसीसे ऋग्वेद ऋचा है।

रुच प्रीतौ। रुच धातु का अर्थ है प्रीति अथवा रुचि। यजुर्वेद यज्ञवेद है। यज्ञ नाम शुभ श्रेष्ठ कर्म का है। शुभ-कर्मानुष्ठान के लिये रुचि की आवश्यकता है। अभिरुचि के बिना शुभ का सम्पादन नहीं किया जा सकता। इसीसे यजुर्वेद रुच है।

भासृ दीप्तौ। भास् नाम दीप्ति का है। सामवेद उपासनावेद है। उपासना से उपासक में ब्रह्मदीप्ति देदीप्यमान होती है। उपासना से उपासक भासमान होता है। इसीसे सामवेद भास् है।

ज्युङ् गतौ। ज्योति गतिशील है। ज्योति से ही गति प्रगति होती है। ज्योति से ही ज्योति की प्राप्ति होती है। ज्योतिषा बाधते तमः। ज्योति से ही अन्धकार का नाश होता है। अथर्ववेद ज्योतिर्वेद है, विवेकवेद है, विज्ञानवेद है। अथर्व की ज्योति मानव को अथर्व [अ-थर्व, अ-कम्प], स्थिरमति और स्थितप्रज्ञ बनाती है। अथर्व से अथर्व ज्योति, ध्रुव विवेक, की सम्प्राप्ति होती है।

ऋग्वेद! मैंने (त्वा) तुझे (ऋचे) स्तुति के लिये अपनाया है।

ऋग्वेद मेरा व्यसन नहीं है। वह मेरी साधना का साधन है। उसमें मेरे प्रियतम देव की स्तुतियां हैं। मैं थिरक थिरक कर उसके द्वारा अपने आराध्य देव की स्तुतियां गाता हूं। मैं स्तोता हूं। मुझे स्तुतिवेद चाहिये, जिससे मैं उसी की भाषा में उसकी स्तुति कर सकूं।

यजुर्वेद! मैंने (त्वा रुचे) तुझे रुचि के लिये ग्रहण किया है।

यजुर्वेद भी मेरा व्यसन नहीं है। वह मेरी कर्मसाधना का आधार है। मुझे स्तुत्य कर्म करने चाहियें। यजुर्वेद में स्तुत्य कर्मों का विधान है। स्तुत्य कर्म करने के लिये मुझे स्तुत्य कर्मों के आगार यजुर्वेद की अपेक्षा है। इसीसे मैंने कर्मवेद यजुर्वेद का आश्रय लिया है।

सामवेद! मैंने (त्वा भासे) तुझे दीप्ति के लिये स्वीकार किया है।

सामवेद भी मेरा व्यसन नहीं है। वह प्रभु की उपासना का साधन है। उपासना से आत्मदीप्ति प्राप्त होती है। सामोपासना से आत्मआभा आभासित होती है। इसीसे सामवेद भास्वेद है। भास् की प्राप्ति के लिये ही मैंने सामवेद की साधना की है।

अथर्ववेद! मैंने (त्वा ज्योतिषे) तुझे ज्योति के लिये अङ्गीकार किया है।

अथर्ववेद भी मेरा व्यसन नहीं है। वह मेरी ज्योतिर्मय प्रगति का साधन है। अथर्व की निर्भ्रान्त ज्योति में मैं साधना के प्रत्येक पार्श्व में निर्बाधता के साथ दौड़ा चला जा रहा हूं।

चतुर्वेदी साधना से मुझे (विश्वस्य भुवनस्य च वैश्वानरस्य अग्नेः) विश्व भुवन का तथा वैश्वानर अग्नि का (इदं वाजिनं) यह विज्ञानमय विज्ञान (अभूत्) संसिद्ध हुआ है। वेदचतुष्टय की साधना से मुझे विश्व भुवन का ज्ञान और विश्वनायक प्रकाशस्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार हुआ है।

तुझे ऋचा के तुझे रुचि के लिये,
तुझे दीप्ति के तुझे ज्योति के लिये।
विश्व भुवन का और विश्वनायक अग्नि का,
यह विज्ञान सिद्ध संसिद्ध हुआ है मुझको। —विदेह

गीता-योग

—५२—

चौथा अध्याय

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यति ।। ३६

तू (चेत्) यदि (सर्वेभ्यः पापेभ्यः अपि पापकृत्तमः) सब पापियों से भी अधिक पापी (असि) है, (एव) तो (ज्ञान-प्लवेन) ज्ञान नौका द्वारा (सर्वं वृजिनं) सब पाप को (संतरिष्यति) तर जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य की अनुपस्थिति में ही अन्धकार छाता है। सूर्य का उदय हुआ कि अन्धकार पलायन कर जाता है। एवमेव ज्ञानतरणि के अभाव में ही मनुष्य पापसागर में डूबता है। ज्ञानतरणि में स्थित होते ही मनुष्य सब प्रकार के पापों से तर जाता है। जहां सूर्य है, वहां अन्धकार का क्या काम। जहां ज्ञान है, वहां पाप कैसा। इसी आशय से भगवान् कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं—

तू यदि सकल पापियों से भी सर्वाधिक बढ़कर पापी है।
ज्ञानतरणि द्वारा निश्चय ही सकल पाप को तर जायेगा।।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।।३७

अर्जुन! (समिद्धः अग्निः यथा एधांसि भस्मसात् कुरुते) प्रज्वलित अग्नि जिस प्रकार ईंधनों को भस्मसात् कर देता है, (ज्ञानाग्निः तथा सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते) ज्ञानाग्नि वैसे ही सब कर्मों को भस्मसात् कर देता है।

ज्ञान शब्द का प्रयोग गीता में यहां और सर्वत्र तत्त्वज्ञान अथवा विवेक के अर्थ में हुआ है। जिस प्रकार भाड़ में भुने हुये दाने उपजते नहीं हैं, वैसे ही ज्ञानी द्वारा किये हुये कर्म फल नहीं लाते हैं। ज्ञानी जो भी कर्म करता है, उन्हें ज्ञानाग्नि में भूनकर दग्ध कर देता है। ज्ञानाग्नि में दग्ध हुये कर्म कभी उपजते नहीं हैं, फिर फल लगने को तो बात ही क्या? अज्ञानी के कर्म फलासक्ति से युक्त होने के कारण कर्मफल उपजाते हैं। ज्ञानी द्वारा किये गये कर्म फलासक्ति से रहित होने के कारण कर्मफल से सर्वथा मुक्त होते हैं। यही सर्वकर्मों का भस्म [दग्ध] होना है।

अर्जुन जैसे अग्नि प्रज्वलित भस्मसात् करती इन्धन को।
वैसे ही ज्ञानाग्नि भस्म करदेती है सारे कर्मों को।।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत् स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।३८

(ज्ञानेन सदृशं पवित्रं) ज्ञान से सदृश पवित्र (इह) यहां (न हि विद्यते) नहीं ही विद्यमान है। (तत्) उस [ज्ञान] को (योग-संसिद्धः) योग-संसिद्ध योगी (कालेन) काल से, दीर्घकालीन साधना के द्वारा (आत्मनि) आत्मा में (स्वयं) अपने आप, अनायास ही (विन्दति) प्राप्त कर लेता है।

ज्ञान के समान पवित्र इस संसार में सचमुच अन्य कुछ भी नहीं है। ज्ञान इतना पवित्र है कि ज्ञानी द्वारा किये कर्मों में फलासक्ति अथवा फलभोग का मल लेशमात्र भी नहीं लग पाता है। ज्ञान की प्राप्ति दीर्घकालीन साधना से होती है। ज्ञान की प्राप्ति में काल की वैसी ही और उतनी ही अपेक्षा है, जितनी और जैसी किसी भी प्रकार की सम्प्राप्ति में होती है।

नहीं ज्ञानसदृश पवित्र तो यहां वर्तता है कुछ अन्य।
उसे योगसंसिद्ध प्राप्त करता है स्वयं आत्मा में।।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।३९

(श्रद्धावान् तत्परः संयतेन्द्रियः) श्रद्धावान् तत्पर और जितेन्द्रिय योगी ही (ज्ञानं लभते) ज्ञान लाभ करता है। योगी (ज्ञानं लब्ध्वा) ज्ञान लाभ करके (अचिरेण) अविलम्ब, सद्यः (परां शान्ति) परम शान्ति (अधि गच्छति) अधिगत-प्राप्त करता है।

ज्ञान है शान्ति का अधिष्ठान और अज्ञान अशान्ति का। ज्ञानी को अशान्ति कहां और अज्ञानी को अशान्ति कैसी? ज्ञान का उदय होते ही चिर शान्ति की स्थापना होजाती है। और यह तो प्रत्यक्ष ही है कि श्रद्धावान्, तत्पर और संयमी योगी ही योगसंसिद्ध होकर ज्ञानप्रसाद पाता है।

श्रद्धावान् समुद्यत संयत योगी ही पाता है ज्ञान।
ज्ञान प्राप्त करके वह सद्यः परम शान्ति करता है लाभ।।

—विदेह

स्वास्थ्य और सौन्दर्य

[७]—आहार-सम्बन्धी विशेष नियम

मिताहार आहार का स्वर्ण-सिद्धान्त है। न बहुत कम खाना चाहिये, न बहुत अधिक। भोजन उतना ही करना चाहिये कि खा चुकने के बाद उदर भारी, भरा या तना हुआ प्रतीत न हो। यदि आपने मित मात्रा में आहार किया है तो खाना खाने के बाद आपको उठने बैठने, चलने फिरने और काम काज करने में तनिक भी आलस्य प्रतीत न होगा। यद्यपि भोजन करने के पश्चात् विश्राम अथवा अल्पनिद्रा लाभप्रद है, तथापि मिताहारी भोजनोपरान्त न भी लेटे तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे आलस्य अथवा भारीपन न सतायेगा।

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी परिस्थिति के अनुसार अपने खान पान का निश्चित समय निर्धारित करना चाहिये और यथासम्भव प्रातराश [कलेवा] तथा भोजन निश्चित समय पर ही करना चाहिये।

भोजनविज्ञानवेत्ताओं का यह निश्चित मत है कि अभक्ष्य [मांसादि] और अपेय [मदिरा, धूम्रपान, आदि] के सेवन से रक्त और त्वचा संम्बन्धी अनेक रोग और विकार तो उत्पन्न होते ही हैं, मनुष्य के शील और स्वभाव पर भी उनका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः इस प्रकार के खान पान से सदा सर्वदा बचना चहिये।

पाचक और पाचिका की प्रकृति का भोजन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। मैले कुचैले और नास्तिक अधार्मिक व्यक्ति के हाथ से बनाया भोजन न ही किया जाये तो अच्छा। पाचक या पाचिका के लिये यह अनिवार्य हो कि अपने शरीर और वस्त्रों से तो नितान्त स्वच्छ रहे ही, अपने विचार और भावनाओं से भी अत्यन्त निर्मल रहे।

पाचक या पाचिका नित्य प्रातः शौच स्नान आदि से निवृत्त होकर धुले हुये साफ़ सुथरे वस्त्र बदले। तदुपरान्त कुछ देर ब्रह्म का ध्यान और आत्मचिन्तन करे। यदि वह अग्निहोत्र भी करता हो तो अत्युत्तम। भोजन बनाते समय ओं का स्मरण रखते हुये मन को शीतल और शान्त रखना उचित है।

भोजन बनाने का कार्य सेवकों से न कराकर साधनाशील गृहणियों को स्वयं करना चाहिये। भोजन बनाने का कार्य उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना महत्वपूर्ण है भोजन करना। वातावरण में जितनी अधिक पवित्रता होती है, भोजन और भजन उतनी ही उत्तम कोटि के बनते हैं। रोगी, अस्वस्थ और कुशील व्यक्ति के हाथ का बना भोजन स्वास्थ्य और सौन्दर्य के इच्छुकों को कदापि न करना चाहिये।

भोजन करते समय वातावरण में जितनी अधिक पवित्रता, स्थिरता, सात्विकता, प्रसन्नता, शान्ति और आध्यात्मिकता का संस्पर्श होगा, किया हुआ भोजन सर्वतः उतनी ही मात्रा में अमृतमय सिद्ध होगा।

जहां तक बने, सूर्योदय से पूर्व और सूर्यास्त के पश्चात् भोजन न कीजिये।

नीरोगतासम्पादक और बलवर्धक पदार्थ ही स्वास्थ्य और सौन्दर्य का सम्पादन करते हैं। अतः इन दो गुणों से युक्त वस्तुओं का ही सदा सेवन करना चाहिये। भोजन करने से पूर्व मित्र की दृष्टि से भोजन का अवलोकन कीजिये। रुचि के साथ खाद्य पदार्थों का सेवन कीजिये और ऐसा करते हुये चिन्तन कीजिये कि सेवित पदार्थ आपके शरीर में स्वास्थ्यप्रद और सौन्दर्यप्रेरक रसों और धातुओं का संसृजन कर रहे हैं।

भोजन करने से पूर्व ओष्ठ नेत्र बन्द करके एक मिनट मन ही मन देव सविता के वरेण्य भर्ग का, प्रभु के दिव्य सौन्दर्य अथवा दिव्य प्रकाश का, चिन्तन कीजिये और अन्त में धन्यवाद-स्वरूप अन्तर्यामी भगवान् को आत्मना नमस्कार कीजिये।

—विदेह

विदेह-गाथा

[७]—खुर्जा के संस्मरण

श्री किशोरीलाल जी गुप्त हमारे स्कूल के एक आदर्श अध्यापक थे। आदर्श आचार्य के सम्पूर्ण गुण उनमें विद्यमान थे। वेश भूषा अत्यन्त सरल। सब प्रकार के व्यसनों और विकारों से सर्वथा मुक्त। परम आस्तिक और पुनीत पावन धार्मिक जीवन। विद्यार्थियों के परम हितैषी। अनुशासन और मर्यादा के पूर्णतया पालन करनेवाले। बड़े ही नियमित और समय का कठोरता के साथ पालन करनेवाले। स्यात् ही कभी ऐसा हुआ होगा कि वह स्कूल में या क्लास में देर से पहुंचे हों।

लेख उनका बड़ा स्पष्ट और सुन्दर था। लिखते क्या थे, मोती से जड़ते जाते थे। उर्दू, हिन्दी और अंग्रेज़ी, तीनों ही में उनका लेख अतिशय सुलेख था।

पढ़ाने का ढंग उनका जितना मौलिक था, उतना ही रोचक और बुद्धिग्राहक था। मुझे याद नहीं पड़ता कि उन्होंने किसी विद्यार्थी को कभी पीटा हो। दण्ड देने के स्थान पर वह दोषी विद्यार्थी को इतना लज्जित करते थे कि वह सुधरता चला जाता था।

ग़रीब विद्यार्थियों की वह अनेक प्रकार सहायता करते थे। कहीं से किसी को कोर्स की किताबें दिलवाते थे, तो कहीं से किसी के भोजन छादन की व्यवस्था कराते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी को स्वयं वज़ीफ़ा देते थे [illegible] दिलाते थे और किसी की फ़ीस म्वाफ़ कराते थे।

साथी अध्यापकों और हैडमास्टर या प्रिंसिपल आदि का वह समान रूप से आदर करते थे। साथ ही सब अध्यापक व हैडमास्टर या प्रिंसिपल उनका बड़ा मान और विश्वास करते थे। अध्यापकों या विद्यार्थियों की दलबन्दी से वह सतर्कतापूर्वक सदा अलग रहते थे। किसी की भी बुराई से सदा दूर और सबकी भलाई के लिये सदा तत्पर, यह उनका स्वभाव था। सन्तोष और प्रसन्नता—इन दो अलंकारों से वह सदा समलंकृत रहते थे।

मेरे जीवन पर उनके जीवन की अनेकशः अमिट छाप है।

खुर्जा से त्यागपत्र देकर वह डी. ए. वी. इण्टर कॉलिज, देहरादून चले गये। वहां से फिर वह ब्रह्मसमाज कॉलिज, अलीगढ़, में प्रोफ़ेसर रहे। वहां से रिटायर होकर उन्होंने टप्पल में जमना खण्ड विद्यालय की स्थापना की और उसके अवैतनिक प्रिंसिपल रहकर उसकी सर्वाङ्गीण उन्नति की।

श्री मदनलाल जी गुप्त हमारे एक ऐसे अध्यापक थे, जिनसे प्रत्येक विद्यार्थी थर थर कांपता था। उन्हें फैशन और व्यसन से बड़ी चिढ़ थी। जो भी विद्यार्थी कभी बन ठन कर आता और उसपर मास्टर मदनलाल जी की दृष्टि पड़ जाती, तो बस प्रलय का दृश्य उपस्थित होजाता। वह उसकी ज़ुल्फ़ें पकड़कर खींचते और उसके शृंगार को किरकिरा कर देते। बाज़ार में भी यदि किसी विद्यार्थी को पान चबाता या सिगरेट पीता देख लेते तो वहीं उसकी भरपूर मरम्मत कर देते। [illegible] पढ़ाते बहुत अच्छा थे, पर बोलते बड़ी तीव्र गति से थे। जितनी बार उनसे कुछ पूछते, उतनी ही बार वह समझाते। बार बार प्रश्न किये जाने पर वह कभी क्रुद्ध नहीं होते थे, पर सबक़ याद करके न लाने पर वह बड़ी पिटाई करते थे। समय पड़ने पर वह विद्यार्थियों की डटकर हिमायत करते थे। इसी लिये कठोर और क्रोधी होने पर भी विद्यार्थी उनसे स्नेह करते थे।

मास्टर मोहनलाल जी शर्मा जितने प्रसन्नवदन, मृदु और सुकोमल थे, उतने ही सुन्दर और सौम्य थे। पढ़ाने की पद्धति उनकी अपनी ही थी। निजता और आत्मीयता उनमें कूट कूट कर भरी थी। उनके व्यक्तित्व में एक प्रकार का स्वाभाविक आकर्षण था। उनमें एक बात थी, जिसके सब क़ाइल थे। वह यह कि वह अन्त तक समान रूप से विनम्र और शालीन रहे और आदि से अन्त तक उनका जीवन नितान्त धवल और निर्मल रहा। किसी भी विद्यार्थी को उदास देखकर वह उसकी उदासी का कारण पूछते और उसे प्रसन्न करते। वह स्वयं जितने गौरवर्ण और सुन्दर थे, उनकी पत्नी उतनी ही कृष्णवर्ण और असुन्दर थीं। तिसपर भी वह अपनी पत्नी का प्रचुर मान और उनसे यथावत् प्यार करते थे। अपने व्यवहार से उन्होंने अपनी पत्नी की भावनाओं को कभी ठेस नहीं पहुंचायी। पेंतीस [३५] वर्ष की लघु आयु में ही उनका देहान्त होगया। उनके देहावसान की सूचना पर मुझे इतनी वेदना हुयी कि कई दिन तक मुझे भोजन में अरुचि रही और कई सप्ताह तक मैं उनकी याद में आंसू बहाता रहा।

—विदेह

रोज़ की मधुर स्मृतियां

[३] जीवनदान

विविध मान्यताओं और धार्मिक सिद्धान्तों पर रोज़ खुलकर वार्तालाप किया करती थी। क्राइस्ट और बाइबिल से वह सुपरिचित थी ही। दयानन्द और वेद से उसे मैंने सुपरिचित कराया।

उसे वेदों का परिचय कराने में मुझे तनिक भी कठिनाई नहीं हुई। मैं जो कुछ भी रोज़ को समझाता था, वेदमन्त्रों के आधार पर समझाता था। उसे सहज ही विश्वास होगया कि केवल वेद ही ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें सब दिव्य और सत्य शिक्षायें हैं। उसने स्वीकार कर लिया कि वेद में ही सार्वभौम मानवधर्म-शास्त्र बनने की क्षमता है।

आवागमन के सिद्धान्त में रोज़ की इतनी गहन आस्था होगयी कि उसपर स्वयं मुझे बड़ा आश्चर्य होता था। कर्मफल और जन्म-जन्मान्तर की साधना में उसकी अनन्य निष्ठा सम्पन्न होगयी। ब्रह्मचर्य और निर्विकार जीवन की महत्ता को उसने पलक झपकते ही मान लिया। पत्नी के लिये पतिपरायणा होना और पति के लिये पत्नीपरायण होना उसे बहुत अच्छा लगा। शव को गाड़ने के बजाय जलाना चाहिये, उसे यह सहज ही स्वीकार्य होगया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्राइस्ट और दयानन्द के तुलनात्मक अध्ययन से रोज़ के हृदय में क्राइस्ट के प्रति उसकी आस्था में कोई अन्तर आया तो केवल इतना कि वह क्राइस्ट को महा मानव और दयानन्द को अति मानव मानने लगी और जब एक दिन उसने मुझसे यह कहा कि "**मिशन** यदि किसी का है तो वह केवल दयानन्द का है, अन्य किसी का नहीं", तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। रोज़ को मेरी यह बात बड़ी भली लगती थी कि मैं प्रमाणवाद, सम्प्रदायवाद, व्यवसायवाद और व्यक्तिवाद से सर्वथा मुक्त और अनासक्त था, किन्तु दयानन्द और वेद के प्रति मेरी सर्वतोमुखी श्रद्धा पर कभी कभी उसको आश्चर्य अवश्य होता था।

बन्ध और मोक्ष की वार्ता ने रोज़ को इतना प्रभावित किया कि वह बड़ी उत्कटता के साथ आध्यात्मिक साधना में जुट गयी, पर वह अन्त तक यह ठीक ही मानती रही कि मोक्षप्राप्ति के लिये योगाभ्यास के साथ साथ प्राणी मात्र की सेवा भी की जानी चाहिये। उसकी इस मान्यता से मैं अक्षरशः सहमत था।

एक सायं वह बोली, "वह ख़ुदा क्या, जो शैतान से हार माने और वह ब्राह्मी शक्ति क्या, जो आसुरी माया को छिन्न भिन्न न कर सके", और प्रसन्नता से उसका मुख दमकने लगा, जब मैंने उसका अनुमोदन करते हुये कहा, "पुत्रि, तुम बिल्कुल ठीक कहती हो"। एक आन्तरिक ओज से ओजीयमान होकर वह खड़ी होगयी और कहने लगी, "प्रभो, यह एक साध है, जो मुझे पूरी करनी चाहिये"।

राजनीतिक और सांसारिक विषयों में रोज़ की तनिक भी रुचि न थी। धार्मिक, नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विषयों पर ही हमारी चर्चा हुआ करती थी। मेरी विचार धारा ने रोज़ को एक दूसरे ही लोक में प्रतिष्ठित कर दिया था। वह सारे भूमण्डल को अपना घर, भूमण्डल के समस्त मानवों और प्राणियों को अपना परिवार, संसार के सभी महा पुरुषों को विश्ववन्दनीय, सभी धर्मग्रन्थों को अवलोकनीय तथा केवल वेद को प्रचारणीय और ब्रह्मप्राप्ति को मानव-जीवन का लक्ष्य मानने लगी। अपने इस विकास और परिवर्तन पर प्रमुदित होकर एक दिन रोज़ ने कहा, "आपने मुझे एक नया और वास्तविक जीवन प्रदान किया है। आपके ही इस जीवन को मैं आपके चरणों में समर्पित करती हूं। यह जीवन अब आपका है। इसे स्वीकार कीजिये"।

"मैं तुम्हारी इस अमूल भेंट को स्वीकार करके प्रभु की महिमा के वर्धन और वेद के प्रचार प्रसार के लिये अर्पित करता हूं"।

"तो मुझे आत्मसाक्षात्कार, प्रभु से एकत्व और वेदज्ञान तो प्राप्त कराइये"।

"तुम कल से ही योगाभ्यास और वेदानुशीलन प्रारम्भ करदो"।

"अवश्य, अवश्य"।

और अगले ही दिन से रोज़ ने योगाभ्यास और वेदाध्ययन प्रारम्भ कर ही जो दिया।

—विदेह

नारी श्रद्धामयी

भारत में ही नहीं, विश्व में सर्वत्र, नारी की श्रद्धा लोकप्रसिद्ध है। नर की अपेक्षा नारी कहीं अधिक श्रद्धोपेत होती है।

तम से मूढ़ता। रज से तर्क। सत् से श्रद्धा।

पशुओं में तम की मात्रा अधिक होती है। इसीसे पशुओं में बोधहीनता अथवा मूढ़ता होती है।

नरों में रज की मात्रा अधिक होती है। अत एव पुरुष तर्कप्रधान है।

नारी में सत् की मात्रा बहुत अधिक होती है। इसीलिये नारी श्रद्धामयी होती है।

नर ने गर्जकर कहा, "श्रद्धे! मैं तेरा गला घोंट दूंगा"।

श्रद्धा मुस्कराई और बोली, "जब तक नारी का अस्तित्व है, तब तक मेरा बाल भी बांका नहीं होगा"।

नर ने तर्ज कर कहा, "धर्म, मैं तुझे निर्मूल निर्बीज कर दूंगा"।

धर्म ने हंसकर कहा, "जब तक श्रद्धामयी नारी की सत्ता है, तब तक मेरी सत्ता को कोई नहीं मिटा सकता"।

नर ने नास्तिकता की तलवार हाथ में लेकर कहा, "भक्ति! मैं तुझे संसार से निराकृत कर दूंगा"।

भक्ति ने दृढ़ता के साथ कहा, "नारी की श्रद्धा में मेरा सदा निवास रहेगा"।

—विदेह

सन्त अनाम और उनके शिष्य

शिष्य—भगवन्, वे आपकी हर बात को ग़लत बताते हैं।

अनाम—सौम्य, वे स्वयं ग़लत हैं। इसीलिये उन्हें मेरी हर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात ग़लत दिखाई देती है। पीलिया के रोगी को सफ़ेद वस्तुयें भी पीली दिखाई पड़ती हैं।

शिष्य—भगवन्, वे आपको गालियां देते हैं।

अनाम—सोम्य, जिसके पास जो होता है, वह वही देता है। उनके पास गालियां हैं, वे मुझे गालियां देते हैं। मेरे पास आशीर्वाद है, मैं उन्हें आशीर्वाद देता हूं।

शिष्य—भगवन्, वे आपका अपमान करते हैं, आपको लाञ्छित करते हैं। फिर भी आप उनका मान करते हैं और उनकी प्रशंसा करते हैं।

अनाम—सोम्य, दूसरों का अपमान करने से मनुष्य स्वयं अपमानित होता है और दूसरों का मान करने से मनुष्य स्वयं सम्मानित होता है। ऐसे ही दूसरों को लाञ्छित करने से मनुष्य स्वयं लाञ्छित होता है और दूसरों की प्रशंसा करने से मनुष्य स्वयं प्रशस्त बनता है। —विदेह

प्रश्नोत्तर

सबसे बढ़िया ख़ुराक क्या ?
निश्चिन्तता।
सबसे बढ़िया व्यायाम क्या ?
हंसना।
सबसे बड़ी दुर्बलता क्या है ?
आत्म-अविश्वास।
सबसे बड़ा रोग क्या है ?
आत्महेयता।
सबसे बड़ा शस्त्र क्या है ?
साहस।
सबसे बढ़िया शृंगार क्या है ?
सदाचार।
सबसे बड़ा शत्रु कौन है ?
अहंकार।
सबसे सुदृढ़ कवच क्या है ?
सहनशीलता। —विदेह

विदेहोद्गार

नयनों में रम रहे हो हृदय में बस रहे हो।
मैं तुमसे कब जुदा हूं तुम मुझसे कब जुदा हो॥
सांसों में मेरी, दिल में मेरे, जाँ निहाँ हो तुम।
मैं फिर भी पूछता हूं बताओ कहां हो तुम॥
मेरा आनन्द मेरा सुख मेरी राहत तुम हो।
मेरा यौवन मेरी दौलत मेरी चाहत तुम हो॥
प्रियतम तेरे इन्तिज़ार में बिछी हुयी हैं आंखें।
तेरे प्रिय दर्शन के लिये खुली हुयी हैं आंखें॥

स्वभाव

मनुष्य का स्वभाव ही उसके जीवन का सही चित्र है।

उग्र और उत्तेजित स्वभाव के व्यक्ति की शिक्षा, दीक्षा, संस्कृति और सभ्यता, सब बेकार हैं।

शीतल और शान्त स्वभाव के व्यक्ति की ही शिक्षा, दीक्षा, संस्कृति और सभ्यता सफल और सार्थक होती हैं।

—विदेह

वेद-संस्थान की दिल्ली शाखा के सदस्यों से

वर्तमान में वेदसंस्थान का केन्द्रीय कार्यालय अजमेर में है और उसका शाखा-कार्यालय है नयी दिल्ली में—

१) वेदसंस्थान, बाबू मोहल्ला, अजमेर,
२) वेदसंस्थान-शाखा, J—1/162, राजौरी गार्डन, नयी दिल्ली—१५

सविता, साहित्य, वेदव्याख्याग्रन्थों के स्थायी व अग्रिम ग्राहक, आदि के विषय में सब पत्र-व्यवहार आप अजमेर कार्यालय से करें और शाखा-सम्बन्धी कार्य के विषय में दिल्ली—कार्यालय से।

जैसाकि आपको विदित है, हमें दिल्ली में अनेक ठोस और रचनात्मक कार्य करने हैं। Slow and steady wins the race—मन्द और स्थिर व्यक्ति दौड़ जीतता है, अंग्रेजी की यह कहावत आप अपने ध्यान में रखें। प्रगति मन्द भले ही हो, पर स्थिर और अनवरत हो। धीमे, पर बिना रुके, चले चलिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिर और अनवरत प्रगति के लिये यह आवश्यक है कि दिल्ली-शाखा के सभी सदस्य मास में एक बार अवश्य सम्मिलित होकर परस्पर विचार-विनिमय करें और कार्य की मासिक प्रगति का सिंहावलोकन करें। इस दृष्टि से यह निर्णय किया गया है कि प्रत्येक अंग्रेजी मास के **प्रथम रविवार** को सायं ६-०० से ८-०० बजे तक वेद-संस्थान की राजौरी गार्डन शाखा में **मासिक सत्संग** किया जाया करेगा। उसी सत्संग में शाखा के सदस्य अपनी अपनी मासिक भेंट अर्पण कर दिया करेंगे। सब सदस्य नोट करलें और परिवार तथा इष्टमित्रों सहित सत्संग में सम्मिलित हुआ करें।

यह तो आपको पता ही है कि वेदसंस्थान की दिल्ली-शाखा की न्यूनतम सदस्यता-भेंट एक रुपया मासिक है, अधिक से अधिक कितनी भी। सदस्यों की संख्या अभी इतनी कम है कि उनकी मासिक भेंट से दिल्ली शाखा के व्यय की पूर्ति होना असम्भव है। अतः आप तत्परता के साथ दिल्ली शाखा के अधिक से अधिक सदस्य सदस्या बनायें।

सदस्यों की सेवा में अजमेर से मासिक सविता भेजा जाया करेगा, जिसमें दिल्ली शाखा के कार्य-विवरण और कार्यक्रम का लेखा प्रकाशित हुआ करेगा। आप उसका ध्यानपूर्वक अवलोकन किया करें।

युवक महात्मा ब्रह्मचारी देवराज जी दिल्ली-शाखा के अधिष्ठाता हैं। वह संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेज़ी के सुपठित विद्वान् हैं। सामवेदयज्ञ तथा संस्कार अतिशय उत्तम रीति से कराते हैं। अपने अपने क्षेत्र में इनका परिचय दीजिये और उनसे यज्ञ व संस्कार कराइये।

श्रीयुत मास्टर जगदेव जी आर्य, M. A., B.T., दिल्ली-शाखा के **व्यवस्थापक** हैं। वह आपके निकट सम्पर्क में कार्य करेंगे और करायेंगे।

आगामी जनवरी में अंग्रेज युवक **श्री स्कॉट** भारत आरहे हैं। वह मेरे साथ रहकर योगाभ्यास और आत्मसाधना करेंगे। मुझे लगता है, वह विश्व के आर्यकरण और पृथिवी के दिव्यीकरण में अपना जीवन लगायेंगे। श्री स्कॉट एक गहन आध्यात्मिक और परमोदर व्यक्ति हैं। उनकी दीर्घायु और पथप्रशस्ति की मैं हृदय से कामना करता हूं।

—विदेह

प्रकाशन-प्राप्ति

वेदव्याख्याग्रन्थों के पुष्प तथा वेद-संस्थान के अन्य सब प्रकाशन निम्न स्थानों पर मिलते हैं—

[१] श्री वंशीलाल जी आर्य,
दयानन्द वाटिका, राम बाग़
सब्जी मण्डी, रेलवे स्टेशन के पास, **दिल्ली—६**

[२] श्री सुरेन्द्रनाथ जी तिवारी,
१४, तुलाराम बाग़, **इलाहाबाद—६**

[३] श्री मास्टर बृजमोहन जी शर्मा, बी. ए.,
सीमेण्ट वर्क्स स्कूल,
पो० लाखेरी सीमेण्ट वर्क्स (बूंदी–राजस्थान)

[४] प्रार्थना सभा, **बटाला** [पंजाब]

[५] वेद-संस्थान,
जे—१/१६२, राजौरी गार्डन
नई दिल्ली—१५

[६] श्री विश्वनाथ जी,
डबल स्टोरी गवर्नमेंट क्वार्टर,
नं० B. 11/179, देवनगर,
क़रोल बाग़, **नई दिल्ली–५**

[७] श्री जगदीशप्रसाद जी आर्य,
निष्काम सेवा सदन, ५९९ सदर, **झांसी।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SOME THOUGHTS ON THE GITA

[*A. D. S. Scott*]

When a man puts away all the desires,
And when his spirit is content in itself,
Only then he is called one settled in wisdom.

—Gita, (2/55).

"Cravings"—"desires of the mind"; to put away, to resist and conquer all our cravings and desires is far more difficult and entails far much more than most of us may realise. When we think of cravings or desires we at once consider the more notorius and prominent ones such as alcahol, sex, drugs, over-eating and others of a similar-nature. While one should in no way minimise the dangers of these vices, they are usually out of the reach of the ordinary man or woman; the man in the street. Such people can rarely afford to indulge in them as they usually require what salary they earn to maintain their families. Examples of men neglecting their wives and children in order to spend their time and money on some sort of vice is perhaps comparatively rare.

So what are the cravings and desires that the average everyday man and woman has to guard against ?

If we are sick, physically disabled, very poor, out of work or unjustly critisized, how many of us crave sympathy—have a desire for those around us to assist us, and consistently pour into our ears a flow of soothing words. Whether we know them to be true or not, we still crave to hear them.

Similarly, those of us with some sort of vanity, how much we desire to here words of praise and flattery. It is as much a vice as for example is drinking or smoking, and really much more difficult to conquer in as much as we are usually comparatively oblivious of such cravings.

And then there are the desires and cravings that generally may be thought natural and acceptable. The wish for beauty amid ugliness, for cleanliness amid dirt, for mountains when you live on the plains, for an ocean in a desert, for the balm of music when you only hear discord. The men who constantly search for and when found, mentally devour the things of material beauty and perfection in life.

All these things thus desired are in themselves manifestations of God and of tremendous value and worthwhile enjoyment, but to crave for them when we do not have them is essentially wrong. To live in a city and always be yearning for a country life, to live with a wife and children and continually want to live the life of an ascetic, all must be guarded against.

The only desire must be for "bliss in the Atman". If we have God in our lives, then our dirty, ugly surroundings will be transformed with light, we will hear heavenly music as we toil in factories and we will know the balm of infinite oceans of love and mountain peaks of sublime inspiration when we are dwelling on the dry flat deserts of our alloted place of duty on earth.

To sum up, I personally think that the strongest and most difficult to eradicate are the cravings and desires of the mind rather than those of the flesh.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(16)

इन्द्र वाजेषु नो ऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ (Rig: 1. 7. 4)

Greatness and dignity are not acquired without strife and struggle. To attain triumph war is indispensable. Those who shirk struggle and retreat from war can never acquire dominion, glory, wealth and prosperity. Cowards, afraid of struggle, are destined to misery, humiliation and povirty. Prosperity is gained through valour, courage, patience, skill, determination and austerity.

Mighty Lord! Give us might, that might, by which we may reconquer our lost dominions and empires. Grant us power, the power, by which we may re-establish our lost prestige. Give us bravery, that bravery, by which we may exterminate the unjust and the tyrant. Give as valour, the valour, by which we may pull down the citadels of sin and vice. Grant us wisdom, that wisdom, by which we may eradicate world's poverty and wretchedness.

Lord! make us skilful and brave warriors. Fill in us violent courage. Infuse in us a blazing flame. Let our weapons be glorious and our means of defence invincible.

Worshipped one! Thow Thyself be our protector and Thyself our guide.

उग्र इन्द्र Mighty Lord, नः अव protect us वाजेषु in wars च and सहस्र-प्रधनेषु in numberless struggles for acquiring grandeur, उग्राभिः ऊतिभिः by Thy invincible protection and strong means of defence.

[Translated by B. B. Hajela]

STANDING FIRST

प्रथमो विन्दते वसु (Rig: 6. 54. 4)

Children mine,

In the present talk, I will tell you a very useful thing. It is, one who is प्रथमः first and foremost, विन्दते gets वसु wealth and prosperity.

Now tell me what you understand by this meaning of the quotation. If not, let me tell you.

Lazy and idle fellows can make no improvement and progress in the world. Those, who are inactive, sluggish and slothful, always remain poor and wretched. All kinds of wealth, property and fortune are gained by those, who always lead others in every thing worth doing. Those, who are always cautious, watchful and alert to advance in time, make the best of the opportunities that present themselves before them.

Let me know which boys and girls win prizes in the annual games and sports of your school. One, who stands first, gets the greatest prize, the second one less and the third, the least. The remaining sluggards get nothing. The first-stander gets the greatest gain and it is he, who is praised the most. Hence, always try to keep ahead in reading, writing, playing or doing other things. By doing so, you will be great men and women and will be highly honoured and respected in the world.

Should you lead all wordly game.
You will gain all worldly fame.

[*From Videh's Vedic Bal Shiksha*
translated by Shri Kishori Lal Gupta

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079837

एक पत्र

[वेदसंस्थान अजमेर के नाम] नैरोबी
१०-६-५६

मेरा जन्म राजस्थान का होते हुये भी मैं अपना दुर्भाग्य मानता हूं कि स्वामी श्री विद्यानन्दजी विदेह के, जो राजस्थान के हृदय-स्थल अजमेर में निवास करते हैं, दर्शन नहीं कर सका। परन्तु संन्यासी के वास्तविक दर्शन तो विचार-देह के रूप में ही होते हैं और इस विषय में मैं अपने आपको सौभाग्यशाली मानता हूं कि भारत में और विशेषकर जबसे पूर्वी अफ्रीका की कर्मभूमि में आया हूं तबसे तो सतत उनके साहित्य के अध्ययन से उनके विचारों के दर्शन करके अपने हृदय को आनन्दित कर सका हूं। उनका साहित्य और उसमें व्यक्त होनेवाली विचार-धारा तो परम पवित्र सुरसरी धारा है। उसका जितना मज्जन और पान होता है चित्त शुद्ध होता है।

श्री स्वामी जी महाराज ने वेदों का जिस सुन्दर, उपयुक्त, सरल तथा मधुर भाषा में अनुवाद करना शुरु किया है, वह हिन्दी साहित्य में ही नहीं, अब तक के सभी भाषाओं के वैदिक साहित्य में अपूर्व है।

इसके साथ पूज्य स्वामी जी ने जो भागीरथ कार्य अपने कन्धों पर लिया है, उसे भी मैं अपूर्व कहे बिना नहीं रह सकता। उनका दृष्टिकोण पूर्ण, उचित, आधुनिक मानव के लिये उपयोगी और वेदों के प्रचार में पूर्ण सहायक है।

हम सभी, जो उनके महान् कार्य में सहयोग दे सकें, और जो सक्रिय सहयोग न भी दे सकें, तो उनके कार्य की हृदय से सफलता की मंगल कामना अवश्य करें।

पूर्वी अफ्रीका में मैं अपने भ्रमण में जहां कहीं गया, सभी जगह स्वामी जी महाराज के भ्रमण में किये गये शुभ कार्य की सुवास मिली। भारत से आनेवाले धर्मप्रचारक उनका अनुसरण करें तो यहां की भारतीय जनता की बड़ी सेवा होगी।

कृष्णानन्द सरस्वती,
संस्थापक, इण्डियन मिशन,
दारेसलाम

सम्मतियां

वेदव्याख्याग्रन्थ के तृतीय पुष्प पर

वेदार्थ-जिज्ञासुओं एवं वैदिक साहित्य के अध्येताओं के लिये प्रस्तुत पुष्प संग्रहणीय है।

यह विशाल कार्य पूरा हो गया तो हिन्दी भाषा के एक बड़े अभाव की पूर्ति होने के साथ साथ वेद के सम्बन्ध में फैली अनेक भ्रान्तियों का निराकरण भी होगा। **—श्री आंगिरस**
"अमर ज्योति"

श्री स्वामी विद्यानन्दजी विदेह की वेदमन्त्रों की व्याख्या हृदय-ग्राही है। परमात्मा इस कार्य के लिये उनकी आयु अधिक से अधिक लम्बी करे।
—स्वामी शिवानन्द तीर्थ

विदेह जी की शैली की दो बड़ी विशेषतायें हैं—(१) असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण, (२) प्रत्येक मन्त्र के काव्य-रस को खोज निकालने की शक्ति।

वे मूलतः रसदर्शी हैं, जिससे उनकी व्याख्यायें केवल निरुक्त और व्याकरण के बल पर लिखी गयी व्याख्याओं की तरह रूखी न होकर सरस व प्रवाहमयी हैं। वेदों को सबकी सम्पत्ति बनाने में यह उपयोगी है।

ग्रन्थ की छपाई आदि उत्तम है।
—"भारती", बम्बई

साधना पर

राष्ट्र-भाषा की यह अपूर्व पुस्तक साधक को परमात्मा का बोध और साक्षात्कार करने के लिये सरलतायुक्त इस प्रकार पथप्रदर्शन करती है, मानो सद्गुरु समक्ष बैठे शिष्य को उपदेश दे रहे हैं। साधकों को सहस्रों बार इसे मननपूर्वक आद्योपान्त अवलोकन करने की अभिरुचि बनी ही रहेगी। **—महात्मा प्रशान्त स्वामी**

श्री विद्यानन्द जी विदेह की लिखी पुस्तक "साधना" बहुत उपादेय और लाभदायक है। जो अपने मन और तन को पुष्ट करना चाहते हैं, वे अवश्य इस पुस्तक को पढ़ और मनन करके अभ्यास भी करें। **—डा० वृन्दावनलाल वर्मा**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्थान-साहित्य

विदेह-रचित

वेदव्याख्याग्रन्थ-प्रथम पुष्प २ ००
ऋग्वेद के प्रथम सूक्त [ब्रह्माग्नि की अभिस्तुति], यजुर्वेद के प्रथम अध्याय [व्यक्तित्व का सुनिर्माण], सामवेद की प्रथम दशति [ब्रह्माग्नि का आह्वान] तथा अथर्ववेद के प्रथम सूक्त [वाचस्पति और शिष्य] की हृदयग्राही विशद व्याख्या।

वेदव्याख्याग्रन्थ-द्वितीय पुष्प १ ५०
यजुर्वेद के द्वितीय अध्याय की व्याख्या। विषय गृहस्थाश्रम की सुव्यवस्था।

वेदव्याख्याग्रन्थ-तृतीय पुष्प २ ००
यजुर्वेद के तृतीय अध्याय की व्याख्या। विषय आत्मसाधना।

गायत्री १ ५०
ऋग्वेद के ५२ गायत्री-छन्द मन्त्रों पर व्याख्यामयी ५२ दिव्य प्रार्थनाओं का मनोहर संग्रह।

रामचरित १ ५०
मर्यादापुरुषोत्तम राम के अलौकिक चरित्र का लौकिक स्वरूप।

साधना १ ००
योगाभ्यास तथा जीवननिर्माण पर एक मौलिक, अद्वितीय और अभूतपूर्व ग्रन्थ।

स्वस्तियाग ० ७५
चारों वेदों के स्वस्ति, शं, शान्ति और ईश-नमस्कार के मन्त्रों से समन्वित आदर्श यज्ञपद्धति।

सार्वभौम आर्य साम्राज्य ० ५०
वेदमन्त्रों के आधार पर सार्वभौम वैदिक साम्राज्य की रूपरेखा।

वैदिक बाल शिक्षा-प्रथम भाग ० ५०

वैदिक बाल शिक्षा-द्वितीय भाग ० ३७
वेदसूक्तियों के आधार पर लिखी गई सुन्दर शिक्षायें, जो आपके प्राणप्रिय बच्चे-बच्चियों को आदर्श मानव और आदर्श नागरिक बनाने में सहायक होंगी।

वैदिक योग-पद्धति ० ३७
वेदमन्त्रों के आधार पर योगाभ्यास की मूलशिक्षायें।

संस्कृत-शिक्षा-प्रथम भाग ० १९
वेद, संस्कृत व हिन्दी के शुद्धोच्चारण के निश्चित नियम।

संस्कृत-शिक्षा-द्वितीय भाग ० ३७
वेद, संस्कृत व हिन्दी के सन्धि-नियमों का सरल अध्ययन।

सत्यनारायण की कथा ० ३७
सत्यनारायण की वैदिक कथा।

सत्संग-गीतावली ० ३७
राष्ट्रीय तथा आध्यात्मिक गीतों का सुललित संग्रह।

सन्ध्या-योग ० २५
सन्ध्योपासना के मन्त्रों की योग के आठों अंगों से समन्वित मौलिक व्याख्या, जिसे पढ़कर सन्ध्या में मन लगता है।

गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान ० २५
गायत्री मन्त्र के अनुष्ठान की शुद्ध पद्धति।

महामृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान ० २५
महामृत्युञ्जय मन्त्र के अनुष्ठान की शुद्ध पद्धति।

यज्ञोपवीत रहस्य ० ०६
यज्ञोपवीत के रहस्यों का सुन्दर विवेचन।

दिव्य-भावना ० ०६
सुन्दर संक्षिप्त आत्मशंसन।

सविता की जिल्दें--
वर्ष ४, ५, ६, ८, ९, १०, ११-प्रति जिल्द ३ २५

डाक-व्यय पृथक्।

पता :--व्यवस्थापक, वेदसंस्थान, अजमेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri